I.S.S.N. 0975-6531

यू.जी.सी. केयरलिस्ट में सम्मिलित

वैचारिकी

भारतीय संस्कृति-साहित्य की शोध द्वैमासिकी

मई-जून 2024 * भाग 40 - अंक 3

भारतीय विद्या मन्दिर, कोलकाता

भारतीय विद्या मंदिर

Our Vision & Mission

- Skill Development of Society through Cultural, Ethical & Values of Skilling Practices
- Upliftment of humanity through talents of Indian Heritage, Culture, Education & Research
- Publication of Books & Magazine
- Cultural & Social Activities
- Workers Training
- Organizing seminars and conferences on science, literature, culture and spirituality

BHARATIYA VIDYA MANDIR

12/1, Nellie Sengupta Sarani, Kolkata-700087
Email: bvm.vaichariki@gmail.com
Website: www.bharatiyavidyamandir.com
Secretary : Shankar Lal Somani, Mob. : 9830559364

वैचारिकी

भारतीय विद्या मन्दिर की द्वैमासिक शोध पत्रिका

अध्यक्ष-प्रधान सम्पादक

डॉ. बिट्ठलदास मूंधड़ा

सम्पादक

डॉ. बाबूलाल शर्मा

प्रबंध सम्पादक

शंकरलाल सोमानी

योगः कर्मसु कौशलम्

कार्यालय

भारतीय विद्या मंदिर
12/1, नेली सेनगुप्ता सरणी
कोलकाता-700 087
दूरभाष : 033-71001614
मो. : 09830559364
ई-मेल : bvm.vaichariki@gmail.com
Website : www.bharatiyavidyamandir.org

सदस्यता शुल्क

वार्षिक 450/- रुपये
द्वैवार्षिक 900/- रुपये

भुगतान

Payee's Name:
BHARATIYA VIDYA MANDIR
Current A/c No. : 32030320176
Bank : STATE BANK OF INDIA
Branch: New Market
IFSC Code No. : SBIN0004662

ISSN 0975-6531

वैचारिकी

भाग : 40 अंक : 3

धर्म-दर्शन-विज्ञान, साहित्य-लोकसाहित्य, इतिहास-पुरातत्व, कला-लोककला
यू.जी.सी. केयरलिस्ट में सम्मिलित

मई-जून, 2024 ईस्वी ✷ वैशाख कृष्ण 8, आषाढ़ कृष्ण 9, वि. सं. 2079-80 ✷ ₹ 50/-

अनुक्रम

- **अध्यक्षीय** 3
- **संपादकीय** 5
- **हिन्दी नवगीत : स्वरूप, विकास और संभावनाएँ**
  प्रो. भगवानदास जैन 7
- **हिन्दी के भक्तिकाल की उत्तर आधुनिकता**
  डॉ. आशीष पाण्डेय 12
- **मलयालम भाषा के महाकवि**
  गोविंद शंकर कुरुप 18
- **21 वीं सदी के हिंदी उपन्यास लेखन में महानगरीय बोध**
  डॉ. संदीप रणभिरकर 21
- **हिन्दी आलोचकों की दृष्टि में रवीन्द्रनाथ ठाकुर**
  घुंघुरू कुमारी 28
- **वेमना के काव्य में निहित भक्ति-चिंतन की परंपरा**
  छविन्दर कुमार 32
- **भारतीय ज्ञान-विज्ञान के ग्रंथों का विदेशी भाषाओं में अनुवाद**
  डॉ. मोहनन वी.टी.वी. 38
- **श्री अरविंद का शैक्षिक चिंतन**
  डॉ. सुनीता सिंह 41
- **गोपीचन्द-भरथरी लोकगाथा : पर्यालोचन**
  ब्रजेन्द्र कुमार सिंहल 48
- **हरियाणवी लोक साहित्य और उसमें मीराबाई**
  रामशरण युयुत्सु 69
- **पाठक-मंच** 73
  रागों के नाम पर आबाद गाँव *(रामशरण युयुत्सु)*, प्रगतिशीलता के नाम पर भदेस *(राजेन्द्र सिंह गहलोत)*, वज्र पुरुष बाल गंगाधर तिलक का गायकवाड वाड़ा *(डॉ. विद्या केशव चिटको)*
- **प्रतिस्वर** 91

■ प्रकाशित सामग्री के उपयोग हेतु लेखक-प्रकाशक की अनुमति आवश्यक।
■ प्रकाशित लेखादि में अभिव्यक्त विचारों से प्रकाशक-सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है।
■ समस्त विवादों के लिए न्यायालय क्षेत्र कोलकाता।

अध्यक्षीय

आधुनिक काल के भारतीय जीवन को देखकर बहुत-सी बातें मन में आती हैं। सब कुछ यहां पर लिपिबद्ध करना संभव नहीं है, लेकिन कुछेक मुख्य बिन्दु जो ध्यान में आये हैं, वे लिख रहा हूं। ऐसा अनुभव हो रहा है कि मनुष्य सुखी और शांत होने के बदले अस्थिर एवं मानसिक कष्ट महसूस कर रहे हैं। विशेषतौर पर हमारे नव-युवावर्ग को लेकर चिंता है, जिसे आजकल की शिक्षा-उच्चशिक्षा जीवन में आर्थिक स्थिरता की ओर नहीं ले जा रही है क्योंकि उसमें शिक्षा के साथ कुशलता का प्रशिक्षण नहीं है। यह शिक्षण व्यवस्था अंग्रेजों द्वारा बनाई गई थी, जिसके द्वारा वे केवल क्लर्क/बाबू बनाना चाहते थे। लेकिन अभी जो पाठ्यक्रम है तो उसे भी अच्छी तरह से पढ़ाया नहीं जाता। विद्यार्थी भी उसे आत्मसात न करके प्रायः परीक्षा में अंक अर्जित करने के लिए ही प्रयास करते हैं और फिर बड़ी-बड़ी डिग्रियां लेकर नौकरी की तलाश में भटकने लगते हैं। सरकारी नौकरी तो उतनी हैं ही नहीं जिनमें सबको लगाया जा सके। प्राइवेट सेक्टर में, जो उन्हें पढ़ाया गया है उसकी उपयोगिता बहुत कम रहती है, केवल भाषा और गणित का ज्ञान ही थोड़ा-बहुत उपयोग में आता है।

बी.कॉम. में जो पढ़ाया जाता है वह भी उन्हें एकाउन्टेंट या क्लर्क ही बनाता है, उसका उपयोग भी जीवन में बहुत सीमित है। सच पूछें तो वे एक छोटी दूकान चलाने की योग्यता भी नहीं रखते। सी.ए., एम.बी.ए. भी पास कर रहे हैं, परंतु बेकार। वस्तुतः कॉलेजों में पढ़ाई अच्छी नहीं होती। साधारण कॉलेजों में पढ़ाई अच्छी नहीं होती और जो अच्छी शिक्षण संस्थाएं हैं उनमें पढ़े हुए लड़के भी उच्च आकांक्षा लेकर बाहर आते हैं, लेकिन वैसा काम बाहर मिलता नहीं है। तकनीकी या इंजीनियरिंग की शिक्षा होती है उसमें भी फील्ड-फ्लोर वर्क, जमीनी स्तर का अभ्यास नहीं होने के कारण जो थियोरेटिकल/सैद्धांतिक ज्ञान दिया जाता है वह व्यावहारिक तकनीक में काम नहीं आता है। इसके लिए उसे पुनः प्रशिक्षण देना पड़ता है। ऐसे युवक प्रोडक्शन या निर्माण का कारोबार करने में सक्षम नहीं हो पाते हैं। वे योग्य तभी हो सकते हैं जब किसी के नीचे काम करके व्यावहारिक तकनीक सीखें, उन्होंने सैद्धांतिक बातें सीखी हैं तो उन्हें इसे सीखने में थोड़ी-बहुत सुविधा होती है, यह भी बी.ए. वालों को नहीं, केवल बी.कॉम., एम.बी.ए. या इंजीनियरिंग पास करने वालों को ही।

समाज में जिसकी आवश्यकता है उसका प्रशिक्षण युवकों को कम दिया जा रहा है, जैसे-- हम जितना निर्माण कर रहे हैं उस कार्य में मशीनरी, कारपेन्टर, प्लम्बिंग, इलेक्ट्रिकल, गार्डेनिंग इत्यादि भी हैं। मशीनों को चलाना है, उनकी मेंटेनेंस है, ऐसे काम व्यवहार में काम करते-करते ही सीखने में आते हैं, वह भी पूर्ण रूप से नहीं। समाज के अंदर ऐसे कामों की जितनी आवश्यकता है उतने तकनीशियन उपलब्ध नहीं हैं। इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए भारतीय विद्या मंदिर ने ऐसे कार्यक्रम हाथ में लेने का विचार किया है जिनमें अप्लाइड टेक्नोलॉजी या तकनीकी ज्ञान जमीनी-स्तर से सिखाया जायेगा। विशेषतः यह अनुभव में आया है कि जितना निर्माण हो रहा है, पहले से भी हो चुका है, लेकिन इसमें रख-रखाव और रेक्टीफिकेशन आदि का काम साधारण इंजीनियर नहीं समझता है, अतः उसे विशेष प्रशिक्षण देकर तैयार किया जाये। शहरों एवं गांवों में वहां मकानों का जो भी निर्माण हुआ है उसके रख-रखाव की आवश्यकता है। ट्रेण्ड/प्रशिक्षित व्यक्ति एक डॉक्टर की तरह ऐसे ट्रीटमेंट के कामों को अच्छी तरह से कर सकते हैं और इसमें लाखों युवाओं के लिए काम करने का, अर्निंग का स्कोप निकलेगा। इसी तरह हर शहर, गांव, मुहल्ले में प्लम्बर, इलेक्ट्रीशियन, कारपेंटर की आवश्यकता रहती है। यहां तक कि एक गार्डनर की आवश्यकता रहती है। ऐसे प्रशिक्षित लाखों लोगों की गांव-गांव, शहर-शहर में आवश्यकता रहती है। भारतीय विद्या मंदिर ने इस काम को हाथ में लिया है। शहरों और गांवों में छोटे-छोटे उपकरण एवं मशीनें काफी काम में आती हैं। इनके रख-रखाव करने की आवश्यकता होती है। इसका भी प्रशिक्षण देने की चेष्टा भारतीय विद्या मंदिर कर रहा है। इसी तरह स्वास्थ्य का क्षेत्र है, हमारे देश में इतने डॉक्टर तो नहीं हैं, लेकिन साधारण चिकित्सक या पहले जो कम्पाउण्डर आदि होते थे स्वास्थ्य संबंधी साधारण ज्ञान रखने वाले, इनकी भी आवश्यकता है। भारतीय विद्या मंदिर में सामान्य चिकित्सा की व्यवस्था करने की योजना विचाराधीन है। अगर ऐसे दैनिक जीवन का दायित्व युवा वर्ग को दें तो राष्ट्र निर्माण का काम होगा और इससे युवा वर्ग की जो आमदनी की आवश्यकता है उसकी भी पूर्ति हो सकती है।

एक बात और है कि आजकल की पढ़ाई में बचपन से लेकर ग्रेजुएशन तक जीवन-मूल्यों की, संस्कृति की, सामाजिक व्यवस्था की पढ़ाई का प्रशिक्षण नहीं रह गया है। आज के बच्चे के मां-बाप भी व्यस्त हैं जो उनको जीवन-मूल्य नहीं सिखाते हैं, तो क्या हम जीवन-मूल्य अथवा मानवीय मूल्यों से विहीन समाज का निर्माण कर रहे हैं। हमारी संस्कृति किधर जा रही है? समाज में इतनी कुंठा, चिन्ता, व्यावहारिक ज्ञान का अभाव, आस्था की कमी और सर्वोपरि राष्ट्रीय चेतना का अभाव चिन्तनीय है। भारतीय विद्या मंदिर इस क्षेत्र में भी कदम रखने की चेष्टा कर रहा है। इसमें मानवीय जीवन-मूल्यों एवं स्वास्थ्य तथा संस्कृति के संबंध में एक प्रारंभिक ज्ञान देने का पाठ्यक्रम आरंभ करने का विचार है। इस ज्ञान से एक स्वस्थ समाज का निर्माण होगा और राष्ट्रीय चेतना का विकास होगा। इससे राष्ट्र या देश के प्रति लोगों की भावना दीक्षित होगी। देश संगठित और सुदृढ़ हो जायेगा। बाहरी शक्तियां दुष्प्रचार के माध्यम से हमारी संस्कृति और सामाजिक व्यवस्था को विखंडित करने की चेष्टा में लगी हुई हैं। अतः हमें भारतीय समाज को सुसंगठित कर उदात्त जीवन-मूल्यों पर आधारित संस्कृति का विकास करने के पथ पर चलना होगा तभी हमारी संस्कृति बच पायेगी।

- डॉ. बिट्ठलदास मूंधड़ा

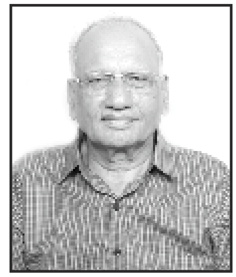

संपादकीय

कलकत्ता के महाराजा

हिन्दी के कविवर सूर्यकांत त्रिपाठी निराला ने 'रवीन्द्र कविता कानन' में लिखा, 'अंकुर को देखकर उसके भविष्य विस्तार के संबंध में अनुमान लगाना निरर्थक होता है। क्योंकि प्रायः सभी अंकुर एक ही तरह के होते हैं। उनमें होनहार कौन है, और कौन नहीं यह बतलाना जरा मुश्किल है।' तथापि 'होनहार बिरवान के होत चिकने पात' के अनुसार 7 मई 1861 को कोलकाता में अंकुरित हुए रवीन्द्रनाथ ने 7 वर्ष की अल्पायु में ही एक सुन्दर कविता की रचना कर डाली और 10 वर्ष की आयु में मध्ययुगीन संतों की वैष्णव पदावलियों का 'पदरत्नावली' नाम से अनुवाद किया, इस सुन्दर अनुवाद को पढ़कर उन्हें अपने पिता से 500 रुपये पुरस्कार स्वरूप प्राप्त हुए। फिर यह अंकुर वृक्ष ही नहीं, महावृक्ष होकर पल्लवित-पुष्पित हुआ तो उसकी महक बंगाल में ही नहीं पूरे भारत में और पूरे विश्व भर में व्याप्त हो गई। निरालाजी ठाकुर रवीन्द्रनाथ को बांग्ला का जातीय महाकवि लिखते हैं। सचमुच आज भी पूरा बंगाल उनके व्यक्तित्व-कृतित्व से आप्लावित है। अधिक सही तो यह लगता है कि वे केवल बंगाल के ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण भारत के जातीय महाकवि हैं। क्योंकि उनकी रचनाओं में सम्पूर्ण भारत की जातीय अस्मिता दिग्दर्शित है। उनकी इस सृजन-दृष्टि की पृष्ठभूमि में उनका परिवार है, वे लिखते हैं--'मेरा परिवार हिन्दू, मुस्लिम एवं ब्रिटिश सभ्यता की त्रिवेणी था।' रवि बाबू ने विभिन्न विधाओं में 141 पुस्तकें लिखी जो 27 खंडों में प्रकाशित हैं। इनमें 15 काव्य संकलन (12000 कविताएं), 11 गीत संग्रह (2000 गीत), 47 नाटक, 34 लेख-निबंध-आलोचना संग्रह, 13 उपन्यास, 12 कहानी संग्रह, 6 यात्रा वृत्तांत व 3 खंडों में आत्मकथा सम्मिलित हैं। उन्होंने विभिन्न विधाओं में लेखन किया, परन्तु मुख्य रूप से वे कवि थे इसीलिए लोक ने अत्यंत आह्लादित होकर उनको कविंद्र, विश्वकवि और कवि कुलगुरु जैसी उपाधियों से विभूषित किया। उनकी काव्यकृति-- गीतांजलि पर नोबेल पुरस्कार मिला और वे पूरे भारतीय उपमहाद्वीप में साहित्य का नोबेल पुरस्कार प्राप्त करने वाले एकमात्र साहित्यकार हैं। उनके द्वारा रचित जन-गण-मन... गीत को अत्यंत आदर से राष्ट्रगान के रूप में गाया जाता है। यही नहीं, उनके द्वारा रचित गीत ही बांग्लादेश का

राष्ट्रगान भी है। वस्तुतः रवीन्द्रनाथ विलक्षण व्यक्तित्व थे जिसमें साहित्य, संगीत, चित्रकला, रंगमंच, शिक्षा, समाजसेवा, देशप्रेम जैसे विविध आयामों का समावेश था। उनके द्वारा रचित गीत आज भी बंगाल के जन-जन की जुबान पर हैं। उनके नाटकों को कितनी बार मंचित किया जा चुका है और किया जा रहा है, इसकी गणना संभव नहीं। उनके द्वारा बनाये गये चित्र बंगाल की चित्रकला के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं, 'रवीन्द्र संगीत' बंगाल में अत्यंत लोकप्रिय है।

वर्षों पहले कलकत्ता आया था तो मेरे मित्र डॉ. आर.एल. नागौरी के यहां ठहरा था। कलकत्ता घूमने की बात चली तो उन्होंने रवीन्द्रनाथ ठाकुर के जोड़ासांकू स्थित निवास ठाकुरबाड़ी तथा बंगाल के वीरभूम जिले के

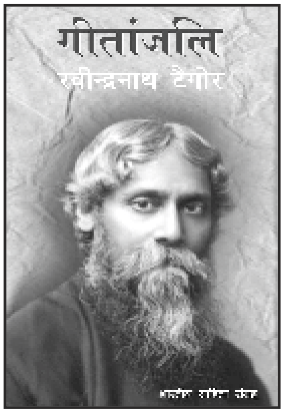

बोलपुर के निकट शांतिनिकेतन-विश्वभारती जाने को कहा, साथ ही कहा रवीन्द्रनाथ ठाकुर तो कलकत्ता के महाराजा थे। राजस्थान में राजा महाराजाओं के महल इत्यादि देखने हजारों लोग जाते हैं, वैसे ही कलकत्ता में रवि ठाकुर के निवास स्थान और उनके शांतिनिकेतन को देखने हजारों लोग जाते हैं। ठाकुरबाड़ी में रवि ठाकुर द्वारा व्यवहार में ली गई वस्तुओं, चित्रों आदि को देखकर रोमांचित हो उठा। शांतिनिकेतन देखने कलकत्ता से बोलपुर गया, बोलपुर स्टेशन के बाहर रेल के दो डिब्बों का सैलून प्रदर्शित है, इसी से रवि ठाकुर रेल यात्रा किया करते थे। बोलपुर से रिक्शे से शांतिनिकेतन पहुंचा। विभिन्न प्रकार के फूलों-फलों वाले वृक्षों के सघन उपवन में स्थित शांतिनिकेतन, जहां सड़कों पर झरझरा रहे थे राधा-चूड़ा व कृष्ण-चूड़ा के लाल-पीले फूल, चारों तरफ भीनी-भीनी सुगंध व्याप्त, चेतना प्रेरित उद्‌बोधित हो उठी, प्राचीन युगीन गुरुकुल साक्षात हो उठा। वृक्षों के नीचे पढ़ रहे बच्चे और वृक्षावलियों के बीच स्थित विभिन्न विषयों की उच्च शिक्षा के लिए भवन। महात्मा गांधी के यहां आगमन पर उनके ठहरने के लिए बनाया गया कुटीर। संग्रहालय में रवि ठाकुर से संबंधित वस्तुएं और उनके विराट व्यक्तित्व को प्रकट करते हुए बड़े-बड़े फोटोग्राफ। मेरे मित्र ने ठीक ही कहा था कि वे कलकत्ता के महाराजा थे, परन्तु उस तरह नहीं जैसे रियासतों के राजा-महाराजा, अपितु अपने कृतित्व से करोड़ों दिलों पर राज करने वाले महाराजा।

रवि बाबू भारतीय आर्ष काव्य धारा की विशद परम्परा के कविर्मनीषी थे जो साथ ही सामाजिक उत्थान, समाज सुधार, देशभक्ति की भावना, राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी के समर्थन तथा दकियानुसी परम्पराओं के विरुद्ध आधुनिकता व वैज्ञानिक दृष्टिकोण से जुड़े हुए थे। वस्तुतः रवीन्द्रनाथ महानता के अनगिनत गुणों के आगार थे। सबसे बड़ी बात ये कि वे मानवता के कवि थे। जैसा कि वे कहते हैं-- आमि मानुषेर कवि...। जेथाय थाके सबार अधम, दीनेर होते दीन। सेखाने जे चरण तोमार राजे, सबार पीछे/सबार नीचे, सब हारादेर माझे (जहां दीन से दीनतर व दीनतम रहता हो, हे ईश्वर! तुम्हारे चरण वहीं, सबके पीछे, सबसे नीचे एवं जिन्होंने सब कुछ खो दिया हो उनके बीच, विराजा करते हैं)। सही कहा जाता है कि रवीन्द्र जितने पढ़े गये उससे अधिक सुने गये, रवीन्द्र संगीत आज भी सर्वत्र आस्था के स्वर बिखेर रहा है। उनकी ईश्वर दर्शन के अनुभव को व्यक्त करने वाली कुछ बांग्ला पंक्तियों का हिन्दी अनुवाद---

कौन मेरे मन, करे नर्तन, नित नाचे... हे प्रकाश! मेरे प्रकाश, प्रकाश भुवन-भरे।
नित संग, ये मृदंग, कैसे बाजे... नयन पावन करे प्रकाश, प्रकाश हृदय हरे।
नाचे जन्म, नाचे मृत्यु, पीछे-पीछे... मेरे प्राणों के समीप, नाचे प्रकाश नाचे।
ता थै थै, ता थै थै, ता थै थै... मेरे हृदय की वीणा में, बाजे प्रकाश बाजे।
आनन्द, आनन्द, आनन्द... जागे आकाश, बहे बयार, सारी धरा हँसे।।

- डॉ. बाबूलाल शर्मा

हिन्दी नवगीत : स्वरूप, विकास और संभावनाएँ

प्रो. भगवानदास जैन

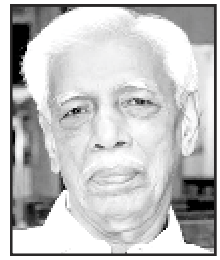

आधुनिक काल में साहित्य के क्षेत्र में जब भी नये प्रयोग हुए हैं, तो नई चेतना के अन्तर्गत परंपरागत विधाओं के नामकरण में भी अपेक्षित परिवर्तन का प्रश्न उठना स्वाभाविक था। तदनुसार प्रत्येक विधा के आगे नव या नया-नई जोड़कर उसे नई कविता, नई कहानी, नया नाटक आदि नाम दिये गए। इसी प्रकार गीत के स्थान पर नवगीत नाम भी प्रचलित हुआ। समीक्षकों ने इसे प्रयोगवादी अबूझ और निराशाजन्य झुटपुटों से निकलने का एक प्रयास भी कहा है। बहर हाल यह युग की मांग भी है। इन्हीं तथ्यों की ओर संकेत करते हुए डॉ. शंभुनाथ सिंह का कथन है, "नवीन पद्धति और विचारों के नवीन आयामों तथा नवीन भाव-सरणियों को अभिव्यक्त करने वाले गीत जब भी और जिस युग में भी लिखे जाएँगे नवगीत ही कहलाएँगे।"

यह भी एक सचाई है कि जब भी कोई विधा परंपरा से कुछ हटकर चलने लगती है तो उसे प्रवादों-विरोधों की आँधी से भी टकराना पड़ता है। स्वातंत्र्योत्तर गीतिकाव्य या नवगीत के साथ भी यही हुआ। उसे नया गीत, प्रगीत, लोकगीत और कबीरगीत के साथ-साथ 'अकहानी' या 'अकविता' की तरह 'अगीत' भी बताया गया। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इन समस्त नामों के साथ गीत शब्द तो सर्वत्र जुड़ा रहा। स्पष्ट है कि ऐसी कृतियों में भाव-विचार-समन्वित गेयता का तत्त्व तो बहरहाल मौजूद रहता ही है। अतः स्वातंत्र्योत्तर गीतिकाव्य को नवगीत कहना सर्वथा युक्तिसंगत है। इस संदर्भ में डॉ. शिवकुमार शर्मा का मत द्रष्टव्य है-- "नवगीत या नये गीत का आंदोलन नई कविता के ध्वजवाहकों के समान कतिपय नामों के भावों का आंदोलन है। आधुनिकता एवं वैज्ञानिक युगबोध और सौंदर्य के दावेदारों ने इन गीतों में नये प्रतीक, नये छंद, नई भाषा, नये अप्रस्तुत विधान और नये शिल्पविधान का प्रयोग कर नवगीत की सार्थकता सिद्ध करने का प्रयत्न किया है।"

स्पष्ट है आज का नवगीत परिवेशगत यथार्थ की अभिव्यक्ति का गीत है। कहने की आवश्यकता नहीं कि यह परंपरित गीतों की तुलना में विशेष समाज सापेक्ष है। श्री रवीन्द्र भ्रमर ने यथार्थ ही कहा है कि- "वास्तव में अगीत, नवगीत, आधुनिक गीत, आज का गीत से तात्पर्य उस गीत से है जो आज के जीव और जगत से संपृक्त है, जगत के यथार्थ से संवेदित है और युगबोध को ग्रहण करता है। स्वतंत्रता के पश्चात् के विसंगतिपूर्ण जीवन को, उसकी

कुरूपता को, उसमें लगे हुए मानव के संघर्ष को नये गीतकारों ने वाणी दी है।" अतः नवगीत को हम परंपरागत गीतिकाव्य की आधुनिक स्वातंत्र्योत्तर युग की विशेष कड़ी कह सकते हैं। यह किस रूप में नवीन या आधुनिक है, प्रसिद्ध गीतकार नीरज के शब्दों में देखिए--

जाने क्यों जितनी ही कम है बात किसी पर कहने की,

वह जाने क्यों उतने ही स्वर से शोर मचाता है।

जो जितना गहरा घाव लिये बैठा है दिल में,

वह दबी-दबी आहें भरता उतना सकुचाता है।

इस अनास्थापूर्ण कोलाहल के युग में नवगीतकारों ने आस्था के बिन्दुओं को चुना है। इस प्रकार नवगीतकारों ने गीत के विषयों की परिधि को विस्तृत करते हुए अनेक नये विषयों की खोज की है। श्री रामावतार त्यागी रचित ये गीतपंक्तियाँ देखिए जिनमें जीवन का यथार्थ चित्र उपस्थित किया गया है-

ममता कैसी प्यार कहाँ का

सुरख किस डाली पर फलता है?

हमको दर्द बदलने तक की,

सुविधा नहीं मिली जीवन में।

नवगीतकार का यह प्रयास रहा है कि गीत में समकालीन परिवेश की गंध मौजूद हो, उसे झेलने की बाध्यता हो और साथ ही सुखमय जीवन के सुखद सपने हों, संकल्प हों। ऐसे ही कुछ भाव युवा गीतकार राजेन्द्र गौतम के एक गीत में उपलब्ध होते हैं। गीतांश द्रष्टव्य है--

शोर को हम गीत में बदलें/ इन निरर्थक शब्द-ढूहों का--

खुरदुरापन ही घटे कुछ तो/ उमस से दम घोंटते दिन ये--

सुखद लम्हों में बटे कुछ तो/ चुप्पियों का यह विषैलापन-

लयों के नवनीत में बदलें।

नई कविता की भाँति नवगीत में भी बिम्बों, प्रतीकों तथा भाषा और लयानुवर्तन की नवीनता अपेक्षित है। इस प्रकार नवगीतकारों ने नवगीत के माध्यम से हमें एक नया युगबोध दिया है। वस्तुतः यह गीत का स्वाभाविक विकास ही है। नवगीत के लक्षणों में कुछ आग्रहों की भी अनिवार्यता स्वीकृत रही। यथा-अति बौद्धिकता, अतिशय कुंठाओं का समावेश, अनिश्चय की स्थिति, परंपराओं के प्रति ओढ़ी हुई विमुखता, असामाजिक प्रवृत्तियों का गायन, अहम्मन्यता का अतिरेक आदि कुछ ऐसी बातें हैं जो गीतों में घर कर गई; किन्तु अब उनका भी निरंतर तिरोभाव होता जा रहा है। स्वातंत्र्योत्तर इन गीतकारों में सर्वश्री अज्ञेय, नीरज, रमानाथ अवस्थी, शंभुनाथ सिंह, वीरेन्द्र मिश्र, केदारनाथ अग्रवाल, नरेश मेहता, रामदरश मिश्र, श्रीकांत वर्मा, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, सोम ठाकुर आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। युग प्रवर्त्तक ग़ज़लकार दुष्यंतकुमार का नाम भी इस फेहरिस्त में जोड़ा जा सकता है।

श्री प्रभाकर श्रोत्रिय संपादित प्रसिद्ध साहित्यिक पत्रिका 'वागर्थ' के 74वें अंक में प्रकाशित अपने एक साक्षात्कार में लब्धप्रतिष्ठ कवि-पत्रकार श्री मंगलेश डबराल ने गीतिकाव्य के विरोध में जो वक्तव्य दिये उनसे नवगीतकारों और गीतिकाव्य के अध्येताओं का क्षुब्ध होना स्वाभाविक है।। उनके वक्तव्य इस प्रकार हैं-- (1) गीतिकाव्य ने कविता की गंभीरता को नष्ट किया है और विचारों के दरवाजे बंद किये हैं। (2) ऐसी कविता समाज और मनुष्य का हाल नहीं बतलाती और इस तरह अपनी जिम्मेदारी पूरी नहीं करती। (3) वह किसी नैतिकता या ग्लानिबोध से रहित होती है और इसी से जुड़ा है उनका यह प्रश्न- क्या आज किसी जाने-माने गीतिकाव्यकार ने बाबरी मस्जिद को ढ़हाने या ग्राहम स्टेंस और उसके बच्चों को ज़िंदा जलाए जाने की भर्त्सना की है? (4) उसमें चुटकुलों को विचार की तरह परोसने की कोशिश होती है।

गीतिकाव्य के सम्बन्ध में श्री मंगलेश डबराल की

उक्त स्थापनाएँ निश्चय ही एक सजग पाठक और साहित्य के अध्येता को सोचने पर विवश करती हैं। प्रसिद्ध समकालीन रचनाकार एवं प्रतिष्ठित गीतकार कुमार रवीन्द्र ने उक्त चारों वक्तव्यों पर अपनी तीखी किन्तु सार्थक प्रतिक्रियाएँ व्यक्त करते हुए समूचे गीतिकाव्य की रक्षा का कर्तव्य निभाया है। कुमार रवीन्द्र की इन प्रतिक्रियाओं को सिद्धहस्त गीतकार व संपादक डॉ. विष्णुविराट द्वारा प्रकाशित अनियत-कालीन पत्रिका 'भव्य भारती' के पिछले एक अंक में ब्यौरेवार प्रकाशित किया गया है जिन्हें विस्तार-भय से यहाँ प्रस्तुत कर पाना कठिन है, किन्तु उनके द्वारा उद्धृत हिन्दी नवगीत के सशक्त हस्ताक्षर वसु मालवीय के एक नवगीत की निम्न पंक्तियाँ अवश्य ध्यातव्य हैं जिनमें बाबरी-ध्वंस से समूची भारतीय अस्मिता के टूटे हुए संस्पर्शों की ओर बड़ी संवेदनशीलता व अंतरंगता के साथ संकेत किया गया है। पंक्तियाँ हैं--

बहुत दिनों से नहीं आए घर/कहो अनवर/ क्या हुआ?

आ गया क्या बीच अपने भी/छह दिसंबर/ क्या हुआ?

टूटने को बहुत कुछ टूटा बचा क्या?

छा गई है देश के ऊपर अयोध्या!

धर्मग्रंथों से निकलकर/हो रहे तलवार अक्षर/ क्या हुआ?

बहुत दिनों से नहीं आए घर/कहो अनवर/ क्या हुआ ?

समयसंदर्भ से जुड़ी इन गीतपंक्तियों की मार्मिकता के क्षितिज कितनी दूर तक विस्तार पाते हैं, इसकी व्याख्या करना अनावश्यक है। सीधी सपाट भर्त्सना से अधिक दीर्घजीवी है ऐसी गीतिकविता और उसकी मर्मस्पर्शी भावानुभूति। स्वातंत्र्योत्तर ऐसे ही सजग नवगीतकारों की शृंखला में उल्लेखनीय नाम हैं सर्वश्री किशन सरोज, कैलाश गौतम, यश मालवीय, मधुर शास्त्री, भारत भूषण, राम अधीर, सुमित्रा कुमारी, ज्ञानवती सक्सेना, सरस्वती कुमार दीपक, तारा पांडे आदि जिन्होंने पूरी निष्ठा से हिन्दी नवगीत के कोष को समृद्ध किया है। हाँ, क्वचित् अतृप्तियों, कुंठाओं और वर्जनाओं के चित्र हैं तो दूसरी ओर सामाजिक चेतना भी प्रखरता के साथ मुखर हुई है। समाज में व्याप्त अर्थ-विषमताओं, सर्वतोमुखी मूल्य-विघटन, एवं सांस्कृतिक ह्रास का मर्मस्पर्शी चित्रण भी अनेकत्र मिलता है।

आज नवगीतों में एक ओर प्राकृतिक उपादान अपने नवीन रूप में व्यक्त हो रहे हैं तो दूसरी ओर सामाजिक परिवेश के माध्यम से वैयक्तिक सुख-दुख की अनुभूतियाँ भी व्यक्त हो रही हैं। ऐन्द्रिक, सांवेगिक और बौद्धिक चेतना के स्वर भी समन्वित रूप में मुखर हो रहे हैं। नवगीतों में कथ्यगत वैविध्य के साथ-साथ विभिन्न शिल्पगत प्रयोग भी दृष्टिगत हो रहे हैं, किन्तु उन तमाम अभिनव प्रयोगों के बीच लय की एक अन्तःसलिला भी अक्षुण्ण रूप से प्रवहमान रही है। वस्तुतः परुष व सुकुमार अनुभूतियों की सहज भंगिमा तथा तीव्र लयात्मकता से युक्त शब्दार्थमयी अभिव्यक्ति ही गीतिकाव्य के आधारभूत लक्षण हैं जो समकालीन नवगीतों में विद्यमान हैं।

साठोत्तरी नवगीतकारों में कई सशक्त हस्ताक्षर उभर कर सामने आए जिनसे हिन्दी गीतिकाव्य की बड़ी संभावनाएँ जुड़ी। कुछ नाम उल्लेखनीय हैं-- सर्वश्री कैलाश गौतम, यश मालवीय, कुमार रवीन्द्र, शीलेन्द्र कुमार चौहान, वेद प्रकाश अमिताभ, महेश अनघ, देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र', उमाशंकर तिवारी, अमरनाथ श्रीवास्तव, सुश्री महाश्वेता चतुर्वेदी, माहेश्वर तिवारी, श्रीकांत जोशी, सुश्री मधु प्रसाद, मधुकर गौड़, विष्णु विराट, किशोर काबरा, द्वारका प्रसाद सांचीहर, बुद्धिनाथ मिश्र, सुश्री रागिनी चतुर्वेदी आदि। 'जोड़ा ताल' और 'कविता लौट पड़ी' कृतियों के सर्जक सशक्त नवगीतकार श्री कैलाश गौतम का यह गीतांश देखिए जिसमें यथार्थ की कटु अनुभूति से उभरने वाली संवेदना और करुणा की मर्मस्पर्शी

व्यंजना है--

अकेले तुम्हीं सब उड़ाओगे भाई
कि मेरी तरफ भी बढ़ाओगे भाई।
दिखाओ ज़रा पेट देखूँ तो क्या-क्या
बप्पा रे बप्पा ! दइया रे दइया !
अब क्या खाके ये सब पचाओगे भाई।
बहुत हो चुका अब नहीं मैं सहूंगा
कहूंगा कहूँगा कहूंगा कहूँगा
कहाँ तक मुझे तुम दबाओगे भाई। ('कविता लौट पड़ी'--- पृ.146 से)

यश मालवीय अपने युगधर्म के प्रति निरंतर जागरूक हैं। समाज, राष्ट्र, राजनीति में व्याप्त विसंगतियों को अपने नवगीतों में बड़ी दक्षता के साथ पिरोकर व्यक्त करते हैं। आज के आदमी की विवशता और निरीहता का एक मर्मातक चित्र देखिए--

हर जगह भवदीय हैं/या झुके सर हैं।
लोग जैसे उड़ानों के/कटे पर हैं।
जोड़ते हैं हाथ/घिघियाते हमेशा।
दीनता भी हो गई है/एक पेशा।
स्वाभिमानों के/जले हुए-से घर हैं।

जीवन-मूल्यों के इस ह्रासोन्मुखी युग में आज हमारे आपसी रिश्तों में भी कुछ ऐसी गहरी दरारें पड़ गई हैं कि तमाम दुनियावी सम्बन्ध आज एकदम बेमानी लगते हैं। डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ के एक नवगीत की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं--

बहुत-बहुत चुभते हैं पाटल सम्बन्धों के।
लगता है रूठ गए पाहुन सुगन्धों के।
मौसम के साथ-साथ मन भी बदले।
आँखों में परिचय के चिह्न हुए धुंधले।
नफ़रत से भरे हुए दामन सौगन्धों के।
चेहरों पर अभिनय की बेशुमार पर्तें,
रिश्तों के इर्दगिर्द रोज़ नई शर्तें।
सिमट-सिमट आते हैं घेरे प्रतिबन्धों के।

अतिरिक्त बुद्धिवाद से ग्रस्त आज का मानव यंत्र-परिचालित खिलौने की मानिंद संवेदनाशून्य हो गया है। समकालीन जनजीवन का यह कटु सत्य डॉ. महाश्वेता चतुर्वेदी के एक नवगीत में अत्यंत प्रभावी ढंग से व्यक्त हुआ है -

सभ्य-से जो लगते/ यंत्र संचालित खिलौने।
चाभियाँ जब तक भरी हैं/ नाचते हमको मिलेंगे।
देख वासंती घटाएँ/ मन नहीं जिनके खिलेंगे।
मानवों के बीच आकर/ दीखते जड़ और बौने।

कुमार रवीन्द्र के नवगीतों में प्रायः जनवादी तेवर हैं। सुकुमार संवेदनाओं से वंचित आधुनिक शहरों में आज हर आम आदमी भीड़ में अकेला है। 'एक रोगिष्ठ बूढ़े से ब्याह दी जानेवाली नवयौवना संतो की युवा आकांक्षाओं का असमय ही बुढ़ा जाना' जैसे कई मर्मस्पर्शी जनवादी चित्र आपके नवगीतों में मिलते हैं। आपका एक नवगीतांश द्रष्टव्य हैं --

अजनबी है/ यह शहर या वह शहर
सारे शहर पत्थरों के हैं बने
महसूसते ये कुछ जहीं/ वहीं से हर गाँव में मीठा ज़हर
गाँव-घर-चौखट/ सभी कुछ लीलते ये
आदमी की खाल तक को/ छीलते ये
कुछ दिनों में/ साँस को कर डालते खंडहर।

डॉ. रामदरश मिश्र साठोत्तरी नवगीत के एक प्रतिष्ठित और सशक्त हस्ताक्षर हैं। आपके नवगीतों में आंचलिक परिवेश अपनी संपूर्ण चेतना के साथ व्यक्त हुआ है। वेदना-संवेदना सभर आपका एक नवगीतांश देखिए--

पथ सूना है, तुम हो हम हैं, आओ बात करें।
पता नहीं चलते-चलते कब कौन पिछड़ जाए,
कौन पात कब किस अंधी आंधी में झड़ जाए।
अभी समय की आँखें नम हैं,
आओ बात करें।

अविनाश श्रीवास्तव ने परिवेश की विसंगतियों तथा जनसाधारण की पीड़ा को बड़ी शिद्दत के साथ महसूस किया है। उनके काव्य संग्रह 'जब हम सिर्फ शब्द होते हैं' से उद्धृत ये गीतपंक्तियाँ देखिए जिनमें

गीतकार ने वर्तमान जन-जीवन की पीड़ा को कितनी मार्मिकता के साथ व्यक्त किया है--

सुनो पगडण्डी कहाँ जाकर रुकोगी?
दिग्भ्रमित करती यहाँ की सब दिशाएँ
पीटती हैं सर यहाँ अन्धी कराहें
चीख औ कोहराम से व्याकुल हवाएँ
चुप्पियों ने धर दबोची हैं फ़िज़ाएँ
आत्मीयों की बदलती आस्थाएँ
मार्ग के इन तक्षकों का क्या करोगी?

इस प्रकार आज हिन्दी साहित्यजगत में नवगीत की अपनी एक स्वतंत्र पहचान बन चुकी है। युगीन यथार्थबोध से संप्रेरित हिन्दी के समकालीन नवगीतकारों ने आज जनमानस को पर्याप्त आंदोलित किया है। प्रकृति के एकान्त उपासक गीतकार भी करवट बदल कर अब जनवादी गीतधारा में जुड़ गए हैं। नवगीत की काव्यधारा में जहाँ एक ओर जनवादी चेतना मुखर हुई है, वहीं दूसरी ओर उसमें व्यक्ति एवं समष्टि के स्तर पर अन्तर्बाह्य स्थितियों का सूक्ष्म चित्रांकन भी हुआ है। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि अपने परिवेश और उसमें साँस लेनेवाले आम आदमी के प्रति पूर्णतः प्रतिबद्ध हिन्दी के समसामयिक नवगीत वर्तमान के यथार्थ की संवेदनाओं से सम्पन्न है।

बी-105, मंगल तीर्थ पार्क,
कैनाल के पास,
जशोदानगर रोड, मणीनगर (पूर्व),
अहमदाबाद-382445 (गुजरात)
मो.-9426016862

●

आवाज लगाते रहिए

'पुन्न पांगळो हुवै
कोई चलावै तो चालै।'

पुण्य पंगु होता है, यदि कोई चलाने वाला, कोई प्रेरक मिल जावे तो पुण्य चल पड़ता है। नहीं तो पुण्य पड़ा-पड़ा सड़ा करता है।

इतिहास साक्षी है– जब कोई आवाज देने वाला मिल जाता है तो लोग जाग जाते हैं और उनके भीतर सोए पुण्य के पंख उग आते हैं, नहीं तो समाज पेट के गोरखधंधे में लगा सोया करता है।

बादल तो स्थिर है– हवा की प्रेरणा उन्हें इधर-उधर ले जाकर बरसने को तैयार करती हैं।

हनुमान बैठे-बैठे रहते हैं– कोई जाम्बवान् मिले तो सागर लांघा जावे।

चंद्रगुप्त को किसी चाणक्य की प्रतीक्षा है। हजारों वर्षों से गुलाम राष्ट्र की संचेतना के लिए चाहिए – कोई दयानंद, कोई तिलक, कोई गांधी।

यों कवि तो गाते ही हैं–

कोई जागे कि न जागे,
मुकद्दर उसका,
अपना फर्ज है
आवाज लगाते रहिए।

पर, यह आवाज किसी चारित्र्य से जब स्फुरित होती है तो इतिहास में नए सुनहरे अध्याय लिखे जाते हैं।

'उठ जाग मुसाफिर भोर भई!'

हिन्दी के भक्तिकाल की उत्तर आधुनिकता

डॉ. आशीष पाण्डेय

परिभाषाएँ शब्द एवं विचार को स्पष्ट तो करती हैं पर उसे सीमित भी कर देती हैं। उसकी अभिधा का निरूपण करने के बाद उसको एक ऐसी सीमा में बाँध देती हैं, जो लक्षणा और व्यंजना के सभी आरोह-अवरोह को समाप्त कर देती है। इसी तरह युगीन प्रासंगिकता को स्थापित करने में हम अतीत के पक्ष को वर्तमान में तलाशते हैं, पर कई बार वर्तमान में तलाशे गये सिद्धांत अतीत को ज्यादा नजदीक से समझने में सहायक होते हैं। भक्तिकाल को आधुनिक समय में तो बारबार प्रासंगिक किया जाता रहा है, पर आधुनिक परिस्थितियों को भक्तिकाल में प्रासंगिक करें तो शायद वह मध्ययुग के सामाजिक और सांस्कृतिक परिवेश के नेपथ्य में दबे तथ्यों को भी उभारने में सहायक साबित हो सकता है।

आधुनिकता और उत्तर आधुनिकता जैसे शब्द पारिभाषिक रूप से भले ही वर्तमान के वैचारिक और साहित्यिक व कला आंदोलनों को व्यक्त करें पर कोई संदेह नहीं कि आगे चलकर यह भी अपनी आज की परिभाषा के दायरों को ध्वस्त कर नये अर्थों को ग्रहण कर प्रतीक के रूप में प्रासंगिक बनेंगे। आधुनिकता को यदि वर्तमान से आगे की भूमि मानकर देखा जाये तो भक्तिकाल में हमें वह सारे तत्व मिल जायेंगे, जो किसी युग को वैचारिक, सांस्कृतिक और सामाजिक ही नहीं बल्कि संवाद और सृजन के स्तर पर आधुनिक या उत्तर आधुनिक सिद्ध करते हैं। भाषा और राजनीति के स्तर पर भले ही मध्ययुग ने भक्तिकाल की सीमाएं बाँध दी थीं, पर उन सीमाओं के भीतर भी भक्त कवियों ने अपने समय के साथ मुठभेड़ की है। वे न केवल अपने परिवेश, अपने संसार से टकराये हैं, बल्कि एक वैकल्पिक समाज का स्वरूप भी सामने रखा है। स्वीकृति और निषेध के इस व्यापक आंदोलन में वे सारे तत्व थे, जो किसी भी साहित्य के पारिभाषिक रूप से आधुनिक या उत्तर आधुनिक होने को स्थापित करते हैं।

तुलसी ने जिसे कलिकाल कहा, वह मध्ययुगीन यथार्थ ही है, और उसके विकल्प के रूप में जिस रामराज्य की संकल्पना उन्होंने दी है, उसे आधुनिक विद्वानों और आलोचकों ने 'यूटोपिया' कहकर खारिज करने का प्रयास किया है। आखिर किस आधार पर यूटोपिया कहकर तुलसी के रामराज्य को खारिज कर सकते हैं। तुलसी ने रामराज्य के पहले रामचरित मानस में तीन और राजव्यवस्थाओं को दिखाया है, एक अयोध्या में दशरथ की शासन

व्यवस्था, दूसरी किष्किंधा में वानर राज बालि की राजव्यवस्था और तीसरी लंका में लंकापति रावण की, तीनों में लोकमत राजा की इच्छा के सामने दबा हुआ था, रामराज्य में तुलसी लोक की स्थापना करते हैं। रामराज्य उनके लिए तत्कालीन युग की व्यवस्थाओं का एक प्रतीक है, जहां लोकमत को राजतंत्र मान देता है, इसे केवल यूटोपिया कहकर खारिज करना गलत है। तुलसी का समन्वयवाद भी भारतीय संविधान की निरपेक्षता से अलग नहीं है। बस उसको शब्दों की परिभाषा से बाहर निकालने की जरूरत है। मध्यकाल अंतर्विरोधों का युग था, दर्शन और सिद्धांत निर्बल हो रहे थे, कर्मकांड सबल। राजतंत्र के सामने लोक असहाय था, जातियाँ, उपजातियाँ समाज के खाँचे बना रही थी, ऐसे में उनका समन्वयवाद वही स्थापित करने का प्रयास करता है जो कबीर का आक्रोश का और 26 जनवरी 1950 को प्रवर्तित भारतीय संविधान भी धर्म-निरपेक्ष शब्द के द्वारा।

भक्तिकाल केवल उपासना पद्धतियों, रीति-रिवाजों के खंडन-मंडन, संप्रदायों के गठन या फिर कविता शैलियों के निरूपण का आंदोलन नहीं था, यह भारतीय संस्कृति और आस्था की विराट अस्मिता का सांस्कृतिक जन आंदोलन था। यह आंदोलन न तो अपनी पुरानी परंपरा से कटा था और न ही अपनी आगामी संस्कृति के प्रति जवाबदेही से मुक्त था। राजनीति भले आज राजतंत्र से लोकतंत्र में पहुंच चुकी है, विज्ञान भले ही पूरे युग को बदल चुका है, अर्थ भले ही धर्म पर भारी पड़ चुका है, इन सबके बावजूद जन आज भी भक्तिकाल से जुड़ा है, आज भी आस्था अगर आंदोलन का रूप लेती है तो भक्तिकाल के स्तंभ ही उसका आधार बनते हैं, भले ही उनकी व्याख्या आज का समाज अपने रूप में करे, अपने हित में करे, अपने स्वार्थवश करे। फिर चाहे वह महाराष्ट्र के दलित आंदोलन हों या फिर उत्तर भारत की शोषित जातियों के। आज भी तुकाराम, नामदेव तो कहीं कबीर और रैदास ही अभिव्यक्तियों की आधारभूमि मिलती है। आज सात सौ साल बीत जाने के बाद भी हमारी धमनियों में वह रक्त दौड़ना कम नहीं हुआ है। यही कारण है कि भक्तिकाल की संपूर्ण व्याख्या आज भी अधूरी है। वह युग केवल वैचारिक मतभेद वाले संतों की वाणी का युग नहीं था। उनके स्वर अलग थे, शैली अलग थी, भाषा अलग थी, पर वे सब एक धरातल पर आकर मिल रहे थे। फिर चाहे वह *मानुष प्रेम भए बैकुंठी, नाहि तक कहां छार एक मूठी* कहते जायसी हों, या *जाति पांति पूछे नहिं कोई, हरि को भजे सो हरि का होई* कहते कबीर के गुरु रामानंद। फिर चाहे वह साधु-संतों के साथ बैठी मीरा हों या फिर ज्ञानयोग के प्रकांड पंडित को अनपढ़ अहिरिनों के जरिये ध्वस्त करते सूरदास। अब यहां पर बात अगर कविता की करें, जो कि हमारा मुख्य उद्देश्य है तो इस व्यापक आंदोलन से जुड़े भिन्न स्वरों में एकता खोजना, उन्हें भक्तिकाल की प्रवृत्तियों में बांधकर आंकना इनके महत्व को खत्म करना है, इनकी अस्पष्ट और अधूरी व्याख्या करना है। दुर्भाग्यवश ऐसा हुआ बहुत है।

भले ही कबीर हिन्दू ही नहीं मुस्लिम धर्म के भी अभिजात्य और कट्टर पंथी ताकतों को निम्न वर्ग के पक्ष में खड़े होकर फटकार रहे थे, भले ही जायसी सूफी संप्रदाय की सौम्य साधना पद्धति में हिन्दू घरों की लोककथाओं और किंवदंतियों को पिरोकर दो भिन्न संस्कृतियों के बीच की खाई पाट रहे थे, भले ही तुलसीदास शैव-वैष्णव के संप्रदायगत खांचों में समन्वय बिठा रहे थे और भले ही सूरदास विशुद्ध प्रेममार्ग को ही ईश आराधना हेतु सिद्धि रूप में स्थापित कर रहे थे। बावजूद उनके स्वर, कथ्य सब अलग थे। वे एक होकर भी अलग थे, अब यदि आलोचक इसे एक मानकर देखेंगे तो हर कवि का एक बहुत बड़ा भाग अपने आप अनदेखा रह जायेगा। इस तथ्य को स्वीकारते हुए हिन्दी के प्रसिद्ध आलोचक मैनेजर पाण्डेय भी कहते हैं कि आचार्य

शुक्ल, आचार्य द्विवेदी, डॉ. राम विलास शर्मा और डॉ. नामवर सिंह के भक्तिकाल से संबद्ध महत्वपूर्ण आलोचनात्मक प्रयत्नों के बावजूद भक्तिकाल की व्याख्या आज भी आलोचकों के लिए चुनौती बनी हुई है। इसका कारण वे मानते हैं भक्तिकाल की अपार सृजनात्मक समृद्धि।

अपार सृजनात्मक समृद्धि के साथ ही उसको प्रासंगिक बनाने के साथ ही आधुनिक युग को उस काल में प्रासंगिक करके देखने में उस आंदोलन की जिजीविषा और ज्यादा स्पष्ट होकर चमकने लगती है। बहुत से मत धराशायी हो जाते हैं, जब शोध पूर्वाग्रह से परे और तार्किकता के साथ युगीन परिस्थितियों के आलोक में किया जाता है। भक्तिकाल का साहित्य जितना विपुल है, उतनी ही उसकी व्याख्या क्लिष्ट है, केवल भक्ति के गेय पदों में और उपासना पद्धतियों के विवेचन में इस युग के साहित्य को बांटने से हम बहुत कुछ मिट्टी में दबा देंगे। आने वाली पीढ़ियां भक्तिकाल के व्याख्याकारों के एकांगी दृष्टिकोण को पूरी तरह से नकार देगी। एक उदाहरण के तौर पर देखना चाहें तो दाम्पत्य रूप में प्रेम निरूपण सूफी संतों और मीरांबाई दोनों के यहां मिलता है। पर मीरां के प्रेम को भक्ति के धागे में बांध देना गलत है, वह विशुद्ध प्रेम है। ऐसे में मीरां का स्त्रीत्व भक्तित्व के नीचे दब जाता है। मीरां की कविता को विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम की व्याख्या के आधार पर आंकना मीरा को खो देना है। मीरां के पद भजन की सात्विकता में कैसे बदल गये? भगवान के प्रति राग है पर उसे जबरन खींचकर भक्ति के खांचे में डाल देना मीरांबाई को खो देना है। अगर मान भी लिया जाये कि दास्य भाव की भक्ति है, सख्य भाव की भक्ति है, जैसी मीरां की मानी गई है, तो फिर भक्तिकाल और उसके बाद के युग में दूसरी मीरां क्यों नहीं हो पाई? हमारे यहां सिद्ध परंपरा में सिद्ध 84, नाथ परंपरा में 9 नाथ भी हुये। निर्गुण संप्रदाय में भी कबीर, रैदास, धन्ना, पीपा आदि हुए, रामभक्त और कृष्णभक्त कवियों की भी लंबी सूची है। सूफियों की भी लंबी परंपरा रही है, फिर मीरां अकेली क्यों? अगर वह परंपरा थी, भक्ति निरूपण की शैली थी? तो मीरां अकेली क्यों हैं?

तनक हरि चितवां म्हारी ओर।
हम चितवां थे चितवो णा हरि, हिबड़ों बड़ो कठोर।
म्हारी आसा चितवणि थारी, ओर णा दूजो ठौर।
ऊभ्याँ ठाड़ी अरज करूँ छूं करतां-करतां भोर।1

यहां पर विशेष व्याख्या न करने के बावजूद अर्थ बहुत कुछ कह जाता है, बस मीरां को भक्त की जगह स्त्री रूप में देखने की जरूरत है। उनके प्रेम को सहज रूप में स्वीकारने वाली दृष्टि की जरूरत है। मलंग, कमलीपन वाले सूफियों में भी अपने प्रिय के पीर में दीवानापन है, पर उनके दर्द का किसी को पता चले न चले फर्क नहीं पड़ता, पर मीरां का दर्द कोई नहीं जान पाया, यही पीड़ा है।

हे री म्हां दरद दीवाणी, म्हारो दरद न जाण्यां कोय।
घायल री गति घायल जाण्यां, हिवणो अगण संजोय।
जौहर की गति जौहरी जाणै, क्या जाण्यां जिन खोय।
दरद की मार्यां दर-दर डोलूं, वैद मिल्यां नहीं कोय।[2]

यह तो मीरां के काव्य का एक विश्लेषण का बिंदु हो गया। इसके अलावा रामानंद, वल्लभाचार्य से लेकर कबीर, सूर, जायसी, तुलसी आदि की वैचारिक धारणा और सामाजिक चिंताएं विभिन्न धरातल पर थीं। इतनी विराट सामाजिक चेतना वाले भक्तों को केवल भक्ति के परिप्रेक्ष्य में देखना सही नहीं है। हालांकि इस परिप्रेक्ष्य के अलावा भी जो प्रयास हुए हैं वे नाकाफी हैं, अभी भी भक्तिकाल अपने विराट रूप में नये आलोचकों के समक्ष खड़ा है। यह उस युग की परिस्थितियों में उठे सांस्कृतिक आंदोलन की जड़ की गहराई को ही बयां करता है कि वह कितनी मजबूत थीं। जब भारतीय समाज अपनी युगीन

विसंगतियों के खिलाफ लोक के रूप में खड़ा होगा, उसके मूल भक्ति-आंदोलन से ही आएंगे।

भक्तिकाल का एक महत्वपूर्ण योगदान यह रहा है कि इसने हिन्दी की अपनी संवेदना को शब्द रूप दिया, न केवल शब्द दिया बल्कि हिन्दी कविता को महान उत्कर्ष पर पहुंचाया। भक्तिकाल के कवियों ने हिन्दी भाषा में चले आ रहे शब्दों, मुहावरों, लोकोक्तियों को ही रचनात्मक अभिव्यक्ति नहीं दी, बल्कि अभी तक चले आ रहे विचार, भाव को भी शब्द प्रदान किये। भाषा और भाव इस युग में इस कदर एक दूसरे में मिल गये उससे अत्यंत लोकग्राह्य अभिव्यक्ति का सृजन हुआ, जो प्राकृत और अपभ्रंश में नहीं हुई थी। हिन्दी की जातीय अवधारणा के तत्व इसीलिए भक्तिकालीन भाषा साहित्य में पाये जाते हैं। निर्गुण संतों की भाषा में भले ही पंचमेल मिला हो, पर सगुण भक्तों ने भावों को जितनी गहराई दी उतनी ही गहराई उनकी भाषा और कवित्त में आती गई। कारण यह भी रहा कि यह लोक से जुड़े थे। आदिकाल का काव्य अधिकांशतः राजदरबारों में राजाश्रित कवियों ने लिखा था, वह अधिकतर प्रसस्तिगायन था। उनके यहां वीर और शृंगार रस राजपरिवारों के अधिकार में था। पर भक्तिकाल में कवित्व का केंद्र राजा नहीं प्रजा हो गया। लोक से जुड़ाव ही उनकी कविता की गहराई और ऊँचाई दोनों को तय करता है, वरना इसी ब्रजभाषा में की गई रीतिकालीन कविता काव्यत्व में भले ही अप्रतिम हो पर लोक से जुड़ नहीं पाई। हिन्दी कविता की आत्मा जो बाद में हिन्दी की जातीय कविता की अवधारणा का आधार बनी, जो बाद में भारतेंदु हरिश्चंद्र के युग में नवजागरण का प्रकाश बिंदु बनी, वह हिन्दी कविता की सोच, विचारणा और भावना भक्तिकाल में ही विकसित हुई। यहां पर यह भी ध्यान रखना आवश्यक है कि यह हिन्दी काव्य और उसकी भाषा के उत्कर्ष का प्रयास उस युग में किया जा रहा था, जब हिन्दुस्तान में शासक वर्ग अपनी एक विदेशी भाषा और सोच के साथ स्थापित हो चुका था। उनका उद्देश्य कविता नहीं रहा, लोक रहा। तुलसीदास कहते हैं, *कवित्त विवेक एक नहीं मोरे*। क्या उन्हें संस्कृत नहीं आती थी? रामचरित मानस के हर कांड के प्रारंभ में आये श्लोक अपने आप में किसी भी संस्कृत कविता से कम नहीं ठहरते। वह अगर सुंदरकांड में कहते हैं--- *मनोजवं मारुततुल्य वेगं, जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठं। वातात्मजं वानरयूथ मुख्यं, श्रीरामदूतं शरणं प्रपद्ये।।*[3] तो उसी में विभीषण के सामने कहला देते हैं कि---- *प्रात लेइ जो नाम हमारा, सो दिन ताहि न मिले अहारा।*[4] या यह कि *कपि की ममता पूंछ पर सबहिं कहउं समुझाइ। तेल बोरि पट बांधि पुनि पावक देहु लगाइ।*[5] यह है लोक पर पकड़, लोक की सोच पर पकड़, उसके शब्द और संवाद पर पकड़। आचार्य रामचंद्र शुक्ल इसीलिए कहते हैं कि "तुलसी, सूर ये उपदेशक नहीं हैं, भक्त हैं। लोक माधुर्य का अनेक रूपों में साक्षात्कार करके मुग्ध होना और मुग्ध करना ही इन भक्तों का प्रधान व्यवसाय है। उनका शस्त्र भी मानव हृदय है और लक्ष्य भी।"

भक्तिकाल के अनेक ऐसे पक्ष हैं जो आज भी आलोचना धर्म को चुनौती देते खड़े हैं। कबीर की सामाजिक दृष्टि और उसकी प्रगतिशीलता को आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने पहचाना, पर उनके बाद भी कबीर की व्याख्याएं हो रही हैं वे कहीं परिपाटी से हटने के चक्कर में कबीर को भी धूमिल कर दे रही हैं। यही कारण है कि मूर्तिपूजा और कर्मकांड का खंडन करने वाले कबीरपंथ के रूप में स्थापित हो गये। हालांकि यही चीज बुद्ध और महावीर के साथ भी हो रही है। मूर्तिपूजा के खंडन करने वाले गौतम बुद्ध की मूर्तियां वर्तमान समय में सबसे ज्यादा बनाई जाने वाली मूर्तियों में हैं। भक्तिकाल के आपसी वैचारिक अंतर्द्वंद्व और आलोचकों के अपने दृष्टिकोण ने कई जगह शोध की बजाय भक्त कवियों को अवरोध में ही बांध दिया है। तुलसी हिन्दू धर्म के आवरण में लपेट दिये गये, तो कबीर खिंचते हुए

विदेशी राजनीतिक विचारधारा अपनाने वाले देशी कथित बुद्धिजीवियों के खाते में चले जा रहे हैं। मीरां और जायसी की कविता आज भी पहचान के बड़े मार्ग की बाट जोह रही है। जायसी के लिए विजयदेव नारायण साही और मीरां के लिए विश्वनाथ त्रिपाठी के अलावा अभी भी काफी चुनौतियां बची हैं। मीरां की थोड़ी सी चर्चा ऊपर हो गई है। जायसी का लेखन, सोच भारतीय हो चुकी थी, वही उनकी भाषा और भाव में भी साफ झलकता है। हिन्दू घरों में कही जाने वाली कहानियों को लेकर प्रेमाख्यान परंपरा ही सूफी साहित्य की पहचान है।

संप्रदायगत और वैचारिक विभिन्नता के बाद सामाजिक रूप से भी देखा जाये तो भक्तिकाल के कवियों में कई जगह मतभेद और अंतर दिखाई देते हैं। फिर चाहे वह वर्णाश्रम व्यवस्था हो या फिर नारी की स्थिति। यह शोध का विषय है ही कि निम्नवर्ग की जातियों के लिए आवाज उठाने वाले निर्गुण कवियों का उसी निम्नवर्ग के घरों में शोषित नारी के प्रति दृष्टिकोण कई जगह चौंकाता है। इस दृष्टि से भी केवल माया महाठगिनी हम जानी कहकर कबीर की और *ढोल गंवार शूद्र पशु नारी, सकल ताड़ना के अधिकारी कहकर* तुलसी की आलोचना भर से काम नहीं चलना है। यह कवि के व्यक्तिगत या महाकाव्य में उनके चरित्र के विचार हो सकते हैं। पर नारी के प्रति उनके दृष्टिकोण को केवल इतने से आंकना संपूर्ण आकलन नहीं है। मीरां के काव्य में पुरुषवादी सामंती समाज और रूढ़ियों के खिलाफ जो नारी के पक्ष से विरोध दिखता है, वह अन्य कवियों में नहीं दिखता है। यहां तक कि तदयुगीन सती प्रथा जैसी कुरीतियों पर भी या तो उनके स्वर मुखर नहीं हुए या फिर उन्हें अभी ढंग से व्याख्यायित ही नहीं किया गया। तुलसीदास यदि रामचरितमानस के अंत में *कामहि नारि पियारि जिम* कहकर अपने ग्रंथ के प्रति प्रियता की तुलना कर जाते हैं तो कबीर भी सती होने की इच्छा को स्त्री के प्रेम की पराकाष्ठा कह देते हैं

सांई से लगन कठिन है भाई।
जैसे सती चढ़ी सत ऊपर पिया की राह मन भाई।

एक और उदाहरण----

सती जलन कूं निकसी, पिउ का सुमिर सनेह।
सबद सुनत जिउ निकल्या, भूलि गई सब देह।

एक और----

विरह जलाई हौं जलूं, जलती जलहर जाऊं।
मो देख्या जलहर जलै, संतो कहां बुझाऊँ।
दुलहा दुलहिन मिल गये फीकी परी बरात।

यहां पर यह द्रष्टव्य है कि बरात फीकी कब पड़ती है? अवध के गांवों में आज भी बुजुर्गों की मृत्यु पर अंतिम यात्रा को बारात कहकर कई जगह संबोधित किया जाता है, मेला उठ गया कहा जाता है। यहां बारात फीकी पड़ना और दुलहा दुलहिन का मिल जाना इसी प्रथा की ओर इंगित करता है। इन जैसी तमाम साखियों को आलोचकों ने कहीं विरहाग्नि की तीव्रता में दर्शाया है तो कहीं परमात्मा से मिलन की व्याकुलता से। पर कबीर के कई अन्य पदों और इतिहास में सती होने के प्रसंगों के अध्ययन से साफ पता चलता है कि इनमें अधिकतर चित्र सती के लिए ले जाई जाती स्त्रियों और सती होती स्त्री की पीड़ा का ही अंकन है। हालांकि कबीर की कविता सतीप्रथा का विरोध नहीं बल्कि सती के महिमामंडन को दिखाती है, हालांकि कई साखियों में वे इस प्रथा से आहत भी दिखते हैं। जायसी के पद्मावत में---- सती खण्ड में यह महिमामंडन नहीं तो क्या है कि रत्नसेन के साथ सती होने दोनों रानियां पहुंचती हैं और जायसी लिखते-*लागि कंठ आग दै होरी। छार भई जरि अंग न मोड़ी।* जायसी के आलोचक विजयदेव नारायण साही कहते हैं कि सहमरण यानि सती होने तक सौतिया डाह बना रहा। एकाध प्रसंग सूरसागर में भी आते हैं।

इसी प्रकार भक्तिकाल की तमाम व्याख्याएं अभी भी खुद को स्पष्ट किये जाने की बाट जोह रही हैं। यहां हमारा तात्पर्य यह नहीं है कि भक्तिकाल पर अभी तक किये गये काम में कमी रही है, पर आलोचना धर्म

अभी भी अपनी पूर्णता को नहीं पहुंचा है। उत्तर आधुनिकता और आधुनिकता की परिभाषाओं से मुक्त कर भक्तिकाल को उस आलोक में देखने से बहुत सी नेपथ्यमय चीजें उभरकर सामने आएंगी। भक्त कवियों का अगर वास्तविक तदयुगीन स्वरूप हमें नहीं मिल पायेगा तो अधूरे इतिहास में हम भविष्य को नहीं बना पाएंगे और आज के वर्गीय खांचे में अपने विराट वैचारिक अवधारणा वाले साहित्यिक स्वर्णयुग के कवियों को बंटते हुए देखते रह जाएंगे। कबीर कब दलितों के संरक्षक बन राजनीतिक दलों के मंच पर पहुंच जाएंगे और तुलसी हिंदू धर्म के मंच पर, हम समझ भी नहीं पाएंगे। भक्तिकाल आज भी तमाम प्रश्नों और चुनौतियों के साथ आलोचना धर्म की प्रतीक्षा कर रहा है। यह निराश करता है कि बहुत से विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों में शोध के लिए विषय चयन करते समय विद्वजन भक्तिकाल के भक्तिकाव्य को यह कहकर नकार देते हैं कि इस पर पर्याप्त कार्य हो चुका है जबकि कोई युग कुछ कलमों से छनकर पर्याप्त नहीं हो जाता। जब तक आलोचना में नई पद्धतियां जन्म लेती रहेंगी, हर युग, हर अतीत यह अपेक्षा करेगा कि उस नई दृष्टि से भविष्य उसका भी आकलन करे।

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
बनस्थली विद्यापीठ (राजस्थान)-304022
मो.- 8808427443

●

पुरस्कारों हेतु मनोनयन आमंत्रित

रामनिवास आशारानी लाखोटिया राजस्थानी व्यक्तित्व सम्मान : अखिल भारतीय मारवाड़ी सम्मेलन एवं दिल्ली की समाजसेवी संस्था रामनिवास आशारानी लाखोटिया ट्रस्ट के संयुक्त तत्वावधान में राजस्थानी मूल के एक व्यक्ति को समाज के प्रति विशिष्ट योगदान हेतु सम्मानित करने हेतु इस सम्मान की स्थापना की गई है। इस सम्मान के अंतर्गत मानपत्र एवं 100000 रुपये की सम्मान राशि के अतिरिक्त समारोह स्थल तक पधारने एवं लौटने हेतु मार्ग-व्यय एवं निवास आदि की व्यवस्था भी दी जाती है।

सीताराम रूंगटा राजस्थानी भाषा-साहित्य सम्मान : अखिल भारतीय मारवाड़ी सम्मेलन के पूर्व अध्यक्ष एवं बिहार प्रादेशिक मारवाड़ी सम्मेलन के पूर्व अध्यक्ष स्वर्गीय सीताराम रूंगटा की स्मृति में राजस्थानी भाषा की श्रीवृद्धि एवं प्रोत्साहन हेतु राजस्थानी साहित्यकारों को देने के लिए इस सम्मान की स्थापना की गई है। इसके अंतर्गत मानपत्र एवं 21000 रुपये की सम्मान राशि के अतिरिक्त समारोह स्थल तक पधारने एवं लौटने हेतु मार्ग-व्यय एवं निवास आदि की व्यवस्था भी दी जाती है।

केदारनाथ भागीरथी देवी कानोड़िया राजस्थानी भाषा बाल-साहित्य सम्मान : सुप्रसिद्ध उद्योगपति एवं समाजसेवी स्व. केदारनाथ कानोड़िया एवं उनकी धर्मपत्नी स्व. भागीरथी देवी कानोडिया की स्मृति में राजस्थानी भाषा बाल-साहित्य की श्रीवृद्धि एवं प्रोत्साहन हेतु इस सम्मान की स्थापना की गई है। इसके अंतर्गत मानपत्र एवं 21000 रुपये की सम्मान राशि के अतिरिक्त समारोह स्थल तक पधारने एवं लौटने हेतु मार्ग-व्यय एवं निवास आदि की व्यवस्था भी दी जाती है।

नोट : पुरस्कारों के लिए अनुशंसा/आवेदन पत्र दिनांक 15 जुलाई 2024 तक अखिल भारतवर्षीय मारवाड़ी सम्मेलन के केंद्रीय कार्यालय-4बी, डकबैक हाउस, चौथा तल, 41, शेक्सपिअर सरणी, कोलकाता-700017, ईमेल : aimf1935@gmail.com पर भेजने की कृपा करें।

मलयालम भाषा के महाकवि

गोविंद शंकर कुरुप

गोविंद शंकर कुरुप (उपनाम महाकवि जी), जिनको प्रायः जी शंकर कुरुप के नाम से जाना जाता है, मलयालम भाषा के प्रसिद्ध कवि हैं। वे मलयालम भाषा के महान कवि हैं जिनको उनकी प्रसिद्ध कृति 'ओटक्कुषल' (बांस-बांसुरी) के लिए भारत सरकार द्वारा साहित्य के सर्वोच्च पुरस्कार ज्ञानपीठ से सम्मानित किया गया। वे इस सम्मान से सम्मानित किए जाने वाले सर्वप्रथम भारतीय थे।

गोविंद शंकर कुरुप का जन्म केरल एर्नाकुलम के ग्राम नायतोट्टम में 3 जून (कुछ विद्वानों के अनुसार 5 जून) सन् 1901 की शंकर वारियार के घर में हुआ था। उनकी माता का नाम लक्ष्मी कुट्टी अम्मा था। बचपन में ही उनके पिता का देहांत हो जाने के कारण उनका पालन-पोषण मामा गोविंद के घर में हुआ था। उनके मामा के नाम पर ही उनका नाम गोविंद शंकर कुरुप पड़ा। वंश परंपरा मातृकुल से चलने के कारण इनका कुलनाम 'कुरुप' हुआ। अब बालक गोविंद तीन वर्ष के हुए, संयोग से उन्हीं दिनों में नायतोट्टम में एक प्राथमिक पाठशाला की स्थापना हुई। बालक गोविंद को वहीं प्रवेश दिला दिया गया। उस पाठशाला में कक्षा तीन तक ही शिक्षा की व्यवस्था थी।

कुरुप के मामा संस्कृत के पंडित और बड़े ज्योतिषी थे जिसके कारण बालक गोविंद की संस्कृत के अध्ययन में रुचि रही। वहीं से उन्हें संस्कृत काव्य सिखने के संस्कार मिले।

उनके मामा की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी तथापि प्राथमिक शिक्षा दिलाने के लिए किसी प्रकार व्यवस्था करके बालक कुरुप को घर से लगभग 11 किलोमीटर दूर स्थिल पेरुमपावूर के मलयालम मिडिल स्कूल भेजा गया। वहाँ छात्रावास की व्यवस्था थी, जहाँ उन्हें एक मुक्त और शांत वातावरण मिला। वहाँ प्राकृतिक दृश्यों की छटा बिखरी हुई थी। वे वहाँ गहन चिंतन-मनन में लीन रहते थे। उनके मन में काव्य-चेतना के अंकुर वहीं से फूटे थे। वहाँ एक सघन वन था, जहाँ हरी-भरी लता-कुंजों से घिरा भगवती वनदेवी का एक अर्धभग्न मंदिर था। कुरुप वहाँ बैठकर अनेक पक्षियों का मधुर कलरव सुना करते थे और प्रायः संस्कृत के छंदों में फुटकर श्लोकों की रचना किया करते थे। सातवीं कक्षा के गोविंद मुवाट्टुपुषा मलयालम हाईस्कूल पहुँचे। वहाँ वे दो वर्ष रहे जो उनके विकास की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण सिद्ध हुए। उन्होंने कोचीन राज्य की पंडित परीक्षा उत्तीर्ण की, जो उस समय

अध्यापन की योग्यता के लिए आवश्यक थी।

गोविंद बचपन से ही विलक्षण प्रतिभा के धनी थे। 8 वर्ष की आयु में वे अमरकोश, सिद्ध रूपम और श्री रामोदत्तम आदि ग्रंथ कंठस्थ कर चुके थे और रघुवंश महाकाव्य के कई श्लोक पढ़ चुके थे। 11 वर्ष की आयु में महाकवि कुंजिकुट्टम तंपुरान के गांव आगमन पर वे कविता की और प्रवृत्त हुए। उनकी संस्कृत साहित्य में गहन रुचि थी।

जी शंकर कुरुप की पहली कविता सन् 1918 में 'आत्मपोषिणी' नामक पत्रिका में 'प्रकृति को नमस्कार' शीर्षक से प्रकाशित हुई। उनका प्रथम कविता संग्रह 'साहित्य कौस्तुभम' नाम से प्रकाशित हुआ। उस समय वे तिरुविल्वामाला हाईस्कूल के अध्यापक हो गए थे। वहाँ उन्होंने वर्ष 1921 से 1925 तक कार्य किया। इसके बाद वे वर्ष 1925 में ही चालाकुटि हाईस्कूल में आ गए। यहाँ आकर प्रकृति के प्रति आरंभ में जो एक सहज आकर्षण भाव था, वह परिपक्व होकर उपासना की भावना में परिवर्तित हो गया। इसी वर्ष 'साहित्य कौस्तुभम कृति' का द्वितीय भाग प्रकाशित हुआ। अब तक उनकी काव्य प्रतिभा की ख्याति दूर-दूर तक फैल चुकी थी। वर्ष 1931 में 'नाले' (आगामी कल) नामक कविता से उन्हें अत्यंत लोकप्रियता मिल चुकी थी। वर्ष 1937 से 1956 तक वे महाराजा कॉलेज एर्नाकुलम में मलयालम के प्राध्यापक पद पर कार्यरत रहे।

वर्ष 1961 में कविता के लिए उनके द्वारा रचित कविता संग्रह 'विश्व दर्शनम' के लिए उन्हें केरल साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया। प्राध्यापकी से अवकाश लेने के बाद वे आकाशवाणी त्रिवेन्दम केंद्र में सलाहकार पद पर नियुक्त हुए।

सन् 1965 में उन्हें भारत सरकार द्वारा साहित्य का सर्वोच्च पुरस्कार ज्ञानपीठ प्रदान किया गया। उन्हें इस सम्मान से सम्मानित किए जाने वाले प्रथम भारतीय होने का गौरव प्राप्त है। सन 1967 में उन्हें सोवियत लैण्ड पुरस्कार प्राप्त हुआ। साहित्य और शिक्षा के क्षेत्र में उनके उल्लेखनीय योगदान के लिए भारत सरकार ने पद्म भूषण से सम्मानित किया तथा उसी वर्ष उन्हें राज्यसभा का सदस्य भी मनोनीत किया गया, जहाँ वे सन् 1968 से सन 1972 तक रहे।

2 फरवरी 1978 को तिरुवनंतपुरम में इस महान साहित्यकार का निधन हो गया। इण्डिया पोस्ट ने वर्ष 2003 में ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेताओं की शृंखला के अंतर्गत कुरुप पर एक स्मारक डाक टिकट जारी किया।

उनकी सहधर्मिणी सुभद्राम्मा ने कुरुप की साहित्य सर्जना में अत्यंत त्याग और समर्पण से सहयोग दिया जिसकी झलक महाकवि के निश्छल प्रकृति से सहज ही अभिव्यंजित होती है।

जी. शंकर कुरुप ने साहित्य की काव्य, निबंध, नाटक, बाल-साहित्य, आत्मकथा, अनुवाद आदि विविध विधाओं में 40 से अधिक मौलिक एवं अनूदित कृतियों की सर्जना की है, जिसमें से कुछ कृतियों के नाम इस प्रकार हैं--

कविता संग्रह- साहित्य कौतुकम (चार खण्डों में), सूर्यकांति, नवातिथि, पूजा पुष्पमा, निमिषम, चेकतिरुकार, मुत्तुकल, वनगायकन, ओटक्कुषल, अंतर्दाह, विश्वदर्शनम, जीवन संगीतम, पाथेपम, कवितकल, मधुरम सौम्यम दीप्तम, वैलिच्चत्तिंटे दूतम, सान्ध्यरागम।

निबंध संग्रह- गद्योपहारम, लेखमाल, राक्कुयिलकुल, मुत्तुम चिप्पियुम, जी. यूटे नोटबुक, जी. यूटे गद्य लेखनंगल

नाटक- इरुट्टिनु मुंपू, सान्ध्य, आगस्ट

बाल साहित्य- इलम चंचुकल, ओलप्पी, राधाराणि, जीयुटे बालकवितकाल।

आत्मकथा-- ओम्मयुटि ओलंगलिल (दो भागों में)

अनुवाद-- बांग्ला कृतियाँ-- गीतांजलि, एकोत्तरशती, टैगोर।

संस्कृत कृतियाँ-- मध्यम व्यायोग और मेघदूत

फारसी कृति-- रुबाइयात ए उमर खैय्याम

फ्रेंच कृति-- द ओल्ड मैन हू डज नॉट वांट टु डाय, द चाइल्ड व्हिच डज नॉट वांट टु बी बार्न

उन्होंने मलयालम फिल्म 'निर्मला' के लिए गीत लिखे और 'अभय' में अपनी कविताओं के लिए सभी प्रदान किया है। उनकी ओटक्कुषल काव्य कृति का प्रथम संस्करण वर्ष 1950 में प्रकाशित हुआ। इसमें वर्तमान में 58 कविताएँ (मूल रूप में कुल 60 कविताएँ थी) हैं। यह उनकी सुप्रसिद्ध काव्य कृति है, जिसके लिए उन्हें साहित्य का सर्वोच्च पुरस्कार ज्ञानपीठ प्राप्त हुआ था। इससे वे मलयालम भाषा के प्रथम सम्मानित होने वाले कवि के रूप में विख्यात हुए। इस कृति की कविताओं में कवि ने प्रकृति और उसकी शिव-सुंदर रहस्ययता की अनुभूति कराई है। कवि प्रकृति के कण-कण और क्षण-क्षण की मनमोहिनी सौंदर्य छवि में परा चेतन शक्ति का आभास प्राप्त करता है। उसे साक्षात अनुभूति होती है कि विराट प्रकृति और वह स्वयं एक अनादि अनंत चैतन्य अंश है। कई उत्कृष्ट प्रेम कविताएँ भी इसमें सम्मिलित है किंतु इस प्रेम में नर-नारी का भौतिक प्रेम नहीं अपितु प्रकृति और निखिल ब्रह्म-चेतना का प्रेम है जिसका यह संपूर्ण सृष्टि चक्र प्रतिफलन है।

अंत में इस कालजयी कृति का एक काव्यांश का हिंदी भावानुवाद प्रस्तुत है, जिसका शीर्षक 'बासुरी' है--

लीला-भाव से
जीवित गीतों को गाने वाले
दिशा और काल की सीमाओं से
निर्बंध हे ! महामहिमामय
मैं जन्मा था अज्ञात-अपरिचित
कहीं मिट्टी में पड़े-पड़े
नष्ट हो जाने के लिए
किंतु तेरी वैभवशालिनी दया ने
मुझे बना दिया बांसुरी
चराचर को आनंदित करने वाली
तूने अपनी सांस की फूंक से
उत्पन्न कर दी है प्राणों में सिहरन
इस निःसार खोखली नली में

महाकवि जी. शंकर कुरुप को हृदयतः शत् शत् नमन।

गौरीशंकर वैश्य विनम्र
117 आदिलनगर, विकासनगर
लखनऊ-226022
मो.-09956087585

अमरता का रहस्य

मृत्यु जीवन का अंत है, यह राय उनकी है- जो जीते हैं, लाचार होकर। मृत्यु जीवन की विवशता है यह उनका कहना है जिन्हें जीवन जीना नहीं आता।

मृत्यु जीवन का मूल्य है, यह उनकी राय, जिन्हें जीवन का बोध है।

लेकिन- जो जीवन के एक-एक दिन को, पल-पल बनाकर जीते हैं, उल्लास व हर्ष से उमड़ते जीते हैं, वे मृत्यु से जीवन का पूरा मूल्य वसूलते हैं- जो केवल जीते ही नहीं- जीवन्त हो जीते हैं, जो जीवन को भार नहीं-वरदान बनाकर जीते हैं। जीवन एक दुर्लभ अवसर है। इस अवसर को जो लोकसंग्रह के लिये समर्पित करते हैं, वे ही सही अर्थ में जीते हैं।

यही जीवन की अमरता का रहस्य है।

21 वीं सदी के हिंदी उपन्यास लेखन में महानगरीय बोध

डॉ. संदीप रणभिरकर

बीसवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध हमारे लिए कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। विविध विमर्शों की होड़ ने चिंतन धारा को एक नूतन दिशा प्रदान की। भूमंडलीकरण अपनी तमाम अच्छाइयों-बुराइयों के साथ समूचे परिवेश को अपनी गिरफ्त में लेने लगा। फलतः 20 वीं सदी के अंतिम दशक में सामाजिक परिवर्तन की गति सर्वाधिक तीव्र रही। विगत कई शताब्दियों ने उतने विस्तृत तरीके से मनुष्य को प्रभावित नहीं किया जितना बीसवीं शताब्दी ने। 21 वीं सदी तक आते-आते बाजारवाद के गिरफ्त में सारी दुनिया आ गई और हम सभी बेचने-खरीदने को ही जीवन का साध्य मान बैठे। लुभावने विज्ञापनों का शोर और बाज़ार के तिकड़मों को सजा-सँवारकर जनसमुदाय के सामने परोसा जा रहा है। इन सारी गतिविधियों से कहीं न कहीं हमें बाध्य किया जा रहा है, रिश्तों से अधिक वस्तुओं को महत्व देने के लिए। पूंजीवाद की कोख से पैदा हुआ अमानवीकरण अब भूमंडलीकरण का मुखौटा लगाकर पूरे विश्व समुदाय में मानवीयता को नष्ट करते हुए केवल लेन-देन की दुनिया बना देना चाहता है। इस प्रवृत्ति को आज का कवि बड़े मोहक अंदाज में प्रस्तुत करता है। *"सोन चिरैया! सोन चिरैया! / उड़ने में कैसा लगता है / मुफ्त नहीं बोलूंगी, भैया, / कहने का पैसा लगता है।"*[1]

इस परिदृश्य की व्यापक क्रीड़ास्थली मुख्य रूप से महानगर ही हैं। निश्चित रूप से ये सारी गतिविधियाँ साहित्य की पारखी नजरों से ओझल नहीं हो सकती। हिंदी में इन मुद्दों पर लिखे गए साहित्य की भरमार है। इन पहलुओं पर बातचीत करने हेतु उपन्यास तो सबसे कारगर विधा है। बाजारवाद की जंजीरों में कैद यह 21वीं सदी का समाज किन-किन सामाजिक और मानवीय मूल्यों से कटता जा रहा है और पश्चिम की भोगवादी संस्कृति का बिना सोचे-समझे अंधानुकरण कर रहा है इसकी भी व्यापक पड़ताल इस सदी के उपन्यासों में होती है। नई सदी में हिंदी उपन्यास लेखन ने गुणात्मक और मात्रात्मक दृष्टि से अभूतपूर्व वृद्धि की है। लेखकों द्वारा उपन्यास लेखन ट्रेंड में संरचनात्मक बदलाव को ध्यान में रखकर औपन्यासिक कथ्य का वर्गीकरण किया गया। नई सदी के उपन्यास लेखन के संदर्भ में पुष्पपाल सिंह लिखते हैं-- "नई शक्ति या कहें नई सहस्त्राब्दि के आगमन पर हम अपने साहित्य के नए प्रकल्प अवश्य निश्चित कर सकते हैं किन्तु रचनाकार तो अपनी-अपनी तरह

से ही अपने समय से साक्षात्कार कर सृजन में प्रवृत्त होगा। इसलिए सहस्त्राब्दि के प्रारंभ के साथ ही साहित्य रचना में कोई नया प्रस्थान-बिंदु रेखांकित किया जा सकता है, यह सोचना भी अविवेकपूर्ण होगा। परिवेश में जब समाजिक, धार्मिक, वैज्ञानिक, प्रौद्योगिक, तकनीकी आदि स्थितियाँ बदलेंगी तभी साहित्य में उनकी प्रतिच्छवि रूपायित होगी, स्थितियों के सकार और नकार की स्थितियाँ स्वतः बनती चली जाती हैं।"[2]

वर्तमान दौर में प्राचीन सामाजिक ढाँचा टूट चुका है, पुराने आदर्श आज के सन्दर्भ में अपनी अर्थवत्ता खो चुके हैं। अब समाज न देहाती रहा है न शहरी, अब उसका परंपरागत संगठन ही नष्ट हो गया है। आजकल महानगर ही जीवन के केंद्र बने हैं। महानगरों में पनपनेवाली जीवन-विधि का पूरे समाज पर प्रभाव पड़ता है, पड़ रहा है। जीवन के केंद्र में अर्थ की प्रतिष्ठा हो चली, परिणामतः स्पर्द्धा की भावना का विकास हुआ। स्पर्द्धा और अर्थ के आचारशास्त्र ने मनुष्य को संकीर्ण और छोटा बना दिया है। 21 वीं सदी के उपन्यासों में शहरी परिवारों के बड़े ही अनुभूति प्रवण चित्र हैं और आधुनिक जीवन की उदासी, अकेलापन, अजनबीपन, ऊब, घुटन, संत्रास आदि का अंकन अत्यंत गहरे यथार्थ बोध से किया गया है। महानगरों में भूमंडलीकरण के परिणाम-स्वरूप संवेदना, संबंध और सामूहिकता की दुनिया में जो निर्मम ध्वंस हुआ है- तब्दीलियों का जो तूफ़ान निर्मित हुआ है- उसका भी प्रामाणिक एवं गहन अंकन इन उपन्यासों में देखा जा सकता है। साथ ही उपभोक्तावाद की क्रूरताओं का विखंडन, शोषित-प्रताड़ित जातियों के सकारात्मक उभार एवं नई स्त्री की शक्ति एवं व्यथा का दक्ष चित्रांकन भी इन उपन्यासों में है।

व्यक्ति महानगरों में अपने सपनों की गठरी लेकर जाता है किन्तु उसके सपने मात्र सपने ही रह जाते हैं। राजीव सिंह के शब्दों में कहा जा सकता है-- *"खुशियों की खोज में लोग मैं निकलते हैं शहर में / वहां से मातम लेकर आना अब आम बात है"।* अपने अधूरे सपने अधूरी खुशियों के साथ व्यक्ति स्वयं को नितांत अकेला महसूस करता है। आपसी प्रतिस्पर्द्धा, भौतिकवाद और निरर्थकता बोध से संत्रस्त महानगरीय परिवेश में अकेलापन व्यक्ति की नियति बन जाता है। कितनी बड़ी विडंबना है कि आज का मनुष्य एक ओर दूसरे ग्रहों पर अपना अधिकार जमाना चाहता है, समूचे विश्व से जुड़ना चाहता है किन्तु वैयक्तिक धरातल पर वह सब से टूटकर नितांत अकेला होता चला जा रहा है। भीड़भाड से युक्त महानगरों में व्यक्ति के अकेलेपन को और अधिक गहराई से महसूस किया जा सकता है। "रेहन पर रग्घू" के रघुनाथ साधन-संपन्न, भरापूरा परिवार होने के बावजूद बच्चों से उनकी दूरियाँ बनी हुई हैं। बूढ़े रघुनाथ ने अपनी सारी जिंदगी, सारी कमाई अपनों पर खर्च कर दी फिर भी उनको अपनों में अपने नहीं मिले। एक अकेलापन, परायापन उनके भीतर लगातार बना रहता है। उनका यह अकेलापन गाँव से, शहर से, परिवार से अंततः बच्चों से है। कभी-कभी तिलमिला कर कह उठते हैं-- "शीला हमारे तीन बच्चे हैं लेकिन पता नहीं क्यों कभी-कभी मेरे भीतर ऐसी हूक उठती है जैसे लगता है मेरी औरत बाँझ है और मैं निःसंतान पिता हूँ।"[3] ये बात रघुनाथ अपने उन बच्चों के लिए कह रहे हैं जो उनके जीवन के गुमान थे और उन्होंने बच्चों के भविष्य को सँवारने में अपनी सारी जिंदगी गंवा दी थी। बच्चों ने अपने निजी स्वार्थ के खातिर उनको अकेलेपन की पीड़ा भुगतने को मजबूर कर दिया है।

उषा प्रियंवदा का उपन्यास 'भया कबीर उदास' की लिली अपने पारिवारिक संस्कारों के कारण स्वाभाविक रूप में किसी से रिश्ता नहीं बना पाती। फलतः वह अकेले ही जीवन यापन करती है। किन्तु विदेशी भूमि पर रहने वाली इस आधुनिक स्त्री के जीवन में एक भयावह त्रासदी घटित होती है। उसे

कैंसर हो जाता है। इस भयंकर बीमारी के साथ उसका युद्ध प्रारम्भ हो जाता है जिसमें वह नितांत अकेली है, किन्तु धीरे-धीरे वह सबकुछ स्वीकार कर लेती है-- "मैं अकेली हूँ, और रंगस्थली में मेरा वास है। मैं सचमुच सब स्वीकार कर लेती हूँ, करना ही पड़ता है।"[4] इस भयंकर पीड़ा में उसके मिलने वाले तो बहुत हैं पर लिली की आँखों के आंसुओं को अपनी आँख में देखने वाले कहीं नजर नहीं आते-- "उसे महसूस होता है कि वह जिस स्थान पर खड़ी है, वह बाकी संसार से कटकर अलग हो गया है, बीच में एक दुर्गम खाई बढ़ती जा रही है। संसार के नॉर्मल लोग 'अन्य' हो चले हैं, चैन से सोते हैं, उन्हें कल का डर नहीं। पहले कभी इतना अकेलापन नहीं लगा।"[5]

नई चेतना के संस्पर्श और नए विचारों की सुगबुगाहट से जब आस्थाएँ ढहने लगती हैं तब सारी मान्यताओं पर प्रश्नचिह्न लगा दिया जाता है। परिणामस्वरूप अजनबीपन की समस्या धीरे-धीरे मानस में गहराने लगती है। इस प्रकार मशीनी सभ्यता ने आज मनुष्य और जगत के बीच अलगाव की स्थिति उत्पन्न कर दी। इससे उबरने के लिए मनुष्य छटपटा रहा है। महानगरीय परिवेश में सबके साथ होने के बावजूद व्यक्ति स्वयं को सबसे कटा हुआ महसूस कर रहा है। सभी रिश्तेनातों के प्रति उसके मन में एक अजनबीयत घर कर गई है। वर्षों से जिन सबंधों का वह निर्वाह कर रहा था उन संबंधों के प्रति गहरी उदासीनता उसके मन में व्याप्त हो गई है। 'रेहन पर रग्घू', 'दौड़', 'उधर के लोग' आदि उपन्यासों में जिन परिवारों का चित्रण उपन्यासकारों ने किया है उनमें अजनबीपन की भावना मुखर दिखाई पड़ती है। 'दौड़' में राकेश और रेखा तथा 'रेहन पर रग्घू' में रघुनाथ अजनबीपन की पीड़ा से जूझते हुए दिखाई देते हैं।

महानगरों में घुटन, संत्रास, निराशा, शून्यता आदि का बोध गहराता जा रहा है। घुटन के कारण निराशा से घिरा हुआ व्यक्ति स्वयं को एक शून्य की स्थिति में पा रहा है। परिणामतः उसे संत्रास का शिकार होना पड़ रहा है। बीसवीं सदी के अंतिम दशक में भारत में हुए आर्थिक फेरबदल से भारी संख्या में मल्टीनेशनल कंपनियाँ निवेश को उन्मुख हुई। निःसंदेह भारी निवेश से रोजगार में बढ़ोत्तरी हुई लेकिन केवल प्रशिक्षितों के लिए, वो भी इस शर्त के साथ कि यंत्रवत बनकर कार्य करना होगा। अकुशल नागरिकों के लिए दरवाजे आज भी बंद हैं, थोड़ा-बहुत खुले भी हैं तो रास्ते बहुत संकरे हैं। ये बड़ी-बड़ी बहुराष्ट्रिय कंपनियाँ कर्मचारियों पर इतना मनोवैज्ञानिक दबाव बनाए रहती हैं कि उनका जीवन घुटघुट कर ही बीतता है, जिसकी अंतिम परिणति ये है कि बहुत सारे कर्मचारी विविध प्रकार के मनोवैज्ञानिक रोग के शिकार होते जाते हैं। 'एक ब्रेक के बाद' उपन्यास ऐसी ही विशाल कंपनियों एवं बाजार की नब्ज को टटोलता हुआ लोकप्रिय उपन्यास है। लेखिका ने कर्मचारियों के मनोभावों को बहुत ही तार्किक और संजीदगी से पढ़ा है-- "बड़ी कम्पनियों में काम करने वाले इतने तनाव में रहते हैं जैसे कि प्रेशर-कुकर में बंद हों। ऑफिस की पॉलिटिक्स, तो कभी ऑफिस में बॉस से खटपट, कभी प्रमोशन की चिंता- हर आदमी जैसे फटने की कगार पर रहता है। बहुत सी कम्पनियों ने अपने दफ्तर में 'काऊंसलिंग' करने को मनोचिकित्सक बैठा लिए हैं।"[6]

परिवार समाज की एक ऐसी संस्था है जिसे मानव ने आत्मसंरक्षण, वंशवर्धन और जातीय जीवन के विकास हेतु स्थापित की। इसीलिए भारतीय जीवन प्रणाली में परिवार को अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। परन्तु कालप्रवाह में वर्तमान भौतिक युग में समाज में विभिन्न कारणों से बड़ी तीव्र गति से परिवर्तन आ रहे हैं। वर्तमान परिवेश में महानगरों में सामूहिक संस्थाओं का पारंपरिक महत्त्व, जले हुए मोम की तरह पिघल कर समाप्त हो रहा है। 'उधर के लोग' में अजय नावरिया ने बताया है कि दिल्ली जैसे महानगर की जीवन शैली कितनी एकांगी हो गई है, परिवार का मतलब है पति-पत्नी और बच्चे। माता-

पिता, भाई-बहन, चाचा-चाची जैसे रिश्ते तो बस नाम के रह जाते हैं। ये उपन्यास में लिखते हैं कि-- "वंदना की माँ से चिकचिक लगी रहती थी। माँ उससे घर के काम में मदद की उम्मीद करती थी। वंदना मदद करती भी थी, पर उसे काम की आदत ही नहीं थी। माँ उसे कोई काम देती, तो वह पाँच मिनट के काम में घंटा भर लगा देती। माँ उस पर झल्लाती और मुझे ताने मारती। वंदना के पिता चार्टर्ड एकाउंटेंट थे और काफी पैसे वाले थे। वंदना, माँ के रूखे व्यवहार से तंग आकर मुझे खरीखोटी सुनाने लगी थी। माँ और पत्नी के झगड़े के बीच मैं पिस गया था।"[7]

महानगरों में व्यक्तिवाद और स्वार्थपरता के चलते दरकते रिश्तों को देखा जा सकता है। आज रिश्ते सिली हुई जिल्दबंद किताब से न होकर आल्पिन से जुड़े खुले पन्नों से हो गए हैं, जो हवा के छोटे हलके झोंकों से फड़फड़ाने लगते हैं या आल्पिन से अलग होकर बिखर जाते हैं। कई रिश्तों ने तो समझौते की शक्ल ले ली है। पति-पत्नी का सम्बन्ध भी आज महज औपचारिक रूप में विवशता वश ढोया जा रहा है। 'उधर के लोग' उपन्यास के प्रोफेसर साहब ऐसे ही भावुक प्रेम में फंसे हैं। चाहकर भी इस रिश्ते को कोई नाम नहीं दे पा रहे हैं। पत्नी से अनबन थी, उन्हें यह संबंध सहारा तो दे रहा था पर सुकून नहीं आ रहा था। फिर भी दोनों एक दूसरे के सहज प्रेम की डोर से बंधे थे। वो महिला एक कॉलगर्ल थी लेकिन प्रोफेसर की नजरों में कोई दुराग्रह नहीं था। वे कहते हैं कि-- "आयशा और मेरे रिश्तों में, इन सब बातों के तूल पकड़ने की जगह ही नहीं है।" मैंने इतनी सहजता से, इसे कहने की कोशिश की थी, ताकि वह ताने की शक्ल में जाने की बजाय एक तथ्यात्मक कथन की तरह पेश हो। 'हम दोनों अपनी हदें जानते हैं। हम दोस्ती का मतलब 'अनऑथराइज्ड एनक्रोचमेंट' नहीं मानते, एक दूसरे के 'पर्सनल स्पेस' का ख्याल रखते हैं।"[8] आज के डिजिटल समाज में मानवीय सम्बन्धों के परिवेश में जो आभासीपन आया है वह लगातार विकृत और जर्जर समाज का ही निर्माण करेगा न कि सरल एवं स्वस्थ समाज का। महानगरों की चकाचौंध में बाजार ने सभी को प्रभावित किया है। यह बाजार मंडी से अब सीधे घरों में और लोगों के जीवन में प्रवेश कर चुका है। जावेद अख्तर 'तरकश' में बाजार के इसी हस्तक्षेप के संबंध में लिखते हैं--

"एक ये घर जिस घर में मेरा साज-ओ-सामाँ रहता है,
एक वो घर जिस घर में मेरी बूढ़ी नानी रहती थी"[9]

रिश्तों में बाजारीकरण के प्रवेश को ममता कालिया ने 'दौड़' उपन्यास में प्रभावी रूप में चित्रित किया है। जब रेखा अपने बेटे पवन से मिलने राजकोट जाती है तो पवन और स्टेला माँ को खुश करने के लिए एक महंगी चद्दर उसे उपहार में देते हैं। जब माँ उसे लेने से मना कर देती है तो बाजारवाद का चेहरा सामने आता है। पवन कहता है-- "आपको पता है हमारे तीन हजार रुपये इस गिफ्ट पर खर्च हुए हैं। इतनी कीमती चीज की कोई कद्र नहीं है आपको।"[10] परन्तु इसमें पवन का कोई दोष नहीं है। राकेश और रेखा दोनों पर ही बाजार का ऐसा प्रभाव पड़ता है कि वे अपने बच्चों को पूर्ण रूप से बाजारवाद का अंग बना देते हैं। राकेश-रेखा व पवन-स्टेला की सोच में इसी वजह से गहरा अंतर दिखाई देता है। इसी बाजारवाद के चलते उपभोक्तावादी संस्कृति लोगों पर हावी हो चुकी है। आज का युवा शहरों में जाकर अधिक से अधिक धन कमाना चाहता है। ऐसे में उसके लिए नैतिकता के कोई मायने नहीं हैं। पवन अपने पिता से कहता है-- "सच तो यह है पापा जहाँ हर महीने वेतन मिले वही जगह अपनी होती है और कोई नहीं।"[11]

महानगरों में अर्थकेन्द्रित समाज व्यवस्था की क्रूर मानसिकता को देखा जा सकता है। भौतिक सुख-सुविधाओं के प्रति बढ़ते आकर्षण से अर्थ प्राप्ति ही मनुष्य का चरम लक्ष्य बनता जा रहा है। समाज में प्रतिष्ठा और सम्मान की कसौटी मानवमूल्य न होकर केवल भौतिक समृद्धि होती जा रही है। हमारे सभी

सामाजिक संबंधों एवं रिश्तों पर अर्थतंत्र हावी हो गया है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे सभी संबंधों पर अर्थ का विषधर कुंडली मारे बैठा है। 'दौड़' उपन्यास में पवन कुछ दिन घर रहने आता है तो जाते हुए माँ के हाथ में चेक थमाता है, क्योंकि उसके आने से घर-खर्च में वृद्धि हुई थी। वह माँ की ममता का भी चेक के माध्यम से हिसाब चुकाता है। सोनी जी की मृत्यु पर उनका अमेरिका रहनेवाला बेटा भारत नहीं लौटता और किराए के बेटे से अंत्यविधि निपटाने को कहता है। आज अर्थ ने हर सम्बन्ध, हर भावना को लगभग निगल लिया है। तुरंत एक झटके में अमीर बनने का ख्वाब सभी के मन में है। महानगरों के अधिकांश युवाओं के मन को प्रदीप सौरभ बारीकी से पढ़ने की कोशिश करते हैं-- "कॉल सेंटरों में आने वाला हर नया युवा कॉल सेंटर की चमक से बच नहीं पाता है। एक तो उम्र कच्ची होती है और अनुभव में अनाड़ी होते हैं। इस उम्र में जेब भरी हो तो कुछ भी करने में फिर हिचक कैसी है। कॉल सेंटरों में काम करने के लिए बहुत बड़ा ज्ञानी होने की जरूरत नहीं है। बारहवीं पास कर परसूइंग ग्रेजुएशन का बायोडाटा दे कर नौकरी मिल जाती है। योग्यता सिर्फ अंग्रेजी जानना है।"[12] जब इन युवाओं की इस तरह कम उम्र में ही जेब भरी होगी तो बाजार अपना खेल खेलेगा ही।

महानगरीय जीवन की भागादौड़ी ने समाज को बहुत हद तक संवेदनशून्य बना दिया है। नई सदी में मजबूत होते स्वार्थवादी परिवर्तनों के कारण धीरे-धीरे हम सभी मानसिक विकलांगता के शिकार हो रहे हैं। अमानवीय एवं संवेदनहीन होते समाज को काशीनाथ सिंह ने यथार्थ रूप में अभिव्यक्त किया है-- "मान लो, किसी के घर में कोई चोर घुस आए किसी के क्या मेरे ही घर में चोर घुस आए और वह भी अकेले, बिना किसी साथी के, औज़ार के; डाकू घुस आए बिना राइफल बंदूक के अकेले, रात बिरात तो छोड़ो, खड़ी दोपहर में, कोई बलात्कारी ही घुस आए दिन दहाड़े और मुझे उठाकर ले जाये पार्क में और मैं चिल्लाऊँ कि बचाओ! बचाओ! तो कौन सुनेगा? (ज्यादातर बूढ़े या तो बहरे हैं या ऊंचा सुनते हैं) कौन दौड़ेगा (ज़्यादातर घुटनों और जोड़ों के दर्द से परेशान हैं) कौन देखेगा (ज्यादातर मोतियाबिंद का आपरेशन कराके आँख पर हरी पट्टी बाँधे हैं), यह सब न कर सकें तो खड़ा होकर चिल्लाएँ तो सही (ज्यादातर की कमर झुकी है और मुँह में दाँत नहीं हैं, वे गुगुआ तो सकते हैं, चिल्ला नहीं सकते) ।" प्रतीकात्मक रूप में उपन्यासकार ने पंगुता का शिकार होते समाज का जीवंत चित्रण किया है। महानगरीय परिवेश में किसी को फुर्सत नहीं कि वो अपने आसपड़ोस झांके। अतः नाक की सीध चलना और कई मामलों को नजरअंदाज करना महानगरों में बसनेवालों की विवशता बन चुकी है, क्योंकि वे किसी मामले में फंसने की जोखिम नहीं लेना चाहते।

नई सदी में महानगरों में अपसंस्कृतिकरण को भी तीव्रता से अनुभव किया जा सकता है। आज परंपरा, संस्कृति, आदर्श, मूल्य जैसे शब्द अपनी अर्थवत्ता खो चुके हैं। यदि कोई इनकी दुहाई देगा तो उसे पिछड़ा माना जाएगा। शहरों में आज नई संस्कृति उदयमान है। 'मुन्नी मोबाइल' उपन्यास में दिखाया गया है कि कैसे दिल्ली जैसे महानगरों पर एकाएक बाजारवादी संस्कृति हावी होती गई। कैसे सुंदरता के पैमाने हमारी अपनी परंपरा से हटकर तय होने लगे और किस-किस तरह की पार्टियों में नई पीढ़ी जीने लगी है। इसकी यहाँ खूब चर्चा की गई है। भूमंडलीय संस्कृति कैसे इन महानगरों पर अपना रंग चढ़ा रही है इसका यथार्थ चित्र खींचते हुए लेखक प्रदीप सौरभ अपने उपन्यास में लिखते हैं-- "लड़की खास इंप्रेसिव नहीं है। लेकिन है बिंदास। पाँच फुटी उस लड़की के बाल बरगण्डी और लटें गोल्ड हैं। दुबली होने के लिए कान में आईपाड नैनों लगाकर छत पर ब्रिस्क वाक करती है। आईपाड से कान खाली होते हैं तो मोबाइल उसकी जगह ले लेता है। जंक फूड पर पली है। दालभात से अगर वास्ता पड़ा होगा तो बचपन में ही।

पिज्जा मारगेरिटा उसकी पहली पसंद है। डोमिनो से लेकर पिज़्ज़ा हट तक सभी वेंडर उसके घर पर आमतौर पर खड़े रहते हैं। कभी-कभी उसके टैरेस पर पार्टियाँ भी होती हैं। हल्का म्यूजिक भी होता है। सिगरेट के छल्लों से टैरेस भर जाता है। पार्टी जैसे-जैसे परवान चढ़ती है बियर के केन नीचे गिरना शुरू हो जाते हैं।"[14]

संस्कृति के साथ-साथ आज नैतिकता के भी मानदंड बदल गए हैं। इस नई नैतिकता में शील-अश्लील के कोई मायने नहीं है। फैशन के सम्मुख सब कुछ धराशायी हुआ है। महानगरों में स्वतंत्रता अब स्वच्छंदता-उछृंखलता का रूप ले चुकी है। 'रेहन पर रग्घू' की सरला भी विवाह पूर्व संबंध को जायज ठहराती है चाहे वो मात्र आनंद और अनुभव के लिए ही क्यों न किया गया हो-- "शादी के पहले यही चाहती थी सरला। शादी के बाद तो यह विश्वासघात होगा, व्यभिचार होगा, अनैतिक होगा। जो करना है, पहले कर लो। अनुभव कर लो एक बार। मर्द का स्वाद! एक एडवेंचर! जस्ट फॉर फन!"[15] पुरुष भी मौक़ा भुनाने में लगा रहता है वह स्त्री को आश्वासन देता है कि अनैतिक सम्बन्ध बनाने में अनैतिक कुछ नहीं है। परिणामों की भी कोई चिंता नहीं है क्योंकि सब कुछ आज आसान हो गया है। अतः किसी बात का कोई भय नहीं रहा है-- "तुझे डर किस बात का है? ज्यादा से ज्यादा प्रेगनेंट ही तो हो सकती है। ऐसा कुछ हुआ तो अबार्शन करवा लेंगे। इतना भी क्या हो गया? तू तो ऐसे कर रही है जैसे सारी उम्र तुझे वर्जिन ही बने रहना था। या फिर किसी और से....।"[16] मतलब जीवन मूल्यों का पतन चरम पर है।

महानगरों में स्त्रीशिक्षा, स्वतंत्रता, आत्मनिर्भरता, अधिकारों के प्रति सजगता, समानता आदि के रूप में स्त्री-सशक्तिकरण को देखा जा सकता है। महानगरों में स्त्री घर एवं घर के बाहर दोनों जगह मोर्चा संभालती है। उसने घर के बाहर भी अपनी महत्ता प्रमाणित की है। सजग महानगरीय स्त्री ने जहां घर से बाहर अपना अलग मुकाम बना लिया, किन्तु इस बाहरी दुनिया के खतरे और चुनौतियां भी कम नहीं हैं। कामकाजी नारी की समस्याएँ भी अपनी जगह हैं। साथ ही जो स्त्रियाँ गाँव से शहर का रुख करती हैं तो इनकी चाल-ढाल, रहन-सहन में तीव्र परिवर्तन आ जाता है। वे पूर्णतः शहरी रंग में रंग जाती हैं। प्रदीप सौरभ लिखते हैं कि- "ऐसी ही राधा की कहानी है। बिहार के छोटे शहर से आई थी। ट्रेनिंग के समय सलवार-कुर्ता पहनती थी। नजरें झुकी रहती थी। लड़कों से बात करने में शर्म आती थी। पूरी कस्बाई मानसिकता थी। छः महीने बीतते-बीतते राधा पर कॉल सेंटर का माहौल सिर चढ़ कर बोलने लगा। छोटे कपड़े शरीर पर टँक गये। सलवार सूट कहीं दूर छूट गया। हाथों में सिगरेट आ गई। डिस्को में आना-जाना शुरू हो गया। बॉय फ्रेंड भी बन गए। एक साथ उसने दो-दो ब्वॉय फ्रेंड बनाये हुए थे।"[17]

समग्रतः महानगरीय जीवन-शैली, व्यक्तिवाद का प्राधान्य, स्वार्थवादी प्रवृत्ति, महानगरीय समस्याएँ, उन समस्याओं से जूझते लोगों की मानसिकता, पलपल परिवर्तित दौड़ती जिंदगी, अकेलापन, अजनबीपन, घुटन, संत्रास, अर्थ की महत्ता, बाजारवाद, उपभोक्तावाद, अपसंस्कृतिकरण, जीवनमूल्यों-आदर्शों का पतन, पारिवारिक विघटन, परिवर्तित रिश्ते-नाते आदि को 21वीं सदी के उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में अत्यंत प्रभावी रूप में उकेरने का प्रयास किया है। आज व्यक्ति की परिधी 'सर्व' से सीमित होकर 'स्व' तक केन्द्रित हो गई है। सर्वत्र वैक्तिकता व्याप्त हो गई है और व्यक्ति अस्मिता की खोज में भटक रहा है। महानगरों में आधुनिक मनुष्य की सम्पूर्ण दृष्टि और विचार प्रक्रिया में अंतर आया है। फलस्वरूप उसकी नीति विषयक धारणाओं में भी परिवर्तन आया है। इन सभी परिवर्तित स्थितियों का सूक्ष्म निरूपण 21वीं सदी के उपन्यासों में देखा जा सकता है। अंततः बशीर बद्र के शब्दों में कहा जा सकता है-- *"है अजीब सहर की*

जिंदगी न सफ़र रहा न कयाम है। कहीं कारोबार सी दोपहर कहीं बद-मिज़ाज सी शाम है।"

सन्दर्भ

1. सं. रवीन्द्रनाथ मिश्र, इक्कीसवीं सदी का हिंदी साहित्य समय, समाज और संवेदना, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबादः, 2011, पृ.सं.74। **2.** पुष्पपाल सिंह, 21वीं शती का हिंदी उपन्यास, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016, पृ.सं.43। **3.** काशीनाथ सिंह, रेहन पर रग्घू, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010, पृ.सं. 89। **4.** उषा प्रियंवदा, भया कबीर उदास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007, पृ.सं. 65। **5.** वही, पृ. 69। **6.** अलका सरावगी, एक ब्रेक के बाद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008, पृ.सं. 117। **7.** अजय नावरिया, उधर के लोग, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008, पृ. सं. 31। **8.** वही, पृ.सं. 82। **9.** जावेद अख्तर, तरकश, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 35। **10.** ममता कालिया, दौड़, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014, पृ. 61। **11.** वही, पृ.सं. 45। **12.** प्रदीप सौरभ, मुन्नी मोबाईल, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृ.सं. 112-113। **13.** काशीनाथ सिंह, रेहन पर रग्घू, राजकमल प्रकासन, नई दिल्ली, 2010, पृ.सं.108। **14.** प्रदीप सौरभ, मुन्नी मोबाईल, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृ.सं.110। **15.** काशीनाथ सिंह, रेहन पर रग्घू, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010, पृ.सं. 31। **16.** सुषम बेदी, मोरचे, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006, पृ.सं. 18। **17.** प्रदीप सौरभ, मुन्नी मोबाईल, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृ.सं. 112।

सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग,
राजस्थान केन्द्रीय विश्वविद्यालय,
बान्दरसिंदरी, किशनगढ़-305801
जिला - अजमेर (राज.)
मो. - 8503891642
ईमेल-sandeepvr25@gmail.com

इनसे बचें

पात्र, कुपात्र, सुपात्र पर विचार करना-- यह केवल व्यवहार का प्रश्न ही नहीं है-- मनोविज्ञान की भी सच्चाई है।

जिसको प्यास नहीं है, उसको पानी पिलाना बेमाने है। बीमारी बिना दवाई का क्या उपयोग है।

हम इच्छी बातें करते हैं, संत-महंत उपदेश देते हैं, पर-- सामने वाला इसके लिए तैयार है भी या नहीं। दूसरी ओर यह भी कहना है-- हमें बीज-अच्छे बीज फेंकने चाहिए। कई उगेंगे, कई जलेंगे, कई सड़ेंगे और कइयों को पक्षी चुग जाएंगे। पर, नीति यह है, हमें पात्र-सुपात्र का विचार करना चाहिए।

हमारे नीतिकार कहते हैं-- इन दस को उपदेश देकर अपना समय मत बर्बाद करो। ये उपदेश सुनने के अयोग्य है।

मत्त, प्रमत्त, उन्मत, श्रांत, क्रुद्ध, बुभुक्षित (भूखा), त्वरमाण (हड़बड़िया, उतावला), लुब्ध (लोभी), भीत (डरा हुआ) और कामी।

मत्त का अर्थ है-- जो नशे में है। वह सुनकर समझेगा नहीं। प्रमत्त का अर्थ है-- असावधान, गफलत में रहने वाला-- वह आधा सुनेगा और आधा उट-पटांग सुनेगा। उन्मत्त तो पागल है, बावला है-- उसे उपदेश नहीं, इलाज की जरूरत है। जब कोई गुस्से में आया हुआ है-- वह सुनने के लिए तैयार नहीं है, वह जब शांत हो जाये तब बात करें। श्रांत, थका हारा है, उसे विश्राम चाहिए। बुभुक्षित को उपदेश मत दो-- उसको खिलाओ और खाने का पक्का प्रबंध करो-- यही सच्चा उपदेश है। त्वरमाण को जरा धीरज रखने वाला बनायें, तब वह उपदेश के लिए सुपात्र बनेगा। लोभी और कामी जीवन भर सुनकर भी न लोभ छोड़ेंगे, और न भोग की भावना से हटेंगे। भीत-जो डरा हुआ है, उसके लिए सुरक्षा का उपाय करें-- यही प्राथमिक उपदेश है।

हिन्दी आलोचकों की दृष्टि में रवीन्द्रनाथ ठाकुर

घुंघुरू कुमारी

रवीन्द्र बाबू एक कवि, लेखक, निबन्धकार, नाटककार, कहानीकार, उपन्यासकार के रूप में तो प्रसिद्ध हुए ही, वहीं दूसरी ओर आलोचना साहित्य में भी अपनी कलम चलाकर वो एक अच्छे आलोचक साबित हुए। लेकिन यहाँ हम समीक्षक रवीन्द्र की आलोचना नहीं बल्कि उनकी रचनाओं पर हिन्दी समीक्षकों द्वारा की गई आलोचना को देखेंगे।

रवीन्द्र साहित्य से जब पूरा विश्व ही प्रभावित हो तो हिन्दी साहित्यकार इससे कैसे अछूते रहते। उन्होंने बांग्ला और बांग्ला से हुए अनुवादों द्वारा भी रवीन्द्र साहित्य को पढ़ा और उन पर लिखा।

महाप्राण निराला द्वारा रचित पुस्तक 'रवीन्द्र कविता कानन' एक आलोचनात्मक किताब है। यह पुस्तक सात खंडों में विभक्त है- परिचय, प्रतिभा का विकास, स्वदेश प्रेम, महाकवि का संकल्प, शिशु-संबधिनी रचना, शृंगार तथा संगीत काव्य।

निराला लिखते हैं कि तब बंग भाषा की परम्परा विकसित नहीं हुई थी। कुछ बंगाली तत्पर हुए भी थे लेकिन इस भाषा की प्रतिष्ठा रवीन्द्र बाबू के आगमन से ही संभव हुई। इन्होंने रवि बाबू को बांग्ला का 'जातीय महाकवि' माना है।[1]

इसमें रवि बाबू के काव्य के बारे में अत्यंत ही सूक्ष्म और महत्वपूर्ण बातें कही गयी है। रवीन्द्र की कवितओं में रहस्य, मानवीय संवेदना एवं प्रकृति के रूप है। वे विराट को महत्त्व देते हैं, परंतु साथ ही क्षुद्र की उपेक्षा नहीं करते। उनकी ये पंक्तियाँ देखे-- "आमि-ढालिब करूणा-धारा/आमि-भांगिन पाषाण-कारा/आमि-जगत् प्लाबिया बेडाव गाहिया/आकुल पागल कारा।"[2]

कवि की इन पंक्तियों में सौंदर्य है, अपनी वासना शांत-पूर्ति के लिए कवि कहता है अपने केश खोलकर, फूल चुनूँगा और अपने पंख इन्द्रधनुष जैने फैलाकर सूर्य की रोशनी में उसके प्रकाश में अपनी खिलखिलाती हँसी डालकर प्राण फूँक दूंगा। वे नदी बनकर हृदय की बात करना चाहते।

'प्रतिभा का विकास' खंड में निराला ने रवीन्द्र बाबू के काव्यों पर प्रकाश डाला है। पर उनकी कुछ अलग-अलग कविताओं को अपने आस्वादनपरक आलोचनात्मक तरीके से लिखकर हिन्दी साहित्य को एक अमूल्य निधि दी। तीसरे खण्ड में 'स्वदेश प्रेम' में निराला ने रवि बाबू की कुछ देशभक्ति मूलक कविताओं का चयन कर पर अपनी दृष्टि डाली है। चौथा खण्ड 'महाकवि का संकल्प' नाम से इस पुस्तक में संग्रहीत है। यहाँ महाकवि के संकल्प को जानने और समझने की आवश्कता है। रवि बाबू ने कवियों तथा युवा पीढ़ी को जिम्मेदारी का एहसास कराया है। उनका उद्देश्य क्या है? वह जीवन और संसार से क्या चाहता है? पाँचवें

खण्ड में शिशु संबंधी रचना पर विस्तृत रूप से चर्चा की गई है। कविताएँ इतनी निर्दोष और बच्चों की बोली सी मासूम और सुंदर बन पड़ी हैं कि हृदय में इसे पढ़कर सहज ही कितने सारे भाव उमड़ पड़ते हैं। एक उदाहरण देखें--

"आमी- सुधू बोसे छिलाम-/ कदम गाछेर डाले/ पूर्णिमा-चाँद आटका पड़े/ जखन सन्ध्याकाले/ रखना कि के तारे"[3]।

ज्योतिषी बना हुआ बच्चा जब कहता है कि जन कदम की डाली पर पूनो का चाँद अटक जाए, तब कोई उसे पकड़कर ले आए।

शृंगार खंड छठा खंड है। इसमें रवि बाबू की चार कविताओं का उल्लेख किया गया है जिसके अन्तर्गत 'बालिका वधू', 'रात्रे ओ प्रभाते', 'उर्वशी' और 'याचना' है। 'संगीत-काव्य' इस पुस्तक का अंतिम खंड है। इस खंड में निराला जी ने रवि बाबू के दस चुनी हुई गीति काव्यों का वर्णन किए हैं। इनका मानना है कि एक ही कवि में सब गुण नहीं होते। कोई शब्द-शिल्प में निपुण होता है तो कोई संगीत-शास्त्र में। परंतु कविता की तरह, संगीत के भी सुर, स्वर, राग-रागनियों की समझ और अभ्यास रवि बाबू में थे।

रवीन्द्र बाबू जितने बड़े शब्द-शिल्पी हैं उतने ही बड़े चित्रकार भी, उतने ही बड़े गीतकार भी। उन्होंने लगभग दो हजार से अधिक, गीत अनेक भावों में लिखे।

डॉ. शिवनाथ ने रवीन्द्र-साहित्य की जिस प्रकार समीक्षा की है वह हिन्दी साहित्य के लिए महत्वपूर्ण है और उसके विद्यार्थियों तथा शोधार्थियों के लिए अत्यन्त ही उपयोगी है। शिवनाथ जी शान्तिनिकेतन के प्राध्यापक भी रह चुके हैं। इस पुस्तक की भूमिका हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने लिखी है। रवीन्द्र-साहित्य को अपनी आलोचनात्मक पुस्तक में समेटने का जो प्रयास शिवनाथ जी ने किया, स्वयं उन्हीं के शब्दों में छन्नई में सागर पार करने जैसा है-- 'सापेक्ष में कहने का व्रत लेने के कारण मैं नानात्व को कितना विवृत कर पाऊँगा नहीं कह सकता।'[4]

इस पुस्तक में रवि बाबू के साहित्य का ऐतिहासिक विकास है। उनके काव्य, नाटक, उपन्यास, कहानी, निबंध आदि विधाओं पर विस्तृत चर्चा की गई है। इस पुस्तक में उनके आस्था और विज्ञान पर विचार भी प्रस्तुत किए गए हैं। रवीन्द्र बाबू के काव्य पर उन्होंने विस्तृत रूप से चर्चा की है। काव्य को पाँच भागों यानी पर्व में वर्गीकरण करके उस पर अपनी व्याख्या की है।

रवि बाबू के नाटक संबंधी विचार वो इन शब्दों में रखते हैं-- 'सारतः रवीन्द्रनाथ के नाटकों के मूल स्वर के बारे में कहना हो तो कहा जाएगा कि उनके मूल स्वर में है व्यक्ति की आत्मा का उच्चतर रूप, समाज के आज के यथार्थ का बृहत्तर आदर्श।'[5]

अवध प्रसाद वाजपेयी जी रवीन्द्र बाबू को कालीदास और प्रसाद की तरह ही सांस्कृतिक उनके कवि मानते हैं। वे रवीन्द्र की वाणी और विश्व मानवतावाद से प्रभावित होते हैं जिस कारण वे अपनी पुस्तक 'रवीन्द्र प्रदक्षिणा' लिखने के लिए प्रेरित होते हैं। वे अपनी प्रसन्नता व्यक्त करते हुए लिखते हैं कि उन्हें अत्यधिक खुशी है कि उन्होंने इस पुस्तक को अपनी राष्ट्रभाषा यानी हिन्दी में ही लिखा है।

यह पुस्तक दस अध्यायों में लिखी गई है। लेखक का मानना है 'गुरुदेव रवीन्द्र का काव्य अनुभूति सम्पन्न जन-गण-मन का अधिनायक है।'[6] दूसरे अध्याय में उन्होंने जयदेव की 'राधा' तथा रवीन्द्र की 'उर्वसी' पर चर्चा की है। तीसरे अध्याय में लेखक ने रवीन्द्र के रूप और यौवन का कवि माना है। चौथे अध्याय में व्यास, कबीर और रवीन्द्र की भागवत रति पर आलोचक ने अपना चिंतन व्यक्त किया है। रवीन्द्र बाबू भारतीय उपनिषदों को पढ़-लिख बड़े हुए। रवि बाबू को 'उपनिषद्-पुत्र' भी कहा जाता है। पाँचवें अध्याय में कालिदास रवीन्द्रनाथ पर वाजपेयी जी ने अपना मत प्रकट किया है। वे उनके ग्रंथ 'कुमार सम्भवम् से अत्यन्त ही प्रभावित थे। वे उस ग्रंथ के रूप, रस, गंध एवं स्पर्श के संग स्वयं को किस प्रकार जुड़ा पाते।

'रवीन्द्र पदक्षीणा' के छठे अध्याय में रवीन्द्र के काव्य में सत्यं, शिवं, सुन्दरम् पर चर्चा की गई है। रवीन्द्र का काव्य मनुष्य जाति में सामंजस्य स्थापित करने वाला काव्य है। सातवें अध्याय में बाजपेयी जी ने

रवीन्द्र की कहानियों पर चर्चा की है। यूँ तो रवीन्द्र बाबू की दक्षता जाने काव्य और गीत में है, परंतु उन्होंने कहानी लेखन में जो छोटी कहानियों की परम्परा चलाई, वह महत्वपूर्ण है। आठवें अध्याय में नाटक, एवं नवें अध्याय में उपन्यास पर चर्चा की गई है। अंतिम अध्याय में ऐसे वाजपेयी जी ने उन्हें विश्व विभूति के रूप में चित्रित किया है। विश्व के ऐसे महान कवि लोकोत्तर सृष्टि करने वाले होते हैं। विश्व कवि रवि बाबू, जाति या देशकाल तक सिर्फ सीमित नहीं रहते हैं। उनकी वाणी मनुष्य, पशु, पक्षी सभी के लिए है।

रवीन्द्र बाबू के बाल-साहित्य पर हिन्दी में काफी कम विमर्श हुआ है। देवेन्द्र कुमार देवेश जी ने अपने संपादन में रवीन्द्र के 'शिशु साहित्य' पर आलोचनात्मक लेखों का संग्रह कर उन्हें प्रस्तुत किया है। हरिकृष्ण देवसरे ने अपने आलोचनात्मक लेख में रवीन्द्र द्वारा लिखित बाल साहित्य को चिंतन-शक्ति और कल्पना-शक्ति पर भी विचार किया है। 'रवीन्द्रनाथ बाल-साहित्य-रचना में उनके मानस की पृष्ठभूमि में तत्कालीन भाषा, समाज, शिक्षा-पद्धति का भी प्रभाव था। उस समय सभी भारतीय भाषाओं का बाल-साहित्य शैशवावस्था में था।'[7]

रवीन्द्र ने जिस सूक्ष्मता और मनोभाव से बच्चों के लिए रचना की उसमें वास्तविकता है। रवीन्द्र के मन में बच्चों के लिए सम्मान था। रवीन्द्र बाबू ऐसे साहित्य को बाल-साहित्य मानते ही नहीं जो बच्चे आसानी से समझ या ग्रहण नहीं कर सकें।

इस विषय पर शिवमंगल सिंह 'सुमन' जी ने भी अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा कि 'बच्चों के लिए रचनाएँ लिखी तो है किंतु बाल-साहित्य लिखना बड़ा कठिन है। बच्चों बीच रहे बिना, उनके मनोविज्ञान का, उनकी भावनाओं का अध्ययन किए बिना बाल-साहित्य नहीं लिखा जा सकता।'[8]

ओमप्रकाश कश्यप द्वारा लिखित आलेख में रवीन्द्र बाबू के शिशु साहित्य के भाव, भाषा, विषयवस्तु आदि पर विचार किए गए हैं। उन्होंने इसमें स्मृतियों की बातें रखी हैं जिसे रवीन्द्र बाबू अपने लेखन में करते हैं। कभी वो अपने बचपन की दादी के जमाने की पालकी याद करते तो अपने आसपास रचे-बसे लोगों को, जो कि अति साधारण जीवन वाले व्यक्ति हैं, उनकी भाषा और भाव इतने समृद्ध हैं कि किसी भी पाठक या बालमन को उनके बचपन में वापस लेकर चले जाएँ।

देवेन्द्र कुमार देवेश जी ने रवीन्द्र के बाल और किशोर साहित्य पर अलग से चर्चा की है। रवीन्द्र के बाल-साहित्य का सूक्ष्म विवेचन एवं पर्यवेक्षण इनके आलेख में स्पष्ट हुआ। रवीन्द्र बाबू मूल पाठ और स्वाधीन पाठ को मिलाकर रखना चाहते हैं। क्योंकि सिर्फ स्वाधीन पाठ से बच्चों का मानसिक विकास संभव नहीं है। स्वाधीन पाठ का अर्थ मनोरंजन की पुस्तकों से है। कल्पना और चिंतन शक्ति की वृद्धि शुष्क ज्ञान-पुस्तक से संभव नहीं हो सकती।

रामानारायण पटेल अपने आलेख में रवीन्द्र बाबू को उन्नीसवीं शताब्दी के उन्नायक मानते हैं। यह भारतीय नवजागरण का प्रथम चरण था। नवजागरण की चिंगारी बंगाल से उठकर पूरे देश में फैल चुकी थी-- 'सन् 1913 में रवीन्द्र की '**गीतांजलि**' को नोवेल पुरस्कार मिलना उस नवचेतना की महत्वपूर्ण कड़ी है।'[9] इनका मानना है कि भारतीय साहित्य को चेतना 'गीतांजलि' से ही मिली। छायावाद ही नहीं उनके पूर्व और उत्तरोत्तर लेखक भी रवीन्द्र के साहित्यिक प्रभाव में आ चुके थे।

रवीन्द्र बाबू के व्यक्तित्व और कृतित्व पर अनेक आलेख लिखे गए हैं। उनकी साहित्यिक विधाओं पर अलग-अलग भाषाओं में न जाने कितने ही लेखकों ने साहित्यिक आलोचना लिखी। पंत, निराला, माखनलाल चतुर्वेदी, महादेवी, हजारी प्रसाद द्विवेदी मैं उनके ऊपर पहले ही संस्मरण निबंध आदि लिख चुके हैं।

रामबहाल तिवारी ने अपने आलेख में भारत देश की गौरव भूमि को आज के परिप्रेक्ष्य में रवीन्द्र की विचारधारा से जोड़ा है। रवीन्द्र बाबू जीवन के हर क्षेत्र में लोगों को नवीन अनुभूति दिला रहे थे। वे देने-लेने, मिलने-मिलाने में यकीन करते थे। उन्होंने देश-विदेश के साहित्य, इतिहास, संस्कृति को जान-समझ कर अपनी विचारधारा बनाई। रवीन्द्र ने स्वदेशी

नवजागरण में अपनी आवाजें बुलंद की और कई जगह आगे बढ़कर विद्रोह के तेवर भी दिखाए।

विश्वनाथ प्रसाद ने अपनी आलोचना में रवीन्द्र के आलोचक रूप की सम्यक् विवेचना की है। रवीन्द्र हर विधा में बेजोड़ हैं। विश्वनाथ जी भी उन्हें मूल रूप से कवि ही मानते हैं। परन्तु रवीन्द्र एक आलोचक रूप में अपनी पुस्तक स्वतंत्र रूप से नहीं लिखे हों संभवतः लेकिन उनके निबन्ध और काव्य में आलोचक दृष्टि विद्यमान है। वे आलोचना को एक दार्शनिक उपक्रम मानते हैं। 'उनकी आलोचना-पद्धति व्यावहारिक सैद्धांतिक, ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक आदि किसी प्रकार भेद की चौहद्दी में यदि नहीं आ पाती है, तो इसका कारण यह है कि उन्होंने भेद की सीमा से मुक्त रहकर आलोचना के सिद्धान्त और मानदंड का निर्धारण किया।"[10]

विश्वनाथ जी आलोचना की प्रकृति को दार्शनिक मानते हैं जिसमें बहिर्लोक और अन्तर्लोक की दो शाखाएं होती हैं। रवीन्द्र बाबू की आलोचना-दृष्टि अन्तर्लोकोन्मुख है। रवीन्द्र बाबू के काव्य कर्म में आलोचना दृष्टि समाई हुई है। हिन्दी में यही तरंग जयशंकर प्रसाद और आचार्य शुक्ल में दिखाई देती है।

गंगाशरण सिंह जी अपने आलेख में रवीन्द्र बाबू की सृजन यात्रा की चर्चा करते हैं। वे इसे उनकी आत्मकथा से प्रेरित मानते हैं, जिस पर कम ही लोगों का ध्यान जाता है। यह आठ अध्याय में लिखी गयी है। इसमें गुरुदेव ने अपनी बाल्यावस्था से लेकर अपनी साहित्यिक यात्रा के बारे में लिखा है।

एक बार कलकत्ते में, ज्वर फैला, बात तब की है। रवीन्द्र बाबू कुछ पढ़ रहे थे। श्रीकंड बाबू के बारे में वे लिखते हैं- 'किसी का दुख देखने अथवा सुनने से उन्हें बहुत दुख होता था। इसलिए उन्हें तकलीफ पहुँचाने के लिए जब कोई बालक विद्यासागर के वनवास का अंश उनके सामने पढ़ने लगता तो भी श्रीकंठ बाबू उसे एकदम रोक देते।"[11]

इस प्रकार अपनी आत्मकथा में रवीन्द्र बाबू ने अपने बचपन से लेकर जीवन के अंतिम उनकी रहस्यमय क्षणों तक का वर्णन किया है। उनके इस आत्मकथा में जीवन की यात्रा से लेकर संपूर्ण साहित्यिक यात्रा है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि विभिन्न हिन्दी आलोचको ने अपनी-अपनी दृष्टि एवं क्षमतानुसार साहित्य की समीक्षा की है। जिसमें हिन्दी-जगत में गुरुदेव रवीन्द्रनाथ का प्रभाव और उनकी लोकप्रियता विदित होती है। रवींद्र साहित्य और उसपर आलोचना का विषय इतना अधिक विस्तृत है कि इसे संक्षेप में कह पाना अत्यंत ही मुश्किल है। अंततः कोशिश यही रही की संक्षेप में भी हर बिन्दु पर सागरर्भित दृष्टिपात हो।

संदर्भ

1. निराला, सूर्यकांत त्रिपाठी (1954), रवीन्द्रकानन-कविता, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, ज्ञानवाणी प्रकाशन, बनारस सिटी, संशोधित तथा परिवर्द्धित रुप, पृष्ठ संख्या-4। **2.** निराला, सूर्यकांत त्रिपाठी (1954), रवीन्द्रकानन-कविता--, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय ज्ञानवाणी प्रकाशन, बनारस सिटी, संशोधित तथा परिवर्द्धित रूप, पृष्ठ संख्या--40। **3.** वही, पृष्ठ संख्या--87-88। **4.** शिवनाथ, (1971), रवीन्द्र साहित्य की समीक्षा, हिन्दी समिति, उत्तर प्रदेश शासन, लखनऊ, पृष्ठ संख्या--1। **5.** शिवनाथ, (1971), रवीन्द्र साहित्य की समीक्षा, हिन्दी समिति, उत्तर प्रदेश शासन, लखनऊ, पृष्ठ संख्या-142। **6.** वाजपेयी, अवध प्रसाद (1954), रवीन्द्र साहित्य की प्रदक्षिणा, साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ संख्या-5। **7.** देवेश, देवेन्द्र कुमार (2013) रवीन्द्रनाथ ठाकुर का बाल-साहित्य, विजया बुक्स दिल्ली, पृष्ठ संख्या-46। **8.** पाण्डेय, मृणाल सं. (मई 2004), कांदबिनी, पृष्ठ संख्या-104। **9.** विश्वभारती पत्रिका, खण्ड-64, अंक-4, पौष 2072, फागुन 2072 जनवरी 2016-- मार्च 2016। **10.** तिवारी, मुक्तेश्वर नाथ (आषाढ़ 2069--अग्रहायण 2069), जुलाई 2012-- दिसंबर 2012, पुनर्मुद्रण फरवरी 2018, पृष्ठ संख्या--70। **11.** वर्मा, मुकेश, सं., (नवम्बर 2019), समावर्तन, भोपाल, पृष्ठ संख्या-24।

घुंघरू कुमारी
सिद्धा टॉउन, राजरहाट
एयु-110, कोलकाता 700136
मो.- 7004981616

वेमना के काव्य में निहित भक्ति-चिंतन की परंपरा

छविन्दर कुमार

महाकवि वेमना का अवतरण ऐसे कालखंड में हुआ जब दक्षिणी समाज भिन्न-भिन्न पुरातन रूढ़ियों एवं अन्धविश्वासों के चंगुल में फंसा हुआ था। सन्त कबीर की तरह उनके अवतरण पर भी विद्वानों में एक मत नहीं है। अधिकतर विद्वानों ने उनका आविर्भाव आन्ध्र प्रदेश के नेल्लोर जनपद में 1652 के आसपास स्वीकार किया है। उनका वास्तविक नाम गोना वेमा बुद्धा रेड्डी था। उन्हें तेलुगु के मूर्धन्य विद्वान, महान् विचारक, दार्शनिक और समाज सुधारक के रूप में जाना जाता है। इतना ही नहीं वेमना का तेलुगु साहित्य में वही स्थान है जो हिन्दी के भक्ति काल खंड में युग दृष्टा कबीर का है। वेमना वास्तव में मानव जीवन के सच्चे पथ प्रदर्शक थे। उन्हें साहित्य के क्षेत्र में जो स्थान मिलना चाहिए था वो नहीं मिल पाया। चूंकि उन पर उतना अनुसन्धान कार्य नहीं हो सका था जितने के वो हकदार थे, परन्तु वर्तमान में उन पर अनुसन्धान कार्य हो रहा है और उनके द्वारा किये गये समाज को दिये गये साहित्यिक योगदान की तमाम उपलब्धियां समाज के समक्ष आई है।[1] इनका जन्म एक संपन्न रेड्डी परिवार में हुआ था लेकिन इन्होंने सब कुछ त्याग दिया था, मोह माया रूपी संसार से ऊपर उठ चुके थे और योगी बन गए। इन्होंने अपनी ओजस्वी वाणी द्वारा तत्कालीन पथभ्रष्ट जनता को जागरूक व अभिप्रेरित किया।

वेमना के समय विजयनगर साम्राज्य का पतन हो जाने के बाद आंध्र प्रदेश छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त हो रहा था और राजनीतिक अस्थिरता के साथ जीवन में नियमबद्ध अनुशासन नहीं रह गया था। एक तरह से अफरातफरी का माहौल बन गया था। वैदिक, वीर-शैव और श्री वैष्णव धर्मों का प्रचलन था लेकिन सभी धार्मिक संप्रदाय ह्रासोन्मुख तथा अनैतिकता से भरे थे। मुसलमानों के राज्य में बलात मांसाहार खिलाकर धर्म परिवर्तन हो रहा था। ऐसी परिस्थितियों में एक युग पुरुष की आवश्यकता थी जिसकी पूर्ति *वेमना* ने की। वेमना ने अनुभव किया कि समाज अनेक बुराइयों से ग्रस्त है। हर जगह रूढ़िवादिता, अंधविश्वास, दिखावा, छुआछूत इत्यादि का बोलबाला है। धर्म के ठेकेदार अपने स्वार्थ की रोटियां धार्मिक कट्टरता एवं उन्माद के चूल्हे पर सेंक रहे थे। आम जनता को ईश्वर के नाम पर डराया जाता था। वेमना ने कबीर की भांति इसका डटकर विरोध किया और सभी क्षेत्रों में फैली बुराइयों को दूर करने का भरपूर प्रयास किया। उन्होंने अपनी बात निर्भिकता से कही तथा धर्म के ठेकेदारों को डांटा जो साधारण जनता को भ्रमित कर रहे थे। वेमना के समय और

स्थान पर भी विद्वानों में परस्पर विवाद है। कोई इनका आविर्भाव पंद्रहवीं शताब्दी में मानते हैं तो कई सोलहवीं शताब्दी में। आंध्र प्रदेश के रायलसीमा इलाके में ये पैदा हुए थे। अन्तःसाक्ष्य के आधार पर कहा जाता है कि लड़कपन में ही इनकी मां का स्वर्गवास हो गया था। घर में वे सबसे लाडले भी थे। उस समय समाज में वेश्यावृत्ति हावी थी। सुविधा संपन्न लोगों का वेश्याघर में जाना आम बात थी। योगी बनने से पूर्व वेमना भी इस वृत्ति का शिकार थे क्योंकि शहरों में जब रूप के बजार सजते हों तो कोई इसे प्रभावित हुए बिना कैसे रह सकता है। कहते हैं कि अपने यौवन काल में वो एक वेश्या के प्रति आसक्त थे और उसे ही अपना सब कुछ मानते थे। उसके लिए उन्होंने घर बार तक त्यागने का मन बना लिया था। उस वेश्या को प्रसन्न करने के लिए वेमना ने अपनी भाभी से गहने मांगे। वेमना को सबक सिखाने व सही दिशा में लाने के लिए भाभी ने उन्हें गहने इस शर्त पर दिए कि वे गहने पहनने के बाद उस वेश्या के नग्न रूप को एकाग्रता से अवश्य निहारे। वेमना ने ऐसा ही किया। पूर्णतः नग्न स्त्री देह को देखने के पश्चात वेमना का स्त्री देह के प्रति मोह भंग हो गया और भोगी वेमना योगी बन गया। उसने सभी तरह के सांसारिक सुखों का सदा के लिए त्याग कर दिया।[2]

वेमना कवि कबीर की तरह ही फक्कड़ स्वभाव के संत कवि थे और उन्हीं की तरह घुमक्कड़ भी थे। जगह-जगह रमण करते रहते थे।

ये तेलुगु की निर्गुण भक्ति काव्य धारा के प्रमुख संत कवि हैं। इस धारा की कविता में प्रत्येक मनुष्य में स्थिर ईश्वरीय तत्व का वर्णन मिलता है और उस तत्व को प्राप्त करने के लए इन्होंने हठयोग की साधना पर बल दिया। संत भक्तों की तरह ही काव्य सृजन करना इनका प्रयोजन नहीं था इन्होंने तो जनता में बाह्य आडंबरों को त्यागकर मन की आंतरिक शुद्धि पर बल दिया। बाह्य विधि विधान को इन्होंने व्यर्थ कहा है और इससे ईश्वर प्राप्ति भी संभव नहीं है। भक्ति में किसी भी तरह का पाखंड इन्हें स्वीकार्य नहीं है। इन्होंने साधारण जनता के लिए भक्ति मार्ग प्रशस्त किया। जो लोग उस समय जाति-पांति और छुआछूत का प्रसार कर रहे थे या इस प्रकार की मानसिकता रखते थे ऐसे लोगों पर ये जमकर बरसे हैं। इनका मानना है कि सभी एक ही जाति के हैं और वह है मानव जाति। विश्व मानव की कल्पना इन्होंने की है - *"कुलमु चेताबहि गुपिंचा नेटिकि/पादु उन्न चोटा प्रबलु वितु/ एटि कुलंबिका येक्कडि द्विजुउया/विश्वदाभिरामा विनुरा वेमा।"*[3] किसी को जन्म एवं जाति के आधार पर नहीं आंका जा सकता बल्कि गुण के आधार पर ही किसी व्यक्ति की श्रेष्ठता की पहचान होती है- *"गुणमुलु कलवानि कुल मेंचगा नेल/गुणमुलु कलिगनेनि कोटि सेयु/गुणमुलेका युन्न गुड्डी गुव्वयु लेदु/विश्वद्वाभिरामा विनुरा वेमाः।"*[4] गुणी व्यक्ति की जाति पूछने की क्या आवश्यकता, उनके गुण ही उन्हें गौरव दिलाएंगे, गुणहीन है फूटी कौड़ी के बराबर- *विश्वद्वाभिराम सुन रे वेमा*-- इसको पढ़ते-पढ़ते स्वतः ही कबीर का प्रसिद्ध दोहा याद आना स्वाभाविक है *"जाति न पूछो साधु की पूछ लीजिए ज्ञान/मोल करो तलवार का पड़ी रहन दो म्यान।"* धर्म की आड़ में ढ़ोंगी बाबाओं का राज्य प्रफुल्लित हो रहा है जिसमें मनुष्य संलिप्त हो रहा है। महिलाओं के बाबाओं के चंगुल में फंस जाने से घर बिगड़ रहे हैं। ऐसे में इन बाबाओं की वेमना ने कड़ी निन्दा की कि जो तुम ईश्वर के नाम पर ढ़ोंग कर रहे हो ऐसे में तुम्हें ईश्वर प्राप्ति नहीं हो सकती। उसके लिए उच्च व सात्विक कर्मों का होना आवश्यक है। आत्मशुद्धि के बिना ईश्वरीय कृपा असंभव है। जैसे इन्होंने कहा भी है। ***"आत्मशुद्धि लेनि आचाराम दियेला?/भाउशुद्धि लेनि पाकमेला?/चितशुद्धि लेनि शिवपूज ले लारा?/विश्वदाभिरामा विनुरा वेमाः।"***[5] अर्थात आत्मशुद्धि के बिना आचरण कैसा और पात्र-शुद्धि के बिना पकाना कैसा? चित्तशुद्धि के

बिना शिवपूजा कैसी। ईश्वर से साक्षात्कार का एक ही मार्ग है वो है सरल व कपट रहित हृदय। दंभी ब्राह्मणों के काले करनामों तथा आडंबरों का भंड़ाफोड़ते हुए वेमना ने पूछा कि पशुओं को खाने से यदि कोई नीच हो जाता है तो मन में तरह-तरह का मैल भरकर बाहर से गले में रस्सी (जनेऊ) डाल लेने मात्र से क्या कोई उच्च वंशज हो जाता है। सभी का जन्म एक समान होता है। सभी व्यक्ति चाहे वो ब्राह्मण हो या अब्राह्मण आते एक ही रास्ते से हैं। जन्म से कोई श्रेष्ठ या नीच नहीं होता बल्कि व्यक्ति की श्रेष्ठता उसके कर्मों से है।

लोग ईश्वर को व्यर्थ में ही बदनाम करते हैं। एक समय था जब लोग देवी-देवताओं की उपासना करने और अपनी सिद्धि की प्राप्ति के लिए कुछ अन्य लोगों की, विशेषकर शिशुओं की बलि चढ़ाते थे। दूसरे कुछ निसंतान पति-पत्नी संतान प्राप्ति के लिए किसी देवी-देवता की उपासना कर मनौती करते थे कि उसके वर प्रसाद से यदि उन्हें संतान प्राप्ति हो जाए तो उनमें से प्रथम संतान को उस उपास्य देवी-देवता को भेंट चढ़ाएंगे। फिर संतान प्राप्ति होने पर वे परिजन स्वयं अपनी संतान की बलि चढ़ाकर मनौती की पूर्ति कर लेते थे। ऐसी और भी कई प्रथाएं हमारे समाज में प्रचलित थी जिसके कारण सैंकडों शिशुओं की बेरहमी से हत्या हुई। वेमना प्रश्न करते हैं कि यह कैसी भक्ति? यह कैसा अनुराग? ये भक्ति है कि आसुरी वृत्ति। क्या इससे तुम्हारा ईश्वर प्रसन्न होगा। यह सब इंसानी राक्षसों द्वारा देवताओं को बदनाम करने व उनके नाम पर किया जाने वाला कुकर्म है। सबसे ज्यादा शोचनीय प्रथा है मृतकों का श्राद्ध करते हुए उस अवसर पर कौओं को पितरों के रूप में मानकर उन्हें पिंडदान देने की कर्मकांडी भावना। जबकि सच्चाई यह है कि जीवित इंसान दो रोटी के लिए तरस रहा है। मरने से पहले वह भूखा, प्यासा व नंगे तन रहने को मजबूर है और बाद में उसका पिंडदान व श्राद्ध इत्यादि किए जा रहे हैं। दूसरे, वो मल खाने वाला कौआ तुम्हारा पितृ कैसे बन गया। क्या इससे वो खुश हो जाएंगे? यह कैसी भक्ति है पितरों के प्रति। वेमना ने कहा कि यह सब ढोंग है, आडंबर है।

तत्कालीन समाज में प्रमुख रूप से व्याप्त शैव और वैष्णव धर्मों के तीव्र वारस्थरिक वैमनस्य को जितना ज्ञान वेमना को था, उतना शायद उस काल के अन्य किसी कवि को न था। धर्म के नाम पर उक्त दोनों प्रकार के लोग अनेक आडंबरों के शिकार बने थे। भक्त कहलाने वाले तथाकथित साधु संन्यासी केवल अपनी बाह्य वेशभूषा तड़क-भड़क से जनता को छल कर अपने स्वार्थों की पूर्ति कर लेते थे। ऐसे लोगों के मिथ्या आडंबरों की तीव्र निन्दा कर वेमना ने समाज में फैले छल कपट को दूर करने का प्रयास किया। जीवन भर नीच कर्म करके अंत में तीर्थ स्थलों की यात्राओं से अपने कर्मों के मैल को धो लेने का बेकार प्रयास करने वाले ढोंगी भक्तों पर व्यंग्य किया। ये तो वही बात है कि "नौसौ चूहे खाकर बिल्ली हज को चली। वेमना ने कहा कि मंदिरों के दर्शन कर लेने से और वहां के कुंडों में स्नान कर लेने से तन का मैल भले ही दूर हो जाए परंतु मन का विकार दूर नहीं होता। हिंदुओं की तीर्थयात्रा के संबंध में कहते हैं कि आप जहां जाते हैं वहां ईश्वर तो है नहीं। अज्ञानी लोग तिरूपति जाते हैं और वहां से निराश होकर हाथ का धन खोकर बिगड़ी स्थिति में घर पहुंच जाते हैं। जैसे कि इन्होंने कहा भी कि *"तिरूपति जाकर नहीं बनता भक्त मुस्लिम/ काशी जाकर नहीं पाती बड़ाइ रंडी/ गोदावरी जाकर कुता क्या शेर बनेगा।"*[6] *वेमना* धार्मिक आडंबरों और साकार उपासना का विरोध कर आत्मज्ञान पर बल देने वाले कवि थे। इन्होंने अपने समय के वैदिक, श्री वैष्णव और वीरशैव संप्रदायों के बाह्य आडंबरों और आंतरिक खोखलेपन का विरोध किया। "श्री वैष्णव रंग धाम की शोभा बढ़ाने जाकर शराब की दुर्गंध से शोभित रहते हैं और वीर शैव लिंगधारी से चोर नहीं हैं रे।" "जब मनुष्य संप्रदाय बदलते रहते हैं तो खीझकर

कवि पूछता है कि यह वाद- विवाद क्यों है? धर्म विभेद क्यों है? इतना ही नहीं वेमना ने इस्लाम को भी नहीं छोड़ा। मक्का को क्यों जावे......सबसे परिपूर्ण अल्लाह मुहम्मद है।"

वेमना की भक्ति बिल्कुल सरल है जिसका आचरण शुद्ध हो, मन में मैल न हो, किसी के प्रति द्वेष न हो, करुणा, संवेदनशीलता, सत्य, विवेकशीलता से परिपूर्ण व्यक्ति उसे कर सकता है। जिसमें ये गुण हैं वो ही ईश्वर को प्यारा है। ऊंची जातियों में जन्म लेने से कोई लाभ नहीं क्योंकि यदि कर्म तुच्छ हैं। ईश्वर को प्राप्त करने के लिए जो विषमता का प्रचार करते हैं वे समाज के सबसे बड़े शत्रु हैं। जाति-पांति का भेदभाव करने वाले लोग पशु तुल्य एवं अज्ञानी होते है। इन्हीं के कारण समाज में अशांति पनपती रहती है। ऐसे लोगों को कभी ईश्वर प्राप्ति नहीं हो सकती है क्योंकि ईश्वर के नाम पर ये संप्रदाय बनाते हैं और लोगों को बांटने का कार्य करते हैं। सच कहें तो सबसे बड़ी जाति मनुष्य ही है। मनुष्य मनुष्य को प्यार करे, अच्छे से रहे वही सबसे बड़ी भक्ति है। जो व्यक्ति अपनी आत्मिक शक्ति को जानता है और उसका आदर करता है तो उसे किसी भी कल्पित या अलौकिक शक्ति की चिंता करने की आवश्यकता नहीं है। वेमना का तो प्रयोजन ही एक रहा *सर्वे भवन्तु सुखिन सर्वे संतु निरामया* अर्थात सभी व्यक्ति सुखी रहें, सकुशल हों, सभी का कल्याण हो और कोई दुःख भोगी न बने। ऐसा तभी संभव होगा जब सभी समदर्शी होंगे। जात-पांत, मेरा, तेरा और दंभ इत्यादि विकार नहीं होंगे। वेमना की दृष्टि में नर का श्रेष्ठ रूप ही नारायण है। अपने गुणों एवं कार्य द्वारा जो मानव अन्यों की अपेक्षा अधिक उन्नत तथा उदात्त हो जाता है, उसी को तो लोग माधव अवतारी पुरुष कहते हैं। इस दृष्टि से नर और नारायण में कोई अंतर नहीं है। नर ही नारायण है और नारायण ही नर है।

वेमना के अनुसार ईश्वर की कोई मूर्ति नहीं है। इनका समाज के प्रति नजरिया बिल्कुल संत कबीर की तरह ही है। इन्होंने मूर्ति पूजन का विरोध नास्तिक के रूप में नहीं बल्कि आस्तिक के रूप में किया। यह विरोध दो रूपों में था। पहला अवतारवाद का खंडन और दूसरा साकार ब्रह्म की उपासना का विरोध। यह धारणा समस्त धर्मों के अनुसार यह प्रथा अत्यंत प्रचलित है कि युगीन महापुरुषों को ईश्वर का अवतार मान लिया जाता है। ईश्वर के अनेक अवतारों का वर्णन हिंदू धर्म ग्रंथों में मिलता है। हिंदू धर्म ग्रंथों में प्रसिद्ध है जो नर अपने सद्व्यहार तथा सात्विक कर्मों से सामान्य मानव के स्तर से उन्नत हो जाता है तो उसे ईश्वरीय अवतार या नारायण मान लिया जाता है। ऐसी स्थिति में उस व्यक्ति के सहज दोषों या त्रुटियों को दोष न मानकर उनके लिए लीलाओं की संज्ञा दे दी जाती है। वेमना ने राम और कृष्ण की ऐसी लीलाओं की तीव्र आलोचना की है, किंतु उसका अभिप्राय केवल यही था कि किसी मानव श्रेष्ठ को पहले अवतारी पुरुष मान लिया जाए और बाद में उसके जीवन की प्रत्येक घटना को लीला की संज्ञा दे दी जाए, यह कार्य तर्कसंगत नहीं है। द्वितीय के अनुसार वेमना ने ब्रह्म की साकार मूर्ति की पूजा का तीव्र विरोध किया। कहते हैं कि पत्थर की मूर्ति के लिए क्यों हैं रंगीन वस्त्र, मंदिर, गोपुर और कुंभ? खाना-पीना एवं कपड़े क्या ईश्वर मांगता है? पत्थर, ताम्र एवं स्वर्ण आदि की ईश्वरीय मूर्तियां गढ़कर उनकी पूजा में अन्न राशियों तथा पशु बलियों की भेंट चढ़ाने वाली अंध पूजा से वेमना का प्रश्न था कि तुम्हारे पेट की क्षुधाग्नि की उपेक्षा कर पत्थरों की पूजा करने अथवा उनके लिए अन्न राशियों या पशुओं की भेंट चढ़ाने से क्या लाभ है। वास्तव में यदि पत्थर ही परमात्मा है तो तुम्हारी भेंट को क्यों नहीं खाता। वेमना अंतरंग वेदना के साथ कहते हैं कि ईश्वर तब है जब वह तुम्हारे सामने आकर उसे खा जाए। ये सारा ढोंग ही तो है। जब तक जीव इनमें संलिप्त रहेगा उसे परमार्थ का सुख प्राप्त नहीं हो सकता।

वेमना ने कहा है कि परब्रह्म के बोध के लिए

आत्मज्ञान की आवश्यकता है। इनके अनुसार आप अपने को जानें। तुम्हें देखते रहते भर जाता तत्व/अपने को देखता रहता तो फंस जाता माया में/तुम्हें जानने पर ही आप अपने को जानता/ अज्ञान या माया आत्म तत्व में बाधा है। अपने को जानने वाले कितने ही दैवज्ञ हो, तुम्हें न जानते तो स्थिर नहीं हो सकते। *"वे माया को न जानने से मिट्टी में मिल गये रे। सती सुत माया है, परिवार माया है, धन महानता माया है, शरीर माया है। माया को जीतने वाला मर्मज्ञ योगी है।"*[7] माया का अज्ञान मिटने पर अंदर-बाहर सर्वज्ञ परम ब्रह्म की प्रतीति होती है। वेमना ने कहा है कि ब्रह्म का मतलब आकाश है। यह मन में जानने से स्पष्ट होता है कि आकाश में ही मुक्ति है। ब्रह्म कहीं बाहर व्याप्त नहीं है बल्कि सृष्टि में ही व्याप्त रहता है। मन में इसका बोध रहना चाहिए। इनके समय के वेद पंडित ब्राह्मणों के अहं भ्रष्टाचार और आडंबर को देखते हुए उन्होंने वैदिक संप्रदाय की वेद विद्या का विरोध किया है। वेदों से अंतर्मुखी योग साधना को वरीयता दी गयी है। पतित वेद ब्राह्मणों की बात छोड़ दीजिए, अद्वैत दर्शन से महान तात्विक चिंतन, संसार में शायद ही अन्यत्र मिलेगा। वेमना अद्वैत की दार्शनिक उलझन से बचकर व्यावहारिक *जीवन* में आत्मज्ञान पर बल देना चाहते हैं। *श्री अनंत कृष्ण के मतानुसार वेमना लंबिका शिव योगी है।"* यह साधना उन्हें अपने गुरु से मिली है। लंबिका लंभिका का तद्भव रूप है। योग मार्ग की कठोरता का विरोध करते हुए भी वेमना ने शैव धर्म और योग मार्ग को मिलाकर उसे मुक्ति का साधन माना है। *वेमना* अपने समय में प्रचलित वैदिक और श्री वैष्णव धर्मों की अपेक्षा शैव की ओर अधिक झुके हुए हैं और शैव योग को मुक्ति का सर्वश्रेष्ठ मार्ग मानते हैं। प्रसिद्ध विद्वान *श्री वेमूर विश्वनाथ शर्मा* ने वेमना को तांत्रिक सिद्धांतों से प्रभावित माना है। यह एक गूढ़ विद्या है जिसके उदाहरण वेमना के काव्य में भी मिलते हैं। *वेमना* ने अपने शैव सिद्धांत में योग मार्ग को अपनाकर अनेक स्थानों पर उसकी चर्चा की है.... *"दिन-रात भूलकर आप मैं होने का विचार भूलकर रहने वाले को ही गिनो उत्तम योगी रे।"*[8] *वेमना* में वामाचार को छोड़कर योग मार्ग की सामाजिक आध्यात्मिक विचारधारा मिलती है। उसी तरह उन्होंने राजयोग के स्वस्थ आनन्दमयी चिंतन को अपनाया है। *बंडारू तम्मया* का विश्वास है कि वेमना वीरशैव धर्म के अनुयायी हैं।

दोनों में समानता धर्म है-- वेदों को धर्म का प्रामाणिक ग्रंथ न मानना, ब्राह्मणों की श्रेष्ठता को स्वीकार न करना, वर्ण और जाति के भेदभावों का निराकरण, स्वर्ग-नरक बहुदेवोपासना पुनर्जन्म आदि का खंडन। लेकिन शैव धर्म के साथ योग मार्ग का सम्मेलन, नारी के प्रति हीनता की भावना अन्य संप्रदायों एवं मार्गों के तीव्रतम खंडन का अभाव आदि वीरशैव धर्म के विचार से वेमना के मार्ग को अलग कर देते हैं।

प्रगतिवादी समीक्षक *आरूद्र* ने *वेमना* को वेद-उपनिषदों का खंडन करने वाले भौतिकवादी लोकायत संप्रदाय का माना है। आदिम भौतिकवाद, तांत्रिक विद्या तथा आदिम सांख्य दर्शन के आधार पर लोकायत संप्रदाय का विकास हुआ। इस धर्म में वेदों से भिन्न प्रकृति का ही महत्व है, पुरुष का नहीं है। *वेमना* ने धार्मिक क्षेत्र में अद्वैत और शैव योग का प्रतिपादन करते हुए लौकिक सामाजिक जीवन में भ्रष्टाचार का विरोध कर भौतिक सुख समृद्धि और समानता का समर्थन अवश्य किया है। इनकी विचारधारा पर दिगंबर जैनों तथा बौद्धों के शून्यवाद का भी कुछ प्रभाव लक्षित होता है। संन्यास जीवन की अंतिम दशा में योगी *वेमना* निसंकोच दिगंबर होकर यात्रा करते समय शिष्यों को जीवन का परमार्थ समझते थे। बौद्ध नागार्जुन से प्रभावित होकर उन्होंने शून्य को ही परम तत्व कहा है। सोचना भी शून्य तत्व ही है। न सोचने पर भी वह शून्य तत्व ही है। सोचने से सोच से इच्छा की पूर्ति होती है। यदि न सोचते हैं तो

आप ही तत्व है, *हे वेमा।*

वेमना की दार्शनिक एवं आध्यात्मिक साधना को किसी सिद्धांत या वाद की परिधि में बांधना उचित नहीं है। उन्होंने अपने जीवन भर के अन्वेषण में सत्य और सच्चे धर्म को पहचान कर उसका उद्घाटन करने का प्रयत्न किया है। **वेमना** का लक्ष्य जीवन की लौकिक और धार्मिक विषमता से मुक्त समरसता और आनन्द की प्राप्ति है। धर्म में दूषित कृत्य इन्हें बिल्कुल भी बर्दाश्त नहीं है। आज भी **वेमना** के कथन यथार्थ और प्रासंगिक है।

हम कह सकते हैं कि *वेमना* का संसार की प्रत्येक वस्तुओं को देखने का नजरिया युग प्रवर्तक कवि कबीर की तरह ही रहा है। इन्हें भी सत्य का उद्घाटन करने पर किसी का भय नहीं है। ये भक्ति में पाखंड, आडंबर, जाति-पांति व अंधविश्वास इत्यादि विकारों को नहीं मानते। समाज में जो इस प्रकार की विचारधारा का प्रसार करते हैं उन्हें ये समाज का सबसे बड़ा शत्रु मानते हैं। चाहे शैव हो या श्री वैष्णव सभी को संभलकर चलने का उपदेश इन्होंने दिया। मानव सेवा को ही ये सबसे बड़ी ईश्वरीय सेवा मानते हैं। सत्य को सत्य कहना और झूठ को झूठ कहने में ये किसी से डरते नहीं थे। साहित्यकार बनना इनका प्रयोजन नहीं रहा ये तो अपने विचारों से समाज को परिवर्तित करना चाहते थे। आज हमारे साहित्य में हर एक साहित्यकार पर कार्य हुए हैं परंतु दुर्भाग्यपूर्ण *वेमना* पर उतना कार्य नहीं हो पाया जितना होना चाहिए था। यही कारण है कि आज भी अधिकांश जिज्ञासु इन्हें नहीं जानते। आज साहित्य में *वेमना* पर कार्य करने की आवश्यकता है।

संदर्भ

1. जैक्सन विलियम जोसेफ, इंडियन हिस्ट्री एण्ड हिन्दू लिट्रेचर, पृष्ठ संख्या 112, अशगेट प्रकाशन। **2.** वही, पृष्ठ संख्या 115। **3.** तेलुगु भक्ति काव्य : शैव एवं निर्गुण धाराएं, पृष्ठ संख्या 28। **4.** वही, पृष्ठ संख्या 29। **5.** हिंदी एवं तेलुगु की प्रगतिवादी काव्य धाराओं का तुलनात्मक अध्ययन, तृतीय अध्याय, प्रथम संस्करण, पृष्ठ संख्या 92। **6.** डॉ. ताटि, वेमना और कबीर की सामाजिक विचारधारा, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पृष्ठ संख्या 70। **7.** वही, पृष्ठ संख्या 112। **8.** नेदुनूरि गंगाधर, वेमन पदयमउल, भारत के बारह आलवर सन्त, पृष्ठ संख्या 124।

शोधार्थी, विद्या वाचस्पति (हिन्दी)
हिमाचल प्रदेश केन्द्रीय विश्वविद्यालय
धर्मशाला, जनपद- कांगड़ा
ईमेल:chhavindersharma39780@gmail.com
मो.- 94185-12979

- मनुष्य अपना अभिमान अपने अच्छे वक्त में दिखाता है लेकिन उसका परिणाम उसके बुरे वक्त में सामने आता है।
- मुश्किल होता है जवाब देना, जब कोई खामोश रह कर भी सवाल कर लेता है।
- समय, सत्ता, संपत्ति और शरीर चाहे साथ दे या ना दे लेकिन स्वाभिमान, समझदारी और सच्चे संबंध हमेशा साथ देते हैं।
- इंसान हमेशा तकलीफ में ही कुछ सीखता है, खुशी में तो वो पिछले सबक भी भूल जाता है।

भारतीय ज्ञान-विज्ञान के ग्रंथों का विदेशी भाषाओं में अनुवाद

डॉ. मोहनन वी.टी.वी.

भारतीय बौद्धिक जीवन के सभी आयामों को आगे बढ़ाने में अनुवाद की अहम भूमिका रही। बहु संस्कृति, बहु भाषाएँ आदि का विस्तृत एवं गहनतम अध्ययन अनुवाद के द्वारा संभव रहा। आरंभ में भारतीय विद्वत्ता के मानक के रूप में संस्कृत भाषा का वर्चस्व था तथा विद्वानों ने परंपरागत एवं ज्ञान-विज्ञान की भाषा के रूप में संस्कृत को ही स्वीकारा था।

भारत का भूमध्य-सागरीय देशों के साथ सांस्कृतिक संबन्ध ईसा पूर्व से शुरू हुआ था। "सन् 149 में उज्जैन के यवनेश्वर ने यूनानी खगोल वैज्ञानिक का अनुवाद संस्कृत में किया था।"[1] यूनानी भाषा के अध्ययन के कारण भारत में खगोल वैज्ञानिक ग्रंथों का व्यापक अध्ययन होने लगा जिसके फलस्वरूप भारतीय खगोल विज्ञान की व्यापकता बढ़ने लगी इसी से तीसरी एवं पांचवीं सदियों में "अनेक चीनी बौद्ध पंडित भारत में आए तथा उन्होंने भारत के गणित, खगोल विज्ञान एवं औषध विज्ञान का अध्ययन किया। उन्होंने अधिकाधिक इन ग्रंथों का अनुवाद भी किया। ये शुरुआती ग्रंथ अधिकतर खो गये हैं, लेकिन चीन के सोंग तथा सांग राजपरंपराओं ने ग्रंथसूची में इन ग्रंथों का नाम लिखा है। फा-हीन (Fa-Hien), ह्यू एन सांइ (Huein Tsang) आदि चीन के विद्वानों ने क्रमशः सन् 405-411 में तथा सन् 630-645 में भारत का दौरा किया था। सातवीं सदी से मलाबार घाट से अरब देशों के साथ व्यापार संबन्ध शुरू हुआ जिसके फलस्वरूप अनेक चिकित्सा विधियों का आदान-प्रदान अनुवाद के माध्यम से संपन्न हुआ। अबु बक्र अल-राज़ी जाने-माने अरब डॉक्टर थे जिनके ग्रंथों में मूल भारतीय चिकित्सा विधियों का उल्लेख मिलता है। उन्होंने मूल भारतीय आयुर्वेदिक ज्ञान-विज्ञान की विधियों का अनुवाद अरबी भाषा में किया जिनका बाद में राज़ी ने लैटिन में अनुवाद किया।"[2] प्रमुख अंग्रेज़ी विद्वान एड्वेर्ड ग्रेनविले ब्रौने (Echrald Gramite Braune) ने राज़ी के बारे में माना है, "Probably the greatest and most original of all the Muslim physicians, and one of the most Prolific as an author."[3] भारतीय आयुर्वेद का अध्ययन एवं अरब तथा लैटिन में अनुवाद के कारण राज़ी को प्रथम अनुवादकों की सूची में अनुबद्ध किया जा सकता है। यह निर्विवाद कहा सकता है कि भारत के साथ अरब तथा चीन आदि देशों का संबन्ध अनुवाद के माध्यम से शुरू हुआ। चिकित्सा विधियों के आदान-प्रदान में अनुवाद की अहम भूमिका रही।

सन् 1510 में पुर्तगाल का भारत में आगमन हुआ, प्रथम बार पाश्चात्य का भारत में

आगमन हुआ। डच का भारत में आगमन सन् 1595 में हुआ। सन् 1600 में अंग्रेज़ों ने भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी की स्थापना की। उन्होंने पाया कि जब तक भारतीय भाषाओं का ज्ञान नहीं होगा तब तक भारत में शासन करना असंभव है। वह ज्ञान संस्कृत भाषा में प्राप्त था। साहित्य, धर्म, भाषा, दर्शन आदि का अध्ययन अंततः अनुवाद तक पहुँचा दिया गया। सन् 1699 में फ्रेंच खगोल विज्ञानी जीन डोमीनिक कैसिनी ने खगोल विज्ञान पर हिन्दू पांडुलिपि का संस्कृत से फ्रेंच में 'Memoires de i' Academic Royale des Sciences' नाम से अनुवाद किया।

प्रमुख प्राच्य भाषा विज्ञानी एवं विद्वान विलियम जॉन्स (1746-94) ने भारतीय इतिहास, साहित्य, विज्ञान तथा धर्म के शब्दों का संकलन अनुवाद के सहारे किया। उन्होंने एशियाटिक रिसर्च नामक पत्रिका का आरंभ किया, जिसके माध्यम से अनुवाद का कार्य सबल एवं संपन्न हुआ। सन् 1690 से लेकर 1882 तक इस पत्रिका की छत्र-छाया में अनेकानेक अनुवाद हुए। जीन सिल्वियन बैली (1735-93), रुबिन बरो, जॉसफ टीफन हेलर, जॉन बेंटली, लियॉन रियोडेट आदि अनुवादकों का नाम उल्लेखनीय है। अंग्रेज़ों के शासन काल में संस्कृत और फारसी भाषाओं को नकारा गया। तब अंग्रेज़ी भाषा का वर्चस्व रहा। अंग्रेज़ों ने पाया कि प्रादेशिक भाषाओं का अध्ययन तथा अंग्रेज़ी भाषा का प्रचार-प्रसार साथ-साथ करे जिससे शासन की सुविधा बढ़ेगी। सर विलियम जॉन्स ने सन् 1789 में अभिज्ञान शाकुन्तलम का अनुवाद अंग्रेज़ी में किया। अंग्रेज़ी सरकार के अनुवादक चार्ल्स विलकिन्स ने सन् 1784 में भगवद् गीता का अंग्रेज़ी अनुवाद किया। इनका अंग्रेज़ी अनुवाद इसलिए किया गया, जिससे भारत एवं उसकी संस्कृति की जानकारी प्राप्त हो सकती है।

सन् 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के बाद अंग्रेज़ों ने प्रशासन के क्षेत्र में ऊर्जा पायी। भारत में व्याप्त धार्मिक उथल-पुथल की मूलभूत जानकारी उन्हें अंततः बहुत ज़रूरी थी। अधिकतर अंग्रेज़ी उपन्यासों के अनुवाद भारतीय भाषाओं में होने लगे। बाइबल का अनुवाद भारत की प्रादेशिक भाषाओं में किया गया। भारतीय भाषाओं में प्रथम कोश निर्माण का श्रेय अंततः यूरोपीय देशों को विद्वानों को दिया जाता है जिनमें अंग्रेज़ों का स्थान विशेष महत्वपूर्ण है। अनुवाद के क्षेत्र में इन कोशों का उपयोग बहुत ही विशिष्ट हो गया। बाइबल के अनुवादों ने अनुवाद के सिद्धान्तों के क्षेत्र में बहुत ही तर्क-वितर्क एवं चर्चा-परिचर्चाओं की शुरुआत की। 'समतुल्यता' शब्द की चर्चा अनुवाद के क्षेत्र में शुरू हुई जिसका अंत अब तक नहीं हुआ है। जी. एन. देवे ने अपना ग्रंथ 'In Another Tongue : Essays on Indian English Literature' के द्वारा इस क्षेत्र में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया।

हेनरी कॉलब्रूक (1765-1837) ने इस क्षेत्र में काफी महत्वपूर्ण योगदान दिया। उनके शोध कार्यों ने अनुवादक एवं गणित विज्ञानियों पर काफी प्रभाव डाला। हेनरी कॉलब्रूक ने ब्रह्मगुप्त तथा भास्कर की रचनाओं का संस्कृत से अंग्रेज़ी में अनुवाद किया जिसमें खगोल तथा गणित विज्ञान के ज्ञान परिलक्षित हैं। ई.पू. 800 तथा 500 के बीच लिखित बौद्धायन का शुल्वसूत्रम् भारतीय गणित शास्त्र का सबसे प्राचीनतम तथा महान ग्रंथ है। जर्मन विद्वान जार्ज फेडरीक विल्यम थिबॉल्ट ने इसका अंग्रेज़ी अनुवाद किया। थिबॉल्ट वाराणसी के संस्कृत कॉलेज के निदेशक थे। उन्होंने पंडित नामक पत्रिका की शुरुआत की, जिसमें अप्रकाशित संस्कृत पाठ तथा प्राचीन संस्कृत पांडुलिपियों के अनुवाद भी संलग्न थे। वे जाने-माने संस्कृत के विद्वान तथा अनुवादक थे। 'The Statesman' दैनिक ने 6 नवंबर 2014 को थिबॉल्ट के बारे में लिखाः 'He rose to be the Principal of the college and was appointed registrar of the Allahabad University, afterwards being transferred to Calcutta. Besides being well-known

student of philosophy of Eastern and Western, the late Dr. Thibault was an eminent Sanskrit scholar.'[4] उन्होंने पंडित सुधाकर द्विवेदी के साथ पंचसिद्धांतिका का अनुवाद किया। ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस द्वारा सन् 1879 तथा 1910 के बीच प्रकाशित माक्स मुलर द्वारा संपादित ग्रंथों में थिबॉल्ट ने शंकराचार्य के 'वेदान्त सूत्र' के व्याख्यानों के अनुवाद का प्रकाशन किया।

रुडोल्फ होर्नल (1841-1918) ने सन् 1890 में संस्कृत तथा प्राकृत के चिकित्सा ग्रंथों का अनुवाद अंग्रेज़ी में किया। फारसी कवि अबुल फैज़ी इब्न मुबारक ने गणित के महान ग्रंथ लीलावती तथा महाभारत के 1,20,000 श्लोकों का अंग्रेज़ी अनुवाद किया। अनुवाद की सहायता से सोलहवीं सदी से वैज्ञानिक पाठों का अंतरण अधिकतर संस्कृत से यूरोप की भाषाओं में हुआ। अनुवाद ने अरब, यूरोप तथा भारत को एक-सूत्र में बाँधने में सहायता दी। खगोल विज्ञान के क्षेत्र में अनेक विद्वानों ने महत्वपूर्ण कार्य किये। प्रमुख खगोल विज्ञानी महाराज सवाई जयसिंह (1699-1743) ने पाँच वेधशालाओं की स्थापना की तथा अन्य अनेक उपकरणों का आविष्कार किया। उनके मुख्य खगोल विज्ञानी जगन्नाथ ने टोलमी के अलमजेस्ट एवं यूक्लिड का अरबी से संस्कृत में, क्रमशः 'सम्राट सिद्धान्त' एवं 'रेखा गणित' शीर्षकों से अनुवाद किया। विद्वानों का मानना है कि जयसिंह का ग्रंथ 'यंत्रराज' भी अनुवाद है जिसे उन्होंने अरबी या फारसी से संस्कृत में किया हो। सन् 1730 में नयन मुखोपाध्याय ने उकाख्य ग्रंथ लिखा जिसमें उन्होंने अनुवादकों का गुणगान किया है। उन्नीसवीं सदी में मैकाले की शैक्षिक नीतियों के विरुद्ध बुद्धिजीवी वर्गों ने आवाज़ उठायी। उन्होंने माना है कि प्रादेशिक भाषाओं पर अंग्रेज़ी भाषा का वर्चस्व वास्तव में हमारी संस्कृति तथा भाषाओं के विरुद्ध है। उन्होंने माना है कि भाषाओं में आदान-प्रदान अनुवाद के द्वारा ही संभव है जिससे हमारी संस्कृति मज़बूत हो सकती है। सन् 1868 तथा 1910 के बीच अनेक कृतियों का अनुवाद भारतीय भाषाओं में हुआ। सन् 1843 में प्राक् दिल्ली कॉलेज में 'मातृभाषा अनुवाद संगठन' की स्थापना हुई।

भारतीय साहित्यकार एवं भाषाविदों ने न केवल मौलिक कृतियों पर बल दिया बल्कि अनुवाद भी उन्होंने किया। उन्होंने अनुवाद को दोयम दर्जा नहीं माना। भारतीय भाषाओं में संस्कृत का वर्चस्व था, मगर अंग्रेज़ी शासन के कारण संस्कृत की गति धीमी होती चली। भारतीय वैद्य, खगोल विज्ञान, गणित आदि का उद्‌गम स्थान संस्कृत है। अनुवाद के माध्यम से फारसी, अरबी आदि भाषाओं के साथ संस्कृत भाषा का संबन्ध बढ़ गया। ज्ञान-विज्ञान के प्रचार-प्रसार के सेतु के रूप में अनुवाद की महत्ता है। धीरे-धीरे अनुवाद एक साहित्यिक धारा के रूप में विकसित हुआ। संस्कृति के आदान-प्रदान के माध्यम के रूप में भी अनुवाद की महत्ता बढ़ती गयी।

संदर्भ

1. D. Pingree, Bibliography in Dictionary of Scientific Biography (New York 1970-1990). **2.** Ed. Jean Delisle, Judith wordsworth, Translators and the Dissemination of knowledge, (John Beniamins Publishing company, E Unesco company) P. No. 109. **3.** Browne, Edward G, Arab Medicine, Being the Fitzpatrick Lectures delivered at the college of physicians in November 1919 and November 2020 Cambridge, Cambridge University Press. **4.** The Statesman, 6 Nov. 2014 Calcuta.

शोध निदेशक एवं अध्यक्ष हिन्दी विभाग
सर सईद कॉलेज,
तलिपरंबा-670142
मो.-9400354822

●

श्री अरविंद का शैक्षिक चिंतन

डॉ. सुनीता सिंह

महर्षि अरविंद एक महान विचारक, योगी, क्रांतिकारी, राष्ट्रवादी, तत्वदर्शी, आध्यात्मिक व्यक्तित्व के स्वामी व मानवप्रेमी थे। वर्तमान भौतिकवादी युग में व्यावहारिक सुधार के दृष्टिकोण से अरविंद का जीवन दर्शन, आध्यात्मिक चिंतन, अतिमानसी चेतना का उद्घाटन तथा सर्वांग योग समूचे समाज, राष्ट्र, विश्व एवं संपूर्ण मानव जाति के लिए बहुमूल्य धरोहर है। संक्षेप में उनका चिंतन मनुष्य की समस्त शक्तियों के उत्कर्ष तथा अधिकाधिक पूर्ण विकास के सिद्धांत पर आधारित है। भारतीय दर्शन व चिंतन को मूर्त रूप प्रदान करने में उनका अमूल्य योगदान है। वर्ष 1910 में फ्रेंच उपनिवेश पांडिचेरी में उनके आश्रम में स्थापित एक शिक्षा संस्था, उनके वर्तमान में अंतरराष्ट्रीय शिक्षा केंद्र के रूप में प्रसिद्ध है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली में मानवीय एवं नैतिक पक्ष में दोष उत्पन्न होने के कारण शिक्षा के व्यवसायीकरण को बल मिला है, फलस्वरूप शिक्षा की गुणवत्ता प्रभावित हुई है। ऐसे में श्री अरविंद घोष के चिंतन को आत्मसात करने तथा पुनः प्रतिस्थापित करने की आवश्यकता है।

प्रखर विचारक, उच्च कोटि के दार्शनिक, लेखक, चिंतक, शिक्षक, विलक्षण कवि, महान योगी, क्रांतिकारी राजनेता, देशभक्त व आध्यात्मिक क्रांति के उद्घोषक श्री अरविंद घोष आदर्शवादी थे। उनकी दार्शनिक विचारधारा उपनिषदों के वेदांत पर आधारित है। उनका मानना था कि आध्यात्मिक साधना, योग एवं ब्रह्मचर्य पर आधारित शिक्षा पद्धति से ही मनुष्य का पूर्ण विकास होगा। उनके अनुसार विकास का एकमात्र लक्ष्य इस जगत में व्याप्त दिव्य शक्ति अथवा पूर्ण एवं अखंड चेतना का बोध एवं उसकी प्राप्ति है। अखंड चेतना प्राप्त कर मानव अनवरत विकसित होता हुआ अंतिम मानसिक स्तर को प्राप्त कर अति मानव की श्रेणी में आ जाता है। इस स्तर पर वह परम शांति और सुख का अनुभव करता है और उसे सृष्टि में व्याप्त सत्ता का पूर्ण ज्ञान हो जाता है। उनका मानना है कि चट्टानों पर खनिजों से वनस्पति की उत्पति हुई है, वनस्पति से जीव अथवा पशु की उत्पित्त हुई है, पशु से मानव का विकास हुआ है और मानव से अति मानव का विकास होना अवश्यंभावी है।

श्री अरविंद बड़ौदा कॉलेज में फ्रेंच भाषा के प्राध्यापक, अंग्रेजी विभाग के प्रोफेसर और उप प्रधानाचार्य जैसे दायित्वपूर्ण पदों पर सफलतापूर्वक कार्य कर चुके थे। उन्होंने अपने सर्वांग दर्शन के अनुरूप ही समन्वयात्मक व सर्वांग शिक्षा दर्शन प्रस्तुत किया, जो प्राचीन

भारतीय शिक्षा पद्धति तथा पाश्चात्य शिक्षा पद्धति, अतीत और भविष्य, धर्म और विज्ञान, आस्तिकता और नास्तिकता तथा सैद्धांतिकता व व्यावहारिकता आदि को ग्रहण करता हुआ अंततः सभी पक्ष के समन्वय का मार्ग प्रशस्त करता है। श्री अरविंद ने सर्वांग योग दर्शन की तत्व मीमांसा की व्याख्या विकासवाद के सिद्धांत के आधार पर करते हुए विकास की दो दिशाएं बताई हैं-- आरोहण तथा अवरोहण। अवरोहण तथा आरोहण के सात सोपान बताए हैं। सातों सोपानों का क्रम दोनों में एक दूसरे से विपरीत होता है। ब्रह्म अवरोहण द्वारा वस्तु जगत का रूप धारण करता है, जबकि मनुष्य अपने द्रव्य अथवा पुद्‌गल रूप से आरोहण द्वारा सत् की ओर बढ़ता है। श्री अरविंद के अनुसार मनुष्य विकसित प्राणी है तथा जन्म से ही विकास के दो सोपान पार कर मानस सोपान पर जन्म लेता है। जन्म के बाद उसे अति मानस की स्थिति से आनंद की प्राप्ति करनी होती है। इस प्रकार मानव जीवन का अंतिम उद्देश्य सत्-चित-आनंद की प्राप्ति होती है। **आरोहण का क्रम :** द्रव्य - प्राण - मानस - अतिमानस - आनंद - चित्त - सत् - **अवरोहण का क्रम :** सत् - चित्त - आनंद - अतिमानस - मानस - प्राण - द्रव्य।

श्री अरविंद की धारणा है कि व्यक्ति के भीतर ज्ञान सदैव सुषुप्तावस्था में रहता है तथा उसका अंतःकरण ही ज्ञान प्राप्ति में सहायक होता है। मनुष्य के अंतःकरण के चार अंग होते हैं चित्त, मानस, बुद्धि तथा ज्ञान। अंतःकरण का प्रथम अंग चित्त अन्य तीन अंगों का आधार है। मानव-चित्त में उसके अतीत जीवन के संपूर्ण संचित संस्कार, स्मृतियां एवं अनुभव एकत्रित होते हैं तथा आवश्यकता पड़ने पर क्रियाशील स्मरण शक्ति किसी याद की जाने वाली वस्तु अथवा बात को खोज निकालती है। दूसरा अंग मानस या मस्तिष्क है। मन छठी इंद्रिय है, जिसका कार्य ज्ञानेंद्रियों से प्राप्त तथ्यों या सूचनाओं को विचार अथवा भाव में परिवर्तित करना है। बुद्धि अंतःकरण का तृतीय अंग है। यह विचार का यंत्र है, इसका कार्य मस्तिष्क में ज्ञान सामग्री को व्यवस्थित करना है। बुद्धि का कार्य रचनात्मक तथा आलोचनात्मक होता है। श्री अरविंद ने बुद्धि के दोनों कार्यों को शिक्षा के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण माना है। अंतःकरण का चतुर्थ अंग ज्ञान अथवा चेतना की शक्ति है। यह शक्ति अभी विकास की अवस्था में है। श्री अरविंद के शब्दों में "शिक्षाविद का प्रथम कार्य है बालक में छहों ज्ञानेंद्रियों का यथार्थ उपयोग विकसित करना....... तथा कर्मेंद्रियों से अधिकतम सहायता लेना।"[1] श्री अरविंद का मानना है कि शिक्षक बालक की इस शक्ति के विकास के लिए सही मार्गदर्शन करें तो मानवता की अनेक समस्याओं का समाधान संभव है। श्री अरविंद के अनुसार भारतीय दृष्टि के अनुरूप ही शिक्षा और राष्ट्रीय शिक्षा का यथार्थ स्वरूप हो सकता है। शिक्षा बालकों के मस्तिष्क, आत्मा, चरित्र एवं राष्ट्र की आवश्यकताओं के अनुरूप होनी चाहिए।

उनके अनुसार वास्तविक शिक्षा वह है जो मानव का शारीरिक, प्राणिक, मानसिक, अंतरात्मिक और आध्यात्मिक विकास करे। इसे ही संपूर्ण शिक्षा (इंटीग्रल एजुकेशन) या सर्वांग शिक्षा कहा गया है। उनके शब्दों में "सच्ची शिक्षा को मशीन से बना सूत नहीं होना चाहिए, अपितु इसको मानव के मस्तिष्क तथा आत्मा की शक्तियों का निर्माण अथवा जीवित उत्कर्ष करना चाहिए।"[2] श्री अरविंद के शिक्षा संबंधी विचार उनके साप्ताहिक पत्र 'कर्मयोगी' में लिखे गए लेखों में प्रकाशित हुए। वर्ष 1910 में प्रकाशित आठ निबंधों तथा उनकी कृति 'भारत का मस्तिष्क' (द ब्रेन ऑफ इंडिया) में भी उनके शैक्षिक विचारों से संबंधित महत्वपूर्ण सामग्री प्राप्त होती है। श्री अरविंद ने योग, अध्यात्म, उपनिषद व भारतीय संस्कृति के अनेक पहलुओं पर गंभीर विचार किया। उनके गहन चिंतन से उपजी कुछ रचनाएं उनकी असामान्य बौद्धिकता का उदाहरण हैं। जैसे-- दी लाइफ

डिवाइन, गीता पर निबंध, योग का समन्वय, दी आइडियल ऑफ ह्यूमन यूनिटी, ह्यूमन साइकिल, सीक्रेट ऑफ द वेद, द फाउंडेशन ऑफ इंडियन कल्चर आदि। श्री अरविंद के अनुसार सर्वांग शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य की सुषुप्त शक्तियों का विकास करना तथा उसे मानवतावादी व समग्रवादी बनाना है। वे शिक्षा का लक्ष्य मनुष्य के अंतःकरण और आत्मा की शक्ति का निर्माण एवं विकास मानते थे। उनके शब्दों में "सच्ची तथा वास्तविक शिक्षा केवल वही है, जो मानव की अंतर्निहित समस्त शक्तियों को इस प्रकार विकसित करती है कि वह उनसे पूर्ण रूप से लाभान्वित होता है। यह शिक्षा जीवन को सफल बनाने में मनुष्य की सहायता करती है। इसके अतिरिक्त यह शिक्षा जीवन और मनुष्य जाति के मन और उस सर्व मानवता के मन और आत्मा से जिसका कि वह अंश है, सत्य संबंध की स्थापना में सहायता देती है।"[3] श्री अरविंद के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य निम्न हैं --

शारीरिक विकास एवं शुद्धि

श्री अरविंद के अनुसार सत-चित-आनंद की प्राप्ति के लिए शरीर का पूर्णरूपेण स्वस्थ होना अति आवश्यक है। अतः इस दृष्टि से शिक्षा का सर्वप्रथम उद्देश्य शारीरिक विकास होना चाहिए। शारीरिक विकास हेतु दी जाने वाली शिक्षा को फलदायक होने के लिए एक कठोर, सविस्तार, पूर्वदर्शी और सुनिश्चित प्रणाली का अनुसरण करना होगा। शारीरिक विकास एवं शुद्धि की शिक्षा जीवन पर्यंत चलनी चाहिए । शारीरिक शिक्षा में तीन उद्देश्य निहित हैं -- 1. शारीरिक क्रियाओं को संयमित और नियमित करना। 2. शरीर के सभी अंगों, क्रियाओं का सर्वांगपूर्ण, प्रणालीबद्ध और सुसमंजस विकास करना। 3. शरीर में व्याप्त दोष या विकृति को सुधारना।

श्री अरविंद के अनुसार बालकों को शारीरिक रूप से सबल बनाने के लिए जीवन के आरंभिक दिनों से ही निम्न बातों पर ध्यान दिया जाना चाहिए-- 1. बच्चे को सदैव स्वास्थ्य रक्षा व आवश्यक शक्ति प्रदान करने योग्य सादा एवं पौष्टिक भोजन दिया जाना चाहिए। 2. बाल्यावस्था से ही बच्चे के अंदर स्वच्छता एवं स्वास्थ्यप्रद आदतों के प्रति प्रेम सिखाना चाहिए। 3. बच्चों को सिखाना चाहिए कि बीमार होना दोषपूर्ण एवं हीनता का सूचक है, किसी गुण या त्याग का नहीं। 4. बच्चों की मांसपेशियों में अच्छी गति और संतुलित बुद्धि, जोड़ों व रीढ़ की हड्डियों में लचीलापन लाने के लिए व्यायाम व खेलकूद को काफी अच्छा स्थान दिया जाना चाहिए। 5. बच्चों के स्नायुओं में संतुलन बनाए रखने के लिए उन्हें सोने के लिए पर्याप्त समय दिया जाना चाहिए। 6. बिल्कुल छोटी उम्र से ही बच्चों को शारीरिक स्वास्थ्य, शक्ति, सामर्थ्य और संतुलन का आदर करना सिखाना चाहिए।

प्राणिक विकास

श्री अरविंद के अनुसार शिक्षा का दूसरा महत्वपूर्ण उद्देश्य शक्ति का विकास होना चाहिए। प्राणशक्ति को सही दिशा में लगाने के लिए बालक का नैतिक, चारित्रिक एवं दृढ़ इच्छाशक्ति का विकास किया जाना चाहिए। इसके लिए ज्ञानेंद्रियों का पूर्ण प्रशिक्षण आवश्यक है। श्री अरविंद पांच ज्ञानेंद्रियों के अतिरिक्त मन को छठी इंद्रिय मानते हैं। पांच ज्ञानेंद्रियां ज्ञान ग्रहण करने में सहायक होती हैं तथा छठी इंद्रिय (मन) बुद्धि से संपर्क स्थापित करने में सहायक होती है। वह इंद्रियों के प्रशिक्षण के लिए स्नायु शुद्धि, मानस शुद्धि और चित्त शुद्धि को आवश्यक समझते थे। बालकों के प्राणिक विकास हेतु निम्न बातों का ध्यान रखा जाना चाहिए- 1. जैसे ही बच्चा अपनी इंद्रियों का व्यवहार करने में सक्षम हो जाए वैसे ही उसकी प्राण की शिक्षा प्रारंभ हो जानी चाहिए परिणामस्वरूप पर बहुत सी बुरी आदतों से बच जाएगा और हानिकारक प्रभावों को दूर कर सकेगा। 2. प्राण की शिक्षा के दो प्रधान रूप हैं पहला इंद्रियों के विकास एवं उनके

उपयोग से संबंधित व दूसरा सचेतन रूप से चरित्र के रूपांतरण हेतु प्रयास से संबंधित। 3. आत्मसमर्पण जितना अधिक पूर्ण और सर्वांगीण होता जाएगा, उतना ही व्यक्ति में उस पूर्ण सत्ता के साथ एकाकार होने की अभीप्सा पैदा होगी और अंततः उसके साथ तादात्म्य स्थापित हो जाएगा। 4. आरोहण के इस अंतिम शिखर पर पहुंचकर ही मानव में एक नई चेतना, नई शक्ति, नए बल की अभिव्यक्ति होगी। तभी एक नई अति मानसिक शिक्षा का आरंभ होगा।

श्री अरविंद की दृष्टि से उपरोक्त उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए समन्वित रूप से प्रयास किए जाने की आवश्यकता है। इसके लिए इन्होंने एक विस्तृत एवं समन्वित पाठ्यचर्या प्रस्तुत की। श्री अरविंद एक ओर बालक के भौतिक विकास के लिए पाश्चात्य विज्ञान एवं तकनीकी ज्ञान को महत्व देते हुए पाठ्यचर्या में स्थान देते हैं, वहीं दूसरी ओर बालक के आध्यात्मिक विकास के लिए भारतीय संस्कृति (योग की संस्कृति) पर आधारित विषयों को उतना ही आवश्यक मानते हैं। उनका मानना है कि अपनी संस्कृति के ज्ञान के अभाव में हम पाश्चात्य भौतिक विज्ञान का दुरुपयोग भी कर सकते हैं। *भौतिक विषय :* मातृभाषा एवं राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय महत्व की भाषाएं, इतिहास, भूगोल, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, गणित, विज्ञान, मनोविज्ञान, स्वास्थ्य विज्ञान, भूगर्भ विज्ञान, कृषि, उद्योग, वाणिज्य और कला। *भौतिक क्रियाएं :* खेलकूद, व्यायाम, उत्पादन कार्य, शिल्प, संगीत, अभिनय, नृत्य। *आध्यात्मिक विषय :* वेद, उपनिषद, गीता, धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र, विभिन्न देशों के धर्म एवं दर्शन। *आध्यात्मिक क्रियाएं :* भजन, कीर्तन, ध्यान, योग। उन्होंने पाठ्यक्रम के निर्माण हेतु ये सिद्धांत बताए हैं--- . पाठ्यक्रम रुचिकर होना चाहिए। . पाठ्यक्रम के विषयों में बालक को आकर्षित करने की शक्ति होनी चाहिए। पाठ्यक्रम के विषय जीवन की क्रियाशीलता के गुणों से युक्त होने चाहिए। . पाठ्यक्रम में उन सभी विषयों को उचित स्थान देना चाहिए, जिससे बालक का बौद्धिक तथा आध्यात्मिक विकास हो सके। . पाठ्यक्रम इस प्रकार का हो कि वह बालक की रूचि विश्व ज्ञान में उत्पन्न कर सके।

श्री अरविंद उस शिक्षण पद्धति से असहमत थे, जिसमें अनेक विषयों एवं क्रियाओं की शिक्षा एक साथ देते हुए पढ़ाने के खिचड़ी मार्ग को अपनाया जाता है। वे इस तर्क का खंडन करते हैं कि बच्चों को एक ही विषय बहुत देर तक पढ़ाते रहने से वह थक जाते हैं अथवा उनकी एकाग्रता भंग हो जाती है। इसके विपरीत उनका मानना है कि विषय में यदि रुचि बनी रहे, तो ना थकावट का प्रश्न है, ना एकाग्रता भंग होने का। अरविंद के शब्दों में "पुरानी पद्धति में एक या दो विषयों को भली प्रकार और गहराई से पढ़ाना और फिर अन्य विषयों की ओर बढ़ना था और अवश्य ही यह आधुनिक शिक्षण पद्धति से अधिक तर्कसंगत विधि थी।"[4] श्री अरविंद विभिन्न प्राचीन विधियों को नया रूप देना चाहते थे। वह उपदेश, प्रवचन, व्याख्यान, स्वाध्याय, कहानी विधि तथा मौखिक विधियों के प्रयोग पर बल देते थे। छात्रों के लिए पाठ्यपुस्तक-विधि को महत्वपूर्ण मानते थे, किंतु यह भी मानते थे कि पुस्तकों का प्रयोग सहायक व संदर्भ ग्रंथ के रूप में किया जाए। इनकी दृष्टि से योग की क्रिया सीखने की उत्तम विधि है तथा स्वक्रिया, चिंतन और तर्क सीखने का आधार है। शिक्षण विधियों के संदर्भ में श्री अरविंद ने ये आधारभूत सिद्धांत बताए हैं -- 1. स्मृति आधारित शिक्षण की अपेक्षा बोध आधारित शिक्षण पर अधिक बल देना चाहिए। 2. शिक्षा देने का सर्वोत्तम माध्यम मातृभाषा है। 3. बालकों की मानसिक व शारीरिक क्षमता, योग्यता व रुचि के अनुरूप ही शिक्षा प्रदान की जानी चाहिए। श्री अरविंद ने बताया शिक्षकों को नैतिक दृष्टिकोण से इतना उत्तम होना चाहिए कि बालक उनका अनुकरण कर नैतिक जीवन की प्राप्ति कर सकें। नैतिक शिक्षा का प्रथम नियम है "सुझाव

देना और आमंत्रित करना, न कि शासन करना व आरोपित करना।"[5] सुझाव देने के लिए श्री अरविंद के अनुसार सर्वोत्तम विधि है "अपना निजी उदाहरण, नित्य वार्तालाप तथा प्रतिदिन पुस्तकों को पढ़ा जाना।"[6] अतीत के रोचक ढंग से लिखे गए उच्च नैतिक उदाहरण, महान व्यक्तियों के महान विचार, उच्चतम भावों को जगाने वाले साहित्य के अंश, इतिहास के वर्णन व जीवनी जो महान विचारों श्रेष्ठ भावों और आदर्शों का उदाहरण हो। ऐसी पुस्तकों को बालकों के जीवन का प्रतिदिन का हिस्सा अवश्य बनाना चाहिए। किसी विद्यार्थी में यदि कोई दुर्गुण, बुरी आदत अथवा कुसंस्कार है, तो शिक्षक को उससे बुरा बर्ताव ना करके संयम के मार्ग से उन्हें दूर करना सिखाना होगा।

अंतरात्मिक विकास

श्री अरविंद के अनुसार अंतरात्मिक विकास या अंतःकरण का विकास शिक्षा का प्रमुख एवं महत्वपूर्ण उद्देश्य है। श्री अरविंद ने अंतःकरण के चार स्तर बताए हैं-- चित्त, बुद्धि, मन और अंतर्ज्ञान। इन स्तरों का विकास ही अंतःकरण का विकास है। इस स्तर पर पहुंचकर मनुष्य ज्ञानेंद्रियों के प्रयोग के बिना भी सब कुछ जान समझ सकता है। मनुष्य को सत्य का साक्षात्कार भी इसी अंतःकरण के माध्यम से होता है। अतः शिक्षा द्वारा बालक के अंतःकरण का विकास करने के लिए इन बातों पर ध्यान देना चाहिए-- 1. बालक के व्यक्तित्व का निर्माण करने, उसे अवचेतन जड़ता से उबारने तथा उसे एक सुनिश्चित आत्मचेतन सत्ता बनाने के उद्देश्य से उसे बाह्य जगत का ज्ञान देने के साथ-साथ प्रारंभ से ही अपने आंतरिक जगत के प्रति भी सजग रहने की आवश्यकता है। 2. अंतरात्मिक उपस्थिति के प्रति सचेत होने के लिए बालक में एक महान संकल्प, दृढ़ निश्चय व अथक अध्यवसाय की आवश्यकता है। 3. मन अंतरात्मिक जगत के विषय में राय बनाने में असमर्थ है। श्री अरविंद के अनुसार इस मार्ग पर अग्रसर होने के लिए सब प्रकार की मानसिक धारणाओं और प्रतिक्रियाओं से बचना सर्वथा अनिवार्य है। 4. आराम, सुख भोग या प्रसन्नता के लिए अपनी व्यक्तिगत इच्छाओं के मोह में न फंसे। मार्ग में आयी प्रत्येक स्थिति को अपने विकास के लिए सहायक माने। 5. कभी भी उत्तेजित, व्याकुल, निराश या परेशान ना हो। सजगता के साथ सभी अवस्थाओं में पूर्ण शांत बने रहें तथा बिना समय नष्ट किए लक्ष्य के प्रति प्रयासरत रहें। 6. भौतिक घटनाओं को केवल उनके बाह्य रूप के आधार पर स्वीकार न करें। यह हमारी तलीय अथवा सतही बुद्धि से परे अज्ञात सत्य की अशुद्ध अभिव्यक्ति है। 7. अपने जीवन के प्रयोजन तथा लक्ष्य के प्रति हमेशा सजग रहें। लक्ष्य की प्राप्ति के लिए खाने से पूर्व, सोने से पूर्व व बोलने से पूर्व हमेशा इच्छाशक्ति पर ध्यान केंद्रित कर महान उपलब्धि के लिए प्रयासरत रहे। इसके लिए सहनशीलता व अध्यवसाय की शक्ति अति आवश्यक है।

आध्यात्मिक विकास

श्री अरविंद शिक्षा का सर्वोच्च उद्देश्य मनुष्य के आध्यात्मिक विकास को मानते हैं क्योंकि आध्यात्मिक दृष्टि से उन्नत व्यक्ति ही पूर्ण मानव बन सकता है और सत्-चित आनंद को प्राप्त कर सकता है। उन्हीं के शब्दों में "शिक्षा का मुख्य उद्देश्य होना चाहिए विकसित होने वाली आत्मा का विकास करना जो उसमें सर्वोत्तम है उसे व्यक्त करना तथा उसे श्रेष्ठ कार्य के लिए पूर्ण बनाना।"[7] इस सत्-चित- आनंद के तीनों आध्यात्मिक स्तरों पर पहुंचने के लिए श्री अरविंद ने योग क्रिया (यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि) को अति आवश्यक बताया है। आध्यात्मिक विकास हेतु ध्यान देने योग्य बातें : 1. आध्यात्मिक विकास के लिए एक ऐसा जीवन आवश्यक है जो अहम् की भावना से मुक्त हो। 2. आध्यात्मिक जीवन के उच्च स्तर पर सबसे अधिक सफल तथा शीघ्र पहुंचाने के

लिए पहली शर्त में पूर्ण आत्मसमर्पण की भावना का होना आवश्यक है। . श्री अरविंद का विश्वास था कि नियंत्रित वातावरण में बालक का विकास कुंठित हो जाता है। अतः उसे स्वतंत्र रूप से कार्य करने के अवसर प्रदान करने चाहिए। . बच्चों को स्वानुभव तथा स्वप्रयत्न द्वारा सीखने पर बल देना चाहिए। प्रेम व सहानुभूति पूर्ण व्यवहार से बालक का स्वाभाविक विकास होता है। . ज्ञानेंद्रियां शिक्षा के आवश्यक साधन हैं। इसके लिए अभ्यास द्वारा चित्तवृत्ति निरोध सर्वोत्तम है।

श्री अरविंद ने यथार्थ शिक्षा के अमूल्य सिद्धांत बताए हैं। उनके अनुसार शिक्षा देने की वस्तु है ही नहीं। शिक्षक का कार्य केवल सहायता देना या मार्गदर्शन करना है, शिक्षा को थोपना नहीं। श्री अरविंद के शब्दों में "बालक को कुछ भी सिखाया नहीं जा सकता। अध्यापक न तो सिखाने वाला है, न काम लेने वाला, अपितु सहायक व पथप्रदर्शक है। वह बालक को ज्ञान नहीं देता, अपितु उसे यह बताता है कि बालक अपने लिए ज्ञान प्राप्त कैसे करे? वह ज्ञान को उत्पन्न नहीं कर सकता, क्योंकि वह भीतर पहले से है, वह विद्यार्थी को केवल यह दिखाता है कि ज्ञान कहां स्थित है और कैसे उसका ऊपरी तल पर आने का स्वभाव डाला जा सकता है।"[8] एक सफल शिक्षक को अपने विषय का ज्ञाता होने के साथ-साथ अध्यात्म और योग का भी पूर्ण ज्ञान और अनुभव होना चाहिए।

श्री अरविंद ने दमनात्मक अनुशासन का विरोध करते हुए आंतरिक अनुशासन को वास्तविक अनुशासन बताया। उनके अनुसार शिक्षकों को बालकों के समक्ष ऐसे आदर्श प्रस्तुत करने चाहिए जिनका अनुसरण बच्चे करें। मानव के समग्र विकास अथवा आध्यात्मिक उन्नति में अनुशासन का अत्यधिक महत्व है तथा योग की प्रथम कड़ी अनुशासन ही है। श्री अरविंद के अनुसार शिक्षा बाल केंद्रित होनी चाहिए। उनके शब्दों में "बालक को माता-पिता अथवा शिक्षक की इच्छानुसार ढालना अंधविश्वास तथा जंगलीपन है। माता-पिता इससे बड़ी भूल और कोई नहीं कर सकते कि वह पहले से ही इस बात की व्यवस्था करें कि उनके पुत्र में विशिष्ट गुणों, क्षमताओं तथा विचारों का विकास होगा। प्रकृति को स्वयं अपने धर्म का त्याग करने के लिए बाध्य करना उसे स्थाई क्षति पहुंचाना है। उसके विकास को विकृत करना है तथा उसकी पूर्णता को दूषित करना है।"[9] श्री अरविंद ऐसे विद्यालय की कल्पना करते हैं, जो बच्चों के भौतिक और आध्यात्मिक दोनों प्रकार के विकास में सहायक हों, जहां का वातावरण विश्व बंधुत्व की भावना से परिपूर्ण हो। सभी छात्रों को उनकी योग्यता, क्षमतानुसार बिना किसी धर्म, जाति या रंग के भेदभाव के प्रवेश के समान अवसर प्रदान किए जाएं।

श्री अरविंद की दार्शनिक विचारधारा आदर्शवाद, प्रकृतिवाद, प्रयोजनवाद तथा अस्तित्ववाद का समन्वयकारी रूप रहा। श्री अरविंद जितना पाश्चात्यवादी दर्शन से प्रभावित रहे, उससे कहीं अधिक उनकी आस्था भारतीय संस्कृति, आध्यात्मिकता, योग, साधना, ब्रह्मचर्य जैसे विषयों के प्रति रही। यही कारण है कि उनका दर्शन पाश्चात्य दर्शन की विशेषताओं को ग्रहण कर भारत की मूल संस्कृति को सुदृढ़ करने पर बल देता है। मनुष्य की चेतना का विस्तार करके मन, बुद्धि, चित्त व ज्ञान का विकास करते हुए अति मानव की श्रेणी में पहुंचने की दिशा में उनकी सर्वांग योग की शिक्षा अति महत्वपूर्ण है। निःसंदेह, वर्तमान परिप्रेक्ष्य में जहां मूल्यविहीन शिक्षा व्यक्ति और राष्ट्र की आत्मा एवं चरित्र को गुणहीन बनाने वाली है तथा इनसे उपजी समस्याएं वैश्विक स्तर पर मनीषियों व विचारकों की चिंता व चिंतन का विषय बनी हुई हैं। ऐसी दशा में अरविंद का शिक्षा दर्शन ज्ञान, विज्ञान, भक्ति, धर्म, योग, साधना, विश्लेषण तथा संश्लेषण जैसे शाश्वत तत्वों पर

आधारित विकास का राजमार्ग है। उनका जीवन दर्शन पूर्ण रूप से आध्यात्मिक दर्शन है, जिसमें भौतिकवादी जीवन दर्शन भी समाविष्ट है। श्री अरविंद का शिक्षा दर्शन यह बताता है कि शिक्षा का वर्तमान स्वरूप पुनः भारतीय आत्मा, आवश्यकता, स्वभाव और संस्कृति के अनुरूप होना चाहिए।

संदर्भ

1. सिंह, शिव बहादुर, (2002), 'श्री अरविंद का शिक्षा दर्शन', राधा प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.191। **2.** टंडन उमा एवं गुप्ता अरुणा, (2008) 'उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक', आलोक प्रकाशन, लखनऊ, पृ. 268। **3.** वही, पृ. 270। **4.** सिंह, शिव बहादुर (2002), 'श्री अरविंद का शिक्षा दर्शन', राधा प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 192। **5.** वही, पृ. 192। **6.** वही, पृ. 192। **7.** सक्सेना, एन.आर. स्वरूप एवं चतुर्वेदी, शिखा (2006), 'उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक', आर. लाल बुक डिपो, मेरठ, पृ. 442। **8.** सिंह, शिव बहादुर, (2002), 'श्री अरविंद का शिक्षा दर्शन', राधा प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 193। **9.** वही, पृ. 190। **10.** टंडन उमा एवं गुप्ता अरुणा, (2008) 'उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक', आलोक प्रकाशन, लखनऊ, पृ. 273।

असिस्टेंट प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विभाग
रमाबाई राजकीय महिला स्नातकोत्तर
महाविद्यालय अकबरपुर,
अंबेडकर नगर (उ.प्र), भारत
मो. - 9305264064
ईमेल-sunitasinghfd@gmail.com.

ईर्ष्या युग

अंग्रेजी की एक लेखिका आइनरेंड ने आज के युग को 'ईर्ष्या युग' नाम दिया है। उनके अनुसार पश्चिमी संस्कृति में युग थे–

1. विचार शक्ति का युग (दी एज ऑफ रीजन), दूसरा युग आया–
2. प्रज्ञा या प्रकाश युग (दी एज ऑफ एनलाइटमेंट), पर आज का युग है –
3. ईर्ष्या-युग (दी एज ऑफ एन्वी)।

हम चाहें, चाहें नहीं, हमें प्रिय भी न लगे– पर हम जिस युग में सांस ले रहे हैं– चारों और ईर्ष्या-ही-ईर्ष्या की आग सुलगती है। जिसके कारण गली-गली, गांव-गांव ही नहीं– हमारे स्कूल, हमारे कॉलेज, हमारे विश्वविद्यालय तक इसी आंच से झुलस रहे हैं। आज के युग में दुश्मन बनाने का प्रयत्न नहीं करना पड़ता है– आमर्याद बढ़ रहे हैं, विकास कर रहे हैं– चारों ओर शत्रु पैदा हो जाते हैं।

एक युग था– मुदिता युग। कोई बढ़ता तो उसके लिए चतुर्दिक खुशियाँ प्रकट की जाती थीं। मुदिता प्रगति की राहों में फूलों की वर्षा करती है। ईर्ष्या अपने ही रास्ते में कांटे बिखेरती है और दूसरों के प्रगति मार्ग में गड्ढे खोदती है।

मुदिता– प्रकाश है, सर्जना है, ईर्ष्या– ज्वाला है, नाश है।

महर्षि पंतजलि ने चार शब्द हमारे लिए पथ-दीप बनाए हैं।

(अ) किसी पुण्यात्मा के श्रेष्ठ कार्य को सुनकर 'मुदिता' का अनुभव करें, (आ) बराबर वालों के प्रति 'मैत्री भाव' रखें, (इ) दुःखियों के प्रति हृदय में 'करुणा' का भाव रखें, (ई) दुष्टों के प्रति 'उपेक्षा' की वृत्ति अपनावें या यह भाव रखें कि उन्हें सद्बुद्धि मिले।

गोपीचन्द-भरथरी लोकगाथा : पर्यालोचन

ब्रजेन्द्र कुमार सिंहल

लगभग 30-40 वर्ष पूर्व तक घर-वारी नाथ योगी इकतारे पर 'गोपीचन्द-भरथरी' नामक लोकगाथा गाया करते थे। शिक्षा के प्रसार व धनोपार्जन के अन्य साधनों की उपलब्धता को अब नयी पीढ़ी में इस ओर रुचि न रहने के कारण शनैः शनैः इस लोक-गाथा का गायन बन्द सा हो गया है। लगभग तीन वर्ष पूर्व 'गोपीचन्द-भरथरी' लोकगाथा, जिसकी दो हस्तलिखित प्रतियाँ मेरे पास पूर्व से ही थीं, पर काम करने का मन बनाया और गोपीचन्द-भरथरी गायकों से सम्पर्क कर और अधिक रचनाएँ एकत्रित करने का प्रयत्न करता रहा। नाथ-योगियों से सम्पर्क करने पर कोई ऐसा नाथयोगी नहीं मिला जिसको उक्त लोकगाथा ज्ञात हो। जब नाथ-योगियों से कुछ भी प्राप्त न हुआ, तब परिचित संतों से सम्पर्क कर इसकी और अधिक वाचनाएँ एकत्रित कीं, जिनका विवरण निम्नानुसार है।

1. संत श्रीनानूरामजी, उज्जैन की वाचनाः

संत श्रीनानूरामजी रामस्नेही विक्रम संवत् 1962, माघ कृष्ण द्वितीया को उज्जैन रामद्वारे में एक गुटका लिखा जिसमें (1) गोपीचन्द बड़ा (2) गोपीचन्द छोटा (3) लावणी गोपीचन्द (4) भरथरी राग अडाणा (5) भरथरी पद तथा अन्य ग्रंथ हैं। ग्रंथ गोपीचन्द पृष्ठ 222 में प्रारंभ होकर पृष्ठ 311 पर समाप्त होता है। इसमें कुल 13 विश्राम व 685 छन्द हैं। अंत में केवल 2 दोहे हैं। इस वाचना में न रचनाकार का नाम है और न रचनाकाल है। अंतिम दोनों दोहे इस प्रकार हैं -

यो गोपीचन्द ग्यान को, पढै सुणै जे कोइ।
कृपा तास के ऊपरै, गोपीचन्द की होइ।।1।।
सुणसी चित्त लगाई के, मन में राखै धाम।
अलख पुरुष गुरुदेवजी, पूरै मन के काम।।2।।

2. संत श्री सुखरामदासजी 'रामस्नेही' निवासी रामद्वारा दिल्ली द्वारा विक्रम संवत् 2029 में प्रकाशित करवायी गयी पुस्तक 'गोपीचंद' के अंतिम दोहे-श्लोक निम्न प्रकार हैं-

माधव गुरु की महर सौं, कीनौं ग्रन्थ बनाय।
दीपचन्द की शौक थी, गाथा गोपीचन्द राय।।1।।
अपनी मति उनमान से, कीनौं गीत बनाय।

गायक अक्षर मातरा, लीज्यो सुघड़ बनाय।।2।।
पुर अटेर पावन नगर, सुघड़ गीत को ज्ञान।
विप्र कनोज्या कान ने, गोपीचन्द को गान।।3।।
गोपीचन्द के गीत को, पढै सुनै जो कोय।
निरधनिया धनवंत हो, मूरख पंडित होय।।4।।
नारी जनमें पुत्र को, कन्या वर को पाय।
चार पदारथ सुलभ हो, यामें संशय नाय।।5।।
पूजा होवै जगत में, मान प्रतिष्ठा पाय।
कामी पावै काम को, निष्कामी तिर जाय।।6।।
द्वि सहस्राधिके वर्षे, निधि विंशति संयुते।
शुक्ले भाद्रपदे मासे, रघु यंत्रे प्रकाशितम्।।7।।

इतिश्री दीपचन्द कान्यकुब्ज कृत गोपीचन्द नवम् प्रकाश समाप्त।।

ग्रंथ के कवर के प्रथम पृष्ठ पर लिखा है-- *"गोपीचन्द कवि दीपचन्द कनोजा कान्ह कृत"*। दोनों सूचनाओं में अन्तर्विरोध है। अंतिम प्रशस्ति में रचनाकार का नाम दीपचन्द कान्यकुब्ज लिखा है जबकि कवर पर 'दीपचंद कान्यकुब्ज कान्ह'। इसका तात्पर्य यह है कि सम्पादक दोहों को ढंग से न समझ सके, और संशयात्मक स्थिति में दो नामों को एक समझकर उलझनपूर्ण नाम लिख गये। वास्तव में, इस रचना का रचनाकार कानजी कनोजिया सनाढ्य ब्राह्मण, अटेर ग्राम निवासी था। जिसे 'माधव' नामक गुरु की कृपा से व दीपचन्द नामक व्यक्ति, जिसको गोपीचन्द-गान सुनने का शौक या उत्साह था की प्रेरणा से यह गोपीचन्द नामक गीत बनाया। दीपचन्द प्रेरक था, अच्छा श्रोता था। जिससे आग्रह पर कानजी कनोजित ब्राह्मण ने इस ग्रंथ को बनाया।

3. अजमेर, राजस्थान रामद्वारे के संत कीरतिराम जी के द्वारा वि. संवत् 1951, भाद्रपदमास, शुक्ल पक्ष, षष्ठमी तिथि को लिखकर तैयार की गई रचना। ग्रंथांत में लिखा है--

इति कान कवी कृत गोपीचन्द संपूरण।। चरण सरव 821।।' विश्राम कुल 9 हैं।

उगणी सै ईकावनै, पावस भादू मास।
सुकल पक्ष तिथि षष्ठमी, बार बुध परकाम।।1।।
गुरुद्वारो रायणनगर, लघु मथुरा असथान।
लिख्यो सहर अजमेर में, गोपीचन्द को गान।।2।।
कर कूबड़ बांकी करी, नीचा कीया नैण।
अैसी विधि पुस्तक लिख्यो, नीका रखियो सैन।।3।।
छप्पर पर धरियो नहीं, नहीं मूरख के हात।
पुस्तक जतन न राखिये, एह सयानी बात।।4।।

श्लोक -

रे रे जम्बुक निर्बुधी, मीना संगे सघने जले।
न च मिन्नं न च मासं, मोकासे किम् पश्चसि।।5।।
पश्यसि परदोषेण, स्वदोषो न पश्यासि।
न च जारं भरतारमू, जले नग्नं किं तिष्ठति।।6।।

इति संपूर्ण ।।राम राम।।

रचनाकार की उक्ति निम्न प्रकार है--

मैणावत पुत्र परमोध्योजी, पुत्र ज आपणौ, मैणादे जननी।
जिनको जस संक्षेप कयो छै सुणाई।।7।।
गोपीचंद सिध पुजायाजी, सारा संसार में, जोगेसुर पूरा।
और पुजै छौ राज, दुनी के माहीं।।8।।
मति तो मेरी हीण जाणैजी, अति ही तुछ है महिमा है भारी।
जोगी की महिमा राज, कही नहीं जाई।।9।।
गोपीचन्द महिमा गाई जी, मती अनुसार मैं, श्रोता सुण लीज्यो।
संताँ की ज्यो विचार, घट बध होई।।10।।
विप्र कनोज्या जी नाँव ज कान है, गोपीचन्द गायो।
सुणै सुरत चित लाइ, भगति फल पाई।।11।।

इति गोपीचन्द महिमा।। विश्राम 9।।

संत कीरतिरामजी की वाचना में रचनाकार का नाम स्पष्ट रूप से कानजी कनोज्या विप्र लिखित है। इसमें न शौकीन दीपचन्द का नाम है और न गुरु माधव का नाम है। रचनाकाल व रचनास्थान का उल्लेख इसमें भी नहीं है।

4. मित्रपुरा, तहसील बौंली जिला सवाईमाधोपुर,

राजस्थान निवासी पं. स्वामी रामप्रसाद जी ने गोपीचन्द-भर्तुहरि-कथा के नाम से कान्हजी कनोजिया के गोपीचन्द में काफी सामग्री बढ़ाकर तैयार किया जिसका प्रकाशन सम्वत् 2056 में हुआ है। इन्होंने कानजी कनोजिया द्वारा प्रयुक्त छन्द को चौपई कहा है किन्तु पिंगलानुसार यह छंद चौपाई नहीं है। इन्होंने स्थान-स्थान पर दोहा, पद (विभिन्न रागों में), लावणी आदि का प्रयोग किया है। कुछ पदों पर रागों का निर्देश नहीं है जबकि कुछ पदों पर निर्देश है यथा चरचरी, बिहंग, होरी, दादरा, कालिंगड़ौ, माढ, आसावरी, सोरठ, गणगोर, राग का प्रयोग है। इस वाचना में अध्याय, विश्राम, प्रकाश जैसी कोई योजना नहीं है। छंदों की संख्या (दो पंक्तियों को एक छंद मानने का प्रचलन सभी वाचनाओं में है) 1178 है। पं. रामप्रसादजी ने संशोधक-परिवर्द्धक के रूप में अपना नाम कहीं नहीं लिखा है। ये संस्कृतज्ञ थे, अतः इन्होंने वेताल-कथा आदि के आधार पर मैनावती के पिता, भाई, पति आदि के नाम व कथा भाग को सुघड़ता पूर्वक जोड़ा है।

प्रारंभिक दोहे इस प्रकार हैं -

ताम्रवती नगरी तणै, अब बरणूँ अख्यान।
सुरपरि सुत पितु श्राप तैं, गर्धव तन लियो आन।।1।।
कुंभकार के घर रहयो, गर्धव तन धर आप।
नरपति कन्या प्रणाय दी, ताम्रकोटि परताप।।2।।
सासू गंधर्वसेन की, कही सुता सूँ बात।
दो सुत इक कन्या भई, मो मन इचरज आत।।3।।
खरपति से सुत भरथरी, विक्रम मैणावति आय।
कैसी विधि यह परगटे, तो मैं कहूँ सुनाय।।4।।
कहि खरपति रति करत है, मो सँग निसा बिहार।
यह सुनकर क्रोधित हुवा, कैसे होइ उबार।।5।।
गर्धव की खोली वहाँ, जाली बिना बिचार।
कोप कियो निज सासु पै, निज सुत सुता की नार।।6।।
तब नगरी सुरपति पुत्र ने, ऊंधी मारी कोप।
नगर उजीणी भरथरी, आप रहे पग रोप।।7।।
पुण्यवंत परगट भयो, मनु ज्यूँ राज करान।
नगर उजीणी लेय के, अपनी फेरी आन।।8।।
बड़े-बड़े जंग जीत कै, रीति नृपति की रारि।
सूर पराक्रम रण सुभट, साँचौ वंस पंवारि।।9।।
बहलोचन कुल है विमल, गौड बँगालौ देस।
ब्याही रसीवंजी बड़े, मैणावति मंडलेस।।10।।
गोरख साँचौ सतगुरु, भरथरि विक्रम ग्यान।
मैणावति है तीसरी, अग्याकारी जान।।11।।

ग्रंथ का अंत -

माधौ गुरुकी महर सूँ, कीनौ ग्रंथ बनाइ।
दीपचन्द की सौक थी, गावौ गोपीचंद राइ।।1174।।
अपणी मति अनुसार से, कीन्हों गीत बनाइ।
गायक अक्षर मातरा, लिखज्यो सुघड़ बनाइ।।1175।।
पुर अटेर पावन नगर, सुघड़ गीत को ग्यान।
विप्र कनोज्या कान ने, गोपीचन्द को गान।।1176।।
इति गोपीचन्द ग्रंथ संपूर्ण।। चरण1177।।
गोपीचन्द की तरह से, मात अग्या स्यो मान।
गुरु सेवा निसिदिन करौ, धरौ राम का ध्यान।।1178।।

5. संत श्रीमालूमरामजी रामस्नेही की वाचना। संत श्रीमालूरामजी ने दो ताबीजी गुटकों में पूरा गोपीचंद लिखा जिसमें से मुझे उत्तरार्द्ध वाला गुटका, संत श्रीरमतरामजी रामद्वारा भंडार से मिला है।

दूसरा भाग 71वें पृष्ठ से प्रारम्भ होता है। इसके पूर्व के पृष्ठ पर लिखा है ।। राम।। गोपीचन्दोपाख्यानस्य उत्तरार्द्धम् कान्ह कवि निर्मितमिदम्।।" 71वें पृष्ठ पर वाचना प्रारम्भ करते हुए लिखा है-- "श्रीमद्रामोजयति।। अथ गोपीचन्दोपाख्यानस्येदमुत्त रार्द्धम् प्रारम्भ।।" पाठ प्राय शुद्ध है। अंत में लिखा है---

माधव गुरुकी महर सें, दीन्हौं ग्रंथ बनाय।
दीपचंद की सौख थी, जस गोपीचन्द राय।।1।।
अपनी मति उनमान सौं, श्रीगुरु कृपा सु पाय।
गावौ जस नर नारि अक, लिखियो सुघर बनाय।।2।।

पुर अटेर पावर नगर, सुघर निवास सथान।
विप्र कनोज्या कान्ह कृत, गोपीचन्दाख्यान।।3।।
संवत मुनि शर रवेन्दु मिति, माधव वदी पुनीत।
त्रयोदशी अरु वार गुरु, गयो प्रहर दिन बीत।।4।

इतिश्री गोपीचन्दपाख्यानस्य उत्तरार्द्धम् भाग संपूर्णम् पूर्व भाग अन्यान्तरमिति।। उत्तरार्द्ध भाग लिख्यो स्वामीजी श्री हिम्मतरामजी महाराज का शिष्य मालूराम संवत 1965 का मिति चैत्रशुक्ल 13।। दोहा

महाराज हिमतेश के, शिष्य सु मालूमराम।
रामसनेही साधु हम, शाहपुरा गुरु धाम।।1।।

नबाब का निमाहेड़ा जहाँ राम द्वारा मध्ये यह लिख्यो।।

शुभमस्तु।। श्रीरस्तु।। कल्याणमस्तु।। श्रीरामजी।।"

मेरे पास जितनी भी वाचनाएँ है उनमें से मात्र यही एक वाचना है जिसमें कान्ह कनोजिया कृत गोपीचंद नामक गाथा का रचनाकाल मिला है। इसके अनुसार मुनि 7, शर 5, रवि 1, इन्दु 1 अर्थात् संवत् 1157, माधवमास, कृष्ण पक्ष, त्रयोदशी तिथि व गुरुवार को जब प्रथम प्रहर व्यतीत हुआ, तब यह ग्रंथ अटेर नामक गाँव में माधव गुरु की कृपा, दीपचन्द की प्रेरणा से कनोजिया ब्राह्मण कानजी ने गोपीचन्द नामक गान निर्मित कर पूर्ण किया। जब हम इसकी भाषा पर विचार करते हैं तब यह 250-300 वर्ष से प्राचीन नहीं है जबकि उक्त संवत् आज से 918 वर्ष पूर्व का है। इस उल्लिखित समय की रचनाओं की भाषा प्रायः अपभ्रंश है जिसके दर्शन इस ग्रंथ में बिल्कुल नहीं होते। जिस प्रकार पृथ्वीराज रासौ को प्राचीन बताकर उसका रचनाकाल पृथ्वीराज के मृत्युकाल सं. 1249 (सन् 1192) बताया जाता है (जो कि सही नहीं है), वैसे ही संभव है, कानजी कनोजिया ने परंपरागत श्रुत कथनानुसार इसको प्राचीन रचना बताने के फेर में इसका रचनाकाल संवत् 1157 लिख दिया हो। वास्तव में न तो वर्तमान में प्राप्त पृथ्वीराज रासौ का निर्माणकाल संवत् 1249 है और न इस गोपीचन्द लोकगाथा का रचनाकाल 1157 विक्रम संवत् है। हाँ, इस संवत् से एक बात दृढ़ता से कही जा सकती है कि गोपीचन्द, भरथरी, गोरखनाथ आदि का समय विक्रम की 12वीं शती से पूर्व का है। इस लिपिकार ने प्रशस्ति के दोहों का भी पर्याप्त परिष्कार किया है और कृतिकार का नाम स्पष्टतः कनोजिया कान्हजी ब्राह्मण लिखा है। 'अटेर' नामक गाँव ग्वालियर (मध्यप्रदेश) के पास स्थित है।

6. दादूपंथी संत द्वारा लिखित वाचना-- मेरे निजी संग्रह में एक पत्राकार ग्रंथों का बस्ता है जिसमें अन्य ग्रंथों के साथ गोपीचन्दजी का वैराग है। गोपीचन्द का वैराग कुल 10 गुना 2=20 पृष्ठों में लिखित है। गोपीचन्द का वैराग ग्रंथ तीन महलों में विभक्त है जिनमें कुल 284 छन्द हैं। यह वाचना अत्यंत संक्षिप्त है। छन्द-जाति वही है जो कानजी कनोजिया के गोपीचन्द में हैं। विषय भी लगभग वही हैं। कुछ प्रसंग छूटे भी हैं जैसे भड़भूजन का प्रसंग। भाषा पर कहीं-कहीं पंजाबी का प्रभाव है। रचना स्वतंत्र है।

7. संत माधव रामजी की वाचना-- मुझे यह वाचना संत रमतारामजी, रामद्वारा भंडार (सिरोही) से मिली है। गोपीचंद वैराग-बोध ग्रंथ पृष्ठ 83 से प्रारम्भ होकर 112 तक लिखित है। प्रारम्भ में दो अध्याय हैं। प्रथम अध्याय (वृन्द) के अंत में लिखा है "इतिश्री वैराग बोध आत्मप्रबोध गोपीचन्द वैराग बोध प्रथमोवृन्द 1।।" दूसरा वृन्द समाप्त होने पर लिखा है "इति श्री वैराग बोध आत्मप्रबोध मैणादे गोपीचन्द संवादे द्वितीयो वृन्दः2।।" आगे वृन्दों की कोई आयोजना नहीं है। पूरा पाठ सलंग चलता रहता है। इस प्रकार इस वचना में कुल 1082 छंद हैं। जो छन्द की जाति कानजी कनोजिया की वाचना में है उसको इसमें चलत छन्द कहा गया है। इस छन्द के अलावा इस वाचना में दोहा छंद व अनेक रागें प्रयुक्त हैं। रागों का नाम है (1) राग खड़ी (2) अष्टपदी (3) चौपाई (4) दोहा (5) लावणी (6) चलत (7) ठबरी (8) चलत ख्याल (9) ठुमरी (10) गरीबी (11) आसा (12)

प्रभाती (13) ख्याल। इस वाचना में राग चलत व राग खड़ी में सबसे अधिक सामग्री है। इसमें सिंह-सिंहनी का संवाद भी अन्य वाचनाओं से अतिरिक्त है। मेड़ता देवल के महंत श्रीरामकिशोर जी ने चर्चाओं में कई बार कहा कि उनके बड़े गुरु भाई संत ध्यानीरामजी जिस गोपीचंद का गायन करते हैं, उसमें सिंह-सिंहनी का सम्वाद है। इस वाचना का रचना संगठन ही भिन्न नहीं है, लिपिकार की प्रशस्ति गोपीचन्द-वैराग-बोध के अंत में इस प्रकार लिखी है--"इति श्रीगोपीचन्द को ग्रंथ वैराग बोध संपूर्ण।। लिखीत चादुर बजार में संपूर्ण डाबेरी में देस वराड़।। संवत 1970 काती वदि 5 अदितवार वाँचै विचारै ज्यासै साधु माधूराम का राम राम बांचणा।।"

8. रामद्वारा डबलाना, बूंदी के अधिष्ठाता ब्रह्मलीन संत बालकरामजी द्वारा, शाहपुरा, भीलवाड़ा के संत श्रीगुरुमुखरामजी को प्रदान किये गये गुटके की वाचना। इसका न लिपिकार, न लिपिस्थान और न लिपिकाल ही ज्ञात है। अतः यह कहना तो मुश्किल है कि यह वाचना कितनी पुरानी है किन्तु कागज, स्याही आदि के आधार पर लगता है, यह वाचना लगभग 150 वर्ष प्राचीन होगी। इसका पाठ इस प्रकार प्रारम्भ होता है-- "अथ गोपीचंद गढधोलागिरि देस बंगालो का राजा जात गोड ज्याँकी कथा"। अंत में दोहे इस प्रकार हैं-

राम राम रसना रटौ, धरौ हिया में ग्यान।
गोपीचंद के श्रवण कर, झटपट चढै विमान।। 65।।
मोखगिरामी सतगुरू, टालै जम की मार।
अपना गुरु की करौ वंदगी, झटपट लागै पार।।66।।
निंदा करै जुते पुरस, पड़ै नरक में जाइ।
सनमुख रहज्यो मानवी, सिद्ध करतु है साइ।।67।।
धन धन गोपीचन्द कूँ, धन मैणादे माइ।
ग्रंथ समापत होत है, करौ हमारी साइ।।68।।

इति नवमो विश्राम।। 9।। करव 1065।। गोपीचन्द वैराग संपूर्ण दोहा 4।। चौपाई 3।।

इस वाचना में कानजी कनोजिया का नाम, गुरु माधव व शौकिया दीपचंद के नाम सहित 'पुरअटेर' संबंधी दोहे अथवा चलत छंद की पंक्तियाँ नहीं हैं। लगता है, लिपिकार को रचना करने का भी अभ्यास था, असने अंत में सारी ही पंक्तियाँ नयी धरी हैं। वैसे भी इसी वाचना में सर्वाधिक छंद मिले हैं। इस वाचना में चलत छंद ही सर्वाधिक हैं। बीच-बीच में दोहा, लावणी, बारामासी, होरी, कालिंगड़ौ, माढ, आसावरी, सोरठ, चौपाई आदि छंद व रागें हैं। इन्द्रगढ़ रामद्वारे के वयोवृद्ध संत उत्तमरामजी (उम्र 95 वर्ष) ने मुझे बताया कि उनके काकागुरु संत श्री रामरतनजी के पास गोपीचन्द की एक वाचना थी जिसमें 1600 छंद हैं। उनकी वह वाचना संत श्री उत्तमरामजी ने देहवास के ब्रह्मलीन संत श्रीध्यानीरामजी को दे दी जिनके शिष्य संत श्रीरामनारायणजी से मैंने कई बार मांगी किन्तु मुझे यह वाचनाएं मिली नहीं।

9. बिन्दु क्रमांक (1) में हमने संत श्रीनानूरामजी द्वारा लिखित गुटके की चर्चा की है। इस ही गुटके में हमको 'गोपीचन्द-छोटा' जिसको हमने बावनी नाम दिया है लिखा मिला है, वस्तुतः राग धनाश्री में यह बावन कड़ियों का पद है। इसके रचयिता का नाम इसमें नहीं है। इसका प्रारम्भ इस प्रकार होता है--

आज सहर में बाई जोगेसुर देख्या।
वीराँ गोपीचंद के उणिहारै रेलौ।।

अंतिम 52वें क्रमांक की पंक्ति है--

कर प्रणाम घर अपणे चाली, अब दरसण कब पाऊँ रेलौ।

कह गोपीचंद सुण चंपादे, गुरु अग्या से तेरे घर में आऊँ रेलौ।।52।।

इसमें तथ्य व कथा संगठन व वैसे ही हैं जैसे कानजी कृत गोपीचंद में हैं।

10. संत श्रीनानूरामजी के गुरुजी संत श्रीजरणारामजी कृत गोपीचन्द की लावणी बिन्दु क्रमांक (1) में वर्णित गुटके में ही मिली है। यह रचना 25 चरणात्मक है। इसका प्रारम्भ इस प्रकार होता है।-

“धन मैणावती माता, पुत्र कूँ जोग दियो हाथाँ।। टेक ।।

और अंत इस प्रकार होता है--

“अमर नाम कलि में कियो, ‘जरणाराम’ गुण गाय।
गोपीचन्द की गाय लावणी, पाप ताप सब जाय।।
रहो सब राम नाम दाता।।25।।
धनि मैणावती माता, पुत्र कूँ जोग दियो हाताँ।।”

11. सावित्रि बाई फुले विश्वविद्यालय के जयकर ग्रंथालय के ग्रंथांक 3208, संग्रहण संख्या 45719 में गोपीचंद से संबंधित 3 पद मिले हैं। ये पद मुझे वयोज्ञानवृद्ध प्रो. (डा.) आनन्द प्रकाश दीक्षित जी ने उपलब्ध करवाये हैं। पहला पद ‘जोगीड़ा तो आया नगर भला नाहीं, राजा म्हारौ कियो रे उदास’ से प्रारम्भ होकर 10वीं, कड़ी पर “पाँव जलंधरीजी का परसिया, गोपीचन्द उतरया पार ।।10।।” से अंत होता है। दूसरा पद ‘बाहुड़ौ न बाहुड़ौ गोपीचन्द राजा, बहुरि धौलागिरि-आवोजी’ से प्रारम्भ होकर 11वें चरण पर ‘सतगुरु म्हारै मस्तक ऊपर, तुम और भलेरौ कीज्यों जी।।11।।’ पंक्ति से अंत होता है।

तीसरा पद “आज नगर में यक जोगी देख्यो, वीरा गोपीचन्द रे उणिहारै रेलौ” से प्रारम्भ होकर 12वें चरण “गोपीचन्द ने जलंधरीजी मिलिया, बांध्येनेह किम तोड़यो रेलो” से अंत होता है। ध्यानपूर्वक पढने पर संज्ञान में आता है कि संत नानूरामजी ने जिस राग धनाश्री के पद को 52 चरणों में लिखा है, वही यहाँ केवल 12 चरणों का है। 40 चरणों का ही आधिक्य नहीं, पाठांतर भी है। लोकगीतों का यही मुख्य लक्षण है। लोकगीत गायक दर गायक अपना रूप-स्वरूप, भाषा-वाक्य विन्यास बदलते रहते हैं। समयानुसार तथ्यों व उपकरणों में अतंर आता है। यही ऊपर वर्णित सभी वाचनाओं और पदों, बावनी, लावणी आदि में हैं।

12. महंत सेवादासजी उदयपुर के गुटके में मिला पद। इसका प्रारंभ, ‘आजि नगर में बाई जोगेश्वर देख्या, गोपीचंद उणियारै रेलो’, से प्रारम्भ होकर ‘सतगुरु म्हारा मस्तक ऊपरि,और घणेरी कीज्यो रेलौ।।11।।’ से अंत होता है। पूना के गुटके में 12 चरण हैं। इस गुटके में 11 चरण हैं। पाठ भेद तो हैं ही। पृष्ठ 304 से उक्त पद ‘आजि नगर में बाई जोगेसर देख्यो’ प्रारंभ होकर पृष्ठ 305 से पृष्ठ पर पूरा होता है। इसके तत्काल बाद ‘जोगीड़ा आया रे नगर भला नाहीं’ पद प्रारंभ होता है जो पृष्ठ 306 पृष्ठ पर समाप्त होता है। यह पद क्रमांक 11 में वर्णित पहले पद से साम्य रखता है।

12. **ब्रज-भाषा की वाचनाएँ-** डॉ. नरेशचन्द्र बंसल, कासगंज के संस्थान ने ‘ब्रज की लोक गाथाएँ’ नामक ग्रंथ प्रकाशित किया है जिसमें योगिराज श्री गोपीचन्द पर भी गीत व गाथाएँ प्रकाशित हैं। पहला गीत ‘मिलि लेंउ भुजा पसारि, भैंनि तोहि रामादल समुझावै’ से प्रारंभ होता है और ‘अंत कोइ मिलि लेउ भुजा पसारि, भैंनि तोहि रामादल समुझावै।।’ से ही होता है। इसमें कुल 21 पंक्तियाँ हैं। यह पृष्ठ 473 पर प्रकाशित है। दूसरा गीत पृष्ठ 474-475 पर प्रकाशित है जिसके दो भाग हैं। पहले भाग में माँ मैनावती गोपीचन्द को संन्यास लेने को प्रेरित करती है। दूसरे भाग में गोपीचन्द संन्यास लेकर योगी बन जाता है। प्रारंभ इस प्रकार होता है “तू जोगी हैजा लाल, अमर तेरी काया है जायगी”। इस प्रथम भाग का अंत “मत तेरो कहनों करूँ गोरी कलि में मेरो नामु चलैगौ री।।” इसका दूसरा भाग ‘अरे बारै बरस बेटा कौने रे देखी, गोपीचन्द राजा राजन के वे लड़िका’ से प्रारम्भ होकर ‘तू दरसन करियारी भैंनि बिरन तेरौ कै ठाडौ अलख जगावै द्वार’। ये दोनों अत्यंत संक्षिप्त गीत हैं। तीसरा गीत न होकर, गाथा है जो उक्त पुस्तक के 75 वें पृष्ठ को प्रारम्भ होती है और पृष्ठ 87 पर अंत होती है। इस गाथा का प्रारंभ-- *“गुरु गन्नेस मनाइ, ज्ञान हिरदय परगासा। आऔ सारद माइ, करौ जुभ्या पैवासा। से होकर अंत ‘सो चंपादे कों ज्ञान सिखायो गोपीचन्द ने, रमतो जोगी रमि रे जाई, गुरु चरनन में चलि दयो’ से होता है।*

13. राघवदासजी दादूपंथी : इन्होंने अपनी भक्तमाल वि.सं. 1717 में निर्मित की। इसमें गोपीचन्द पर 1 छप्पय व 1 मनहर छंद मिलता है।

14. जांभाणी संत परमानन्द ने कई पोथे लिखे जिनमें से छः पोथों का विवरण मिलता है। एक पोथे में हरिया जोगी कृत 'गोपीचन्द-वैराग' 48 पंक्तियों का लिखा मिलता है। इसका प्रारम्भ 'मेल्ह बाजोट खवास बुलाया, गरम गँगोदक मँगवाया' से होता है तथा अंत "गोरख वचने गुरु प्रसादे गावै जोगी हरियौ।।48।।" से होता है। मुझे यह आचार्य कृष्णानन्द विष्णोई संत द्वारा संपादित व प्रकाशित पोथे में मिला है।

15. श्रीदयालदासजी कृत भक्तमाल-- खेड़ापा (जोधपुर) निवासी महंत दयालदासजी ने वि.सं. 1861,आश्विन शुक्ल एकादशी गुरुवार को भक्तमाल लिखकर पूर्ण की। इसमें गोपीचन्द पर एक छप्पय छन्द है।

16. भोजपुरी-वाचना : जार्ज ग्रियर्सन ने सन् 1878 में राजा 'माणिकचन्देर गान' नामक बाङला लोकगीत एशियाटिक सोसायटी के जर्नल में प्रकाशित कराया। तत्पश्चात् सन् 1885 में मगही एवम् भोजपुरी वाचना को उक्त जर्नल में ही प्रकाशित कराया। ये दोनों ही वाचनाएँ अत्यंत संक्षिप्त रूप में प्रकाशित हैं। डॉ. सत्यव्रत सिन्हा ने 'भोजपुरी-लोकगाथा' नामक ग्रंथ हिन्दुस्तानी एकेडेमी से सन् 1957 में प्रकाशित कराया। परिशिष्ट में 8वें क्रमांक पर भरथरी व 9वें क्रमांक पर गोपीचन्द प्रकाशित है। यह गाथा 'फारि के पितंबर मइया गुदरी बनावें' से प्रारंभ होकर 'तब त बहिनिया रोवत गावत घरे चल गइली गउवाँ रैयत सवुर धरावें' से अंत होता है।

17. रज्जब शिष्य रवेमदास कृत 'गोपीचन्द वैराग' ग्रंथ : मेड़ता, देवल के ग्रंथांक 48 में नाथ योगियों से संबंधित दो ग्रंथ लिखित हैं। एक भरथरी सम्वाद ग्रंथ है जो हरिदास द्वारा रचित है। दूसरा ग्रंथ 'गोपीचन्द-वैराग' है जो संत रवेमदास कृत है। संत रवेमदास ने मूलतः इस ग्रंथ को 137 छंदों में बनाया किन्तु ग्रंथ का आकार वृद्धि को प्राप्त होता रहा। यह ग्रंथ उक्त ग्रंथांक 48 के पृष्ठ 86 से प्रारंभ होकर पृष्ठ 94 पर संपूर्ण होता है। ग्रंथांक 48 के न तो लिपिकार ज्ञात है और न लिपिस्थान। बस, पुस्तकांत में 'समत 18 बाणवा' लिखा मिला है।

18. यद्यपि मगही वाचना का रूप मेरे पास जार्ज ग्रियर्सन की वाचना के अलावा दूसरा रूप नहीं है, तथापि जार्ज ग्रियर्सन ने जो सन् 1885 में भोजपुरी वाचना के साथ प्रकाशित कराया है, तुलनात्मक अध्ययन के लिये वही पर्याप्त है। अतः उसी का सामान्य परिचय यहाँ लिखा जा रहा है। जार्ज ग्रियर्सन ने भोजपुरी व मगही वाचनाएँ एशियाटिक सोसायटी कोलकाता के जर्नल के 1885 के भाग एक में पृष्ठ 35 से 55 तक अंग्रेजी अनुवाद सहित प्रकाशित कराया। भोजपुरी वाचना में 19 जबकि मगही में 20 छंद हैं। प्रारंभ 'पहिरि गुदरी राजा वन चले, माता गुदरी धरि ठाड़' से होकर 'फाटे धरती जाय समाय। भाइ बहिनि के नाता दुन्नो जने के टूट गेल।।' से अंत होता है।

19. मलिक मोहम्मह जायसी और उसके अमर काव्य 'पद्मावत' से कौन परिचित नहीं है। प्रसंगवश जायसी ने गोपीचन्द, उसकी माता मैनावती, मामा भर्तृहरि, गुरु जलंधरनाथ व मामा भर्तृहरि व माँ मैनावती के गुरु महान् योगीराज गोरखनाथ का अनेकश उल्लेख किया है। यद्यपि पद्मावत से इन योगियों के बारे में मसनवी पद्धति की कोई सलंग सूचना नहीं मिलती किन्तु इनमें प्राप्त सूचनाएँ हमें वे सूत्र देने में सक्षम हैं जिनके द्वारा हम लगभग पाँच सौ वर्ष पूर्व मध्य-भारत, पूर्व भारत व पश्चिम भारत में व्याप्त जनश्रुतियाँ वैसी ही थी, जैसी पूर्ववर्ती हिन्दी भाषी भारत में व्याप्त थी। यहाँ मूल पाठ व अनुवाद डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल द्वारा संपादित पद्मावत से उद्धृत किये जा रहे हैं।

जो भल होत औ भोगू। गोपीचंद कस साधत जोगू।।

ओनहु सिस्टि जौं देख परेवा। तजा राज कजरी वन सेवा।।

'यदि राज और भोग हितकर होता तो गोपीचन्द योग क्यों साधते? उन्होंने भी जब संसार को पराया समझ लिया तो राज्य त्यागकर कजरी वन का आश्रय लिया।' टिप्पणी7 : 'कजरी वन, एक वन जहाँ सिद्धों का निवास है। ऋषिकेश से बदरिकाश्रम तक का वन-प्रदेश महाभारत में (वन-पर्व अ. 146, श्लोक 75-79) कदली वन कहा गया है। यह भी कहा गया है कि केवल सिद्धों की वहाँ गति होती थी (विना सिद्धगतिं वीर गतिरत्र न विद्यते)। कदली वन का ही लोक में कजरी वन हो गया। (छंदांक 130/6-7)।

टिप्पणी 6 : 'गोपीचन्द, बंगाल के एक राजा, जिन्होंने गुरु गोरखनाथ के प्रभाव से राज छोड़कर जोग ले लिया था। भर्तृहरि की बहिन मैनावती इनकी माता थीं। गोपीचन्द भर्तृहिर के भानजे कहे जाते हैं।'

गोपीचन्द तूँ जीता जोगाँ। औ भरथरी न पूज बियोगाँ।।

'तूमने अपने योग से गोपीचन्द को जीत लिया। भर्तृहरि भी तुम्हारे वैराग्य की बराबरी नहीं कर सकते।'(160/2)।

जानहुँ आहि गोपीचन्द जोगी। कै सो भरथरी आहि वियोगी।।

'जान पड़ता है, जैसे वह गोपीचन्द है, या वियोगी भर्तृहरि है।।' (183/6)।

मानत भोग गोपीचंद भोगी। लै उपसदा जलंधर जोगी।। (341/6)।

'भोगी गोपीचन्द भोगों में फँसे थे। जोगी जालंधर नाथ उन्हें लेकर चले गए।'

टिप्पणी 6: गोपीचंद-- गोपीचंद बंगाल के राजा माणिकचन्द्र के और उनकी रानी मैनावती के पुत्र कहे जाते हैं। माता मैनावती ने पुत्र को गुरु जलंधरनाथ (जिनका नाम हाडीपा भी था) से दीक्षा दिलवाकर योगमार्ग में प्रवृत्त किया। गोपीचंद के अनेक गान बंगला में एवं देश्य भाषाओं में प्रचलित हैं। हिन्दी में भी लक्षणदास का बनाया एक गोपीचन्द गान है (शशिभूषणदास गुप्त, अप्रसिद्ध धार्मिक संप्रदाय (अंग्रेजी ग्रंथ) पृष्ठ 433। 130/6 की टीका में भूल से गोपीचंद को गोरखनाथ का शिष्य लिखा गया है।

जलंधरजोगी- जलंधरनाथ मत्स्येन्द्रनाथ के गुरु भाई थे और मत्स्येन्द्रनाथ गोरखनाथ के गुरु थे। बंगाल-परंपरा में ये जाति के हाड़ी या हलालखेर माने गये हैं। ये बहुत बड़े सिद्ध और योगमार्ग की कापालिक शाखा के प्रवर्तक थे।

रतनसेनि के माइ सुरसती। गोपीचंद जाति मैनावती। (362/1)।

आँदरि बूढ़ि सुतहि, दुख रोवा। जोबन रतन कहाँ भुँइ टोवा। (362/2)।

'रत्नसेन की माता सरस्वती गोपीचन्द की माता मैनावती की तरह (पुत्र-वियोग में दुखियारी) थी। पुत्र के दुख में रोते-रोते वह अंधी और बूढ़ी हो गई।।'

राजस्थानी गोपीचन्द-गाथा वाचनाओं में, गोपीचन्द को धौलागिरि का राजा बताया गया है। पद्मावत में 'धौलागिरि' का प्रयोग 3 स्थानों पर है। डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल ने धौलागिरि का अर्थ हिमालय किया है। 147/4 व 929/2 में भी धौलागिरि का उल्लेख है।

विंधि उदैगिरि धवलागिरी। काँपी सिस्टि दोहाई फिरी।।577/4

'विंध्याचल, उदयाचल और हिमाचल तक सारी दुनियाँ काँप उठी और सर्वत्र शाह की दुहाई फिर गई।।'

टिप्पणी 4 : विंधि-- विंध्याचल। उदैगिरि-उदयाचल। धौलागिरि-हिमालय। विंध्याचल से पूर्व में उदयाचल और उत्तर में हिमालय तक। **20.** लाहोर के डॉ. मोहन सिंह ने सन् 1936 में 'गोरखनाथ एंड मेडिएवल हिन्दू मिस्टिक्स' नामक ग्रंथ के अंत में गोपीचंद से संबंद्ध 'उदास गोपीचंद गाथा, गोरखपद' पंजाबी भाषा का अंतिम अंश प्रकाशित किया है।

जिसका प्रारंभ गोपीचंद का माँ मैनावती के प्रति कहा गया वचन है कि मैंने हे माता ! तेरी कृपा से कायागढ़ जीत लिया है। "तुम परिसादि हो मैनावती मैं औधूगड जीता" तत्पश्चात् पुत्र व माता का 'गढ कैसे जीता' संवाद है। अंत में 'उनिमनि गिगनेतिरि चडि आतबि बिसरिआ देह पिरान अब ईह जीवित मिरत कि हुआ जान का बंविलि इसिनान।। वंदति गोरुषु सुनि मैनावंति तेरा असिथिर भआ राजानु।।27।। इेता उदासु गोपीचंद का संपूरुनु भइआ।।' परिशिष्ट पृष्ठ 26-31।

गोपीचन्द गान : कोलकाता के प्रो. विश्वनाथ राय की कृपा से बाङ्ला के गोपीचंद-गान के 1965 में प्रकाशित तीसरे संस्करण की जीरोक्स प्रति प्राप्त हुई जिसका हिन्दी अनुवाद, मेरे अनुरोध पर बहुभाषाविद प्रसिद्ध लेखक उपेन्द्रनाथ राय जी ने करने का अनुग्रह किया। उन्होंने दस माह के कठोर परिश्रम से 650 पृष्ठों का अनुवाद कर मेरे पास भेज दिया। इस प्रकार कई वर्षों के कठोर प्रयत्न और परिश्रम का फल 'गोपीचन्द-गान' नामक लोक-गाथा जनता के समक्ष आने की स्थिति में आ सकी। अब इन वाचनाओं का संक्षिप्त बहिरंग-परिचय पाठकों को प्रस्तुत किया जा रहा है।

3.(1) एशियाटिक सोसायटी, कोलकाता की जर्नल सन् 1878 के खंड 3 में पृष्ठ 135 से 288 तक के नाम से जार्ज ग्रियर्सन ने एक लोकगाथा प्रकाशित कराई। उन्होंने इस लोकगाथा को रंगपुर के गायक योगियों से सुनकर देवनागरी लिपि में लिखा और अंग्रेजी भाषा में सनुवाद छपाया। लोकगाथा के प्रारंभ में 16 पृष्ठों की भूमिका भी है जिसमें राजा मानिकचन्द्र, मैनावती, हाड़ी सिद्ध, गोरखनाथ, हीरा वेश्या सहित गाथा के नायक गोपीचन्द्र उसकी पत्नी अदुना व पदुना और उसके ससुर हरिश्चन्द्र के संबंध में तत्कालीन स्रोतों के आधार पर जानकारी लिखी है। पाल राजा धरमपाल के कोट का चित्र व राजा हरिश्चन्द्र के कोट का चित्र भी लेख में संलग्न है। इस गान अथवा गाथा में 734 छंद हैं।

बाङ्ला विद्वानों का अनुमान है कि यह गान पूर्ण नहीं, संक्षिप्त वाचना है। गायक विस्तारयुक्त गाथाओं को याद रखने में सक्षम नहीं होते। अतः कोई गायक कुछ अंश तो कोई गायक कुछ अंश ही गाते हैं। जार्ज ग्रियर्सन की वाचना किसी ऐसे योगी से लेकर लिखी गई है जिसको पूरी गाथा आद्यंत याद थी किन्तु थी संक्षिप्त।

गोपीचन्द के संन्यास की कथा के संबंध में बंगाल के पंडितों व बुद्धिजीवियों में, जार्ज ग्रियर्सन द्वारा प्रकाशन कराने के पूर्व कोई रुचि अथवा जागृति नहीं थी ग्रामीण, अंचलों में गायक गाते थे और जन साधारण धार्मिक बुद्धि से इसको सुना करते थे।

सर्वप्रथम बाङ्ला लोक साहित्य पर विपुल लिखने वाले प्रो. दीनेशचन्द्र सेन ने सन् 1896 में 'बङ्गभाषा उने साहित्य' में इस लोकगाथा को विवेचन का विषय बनाया। तब से बाङ्ला विद्वानों का ध्यान इसकी ओर आकर्षित हुआ और इसका पठन-पाठन प्रारम्भ हुआ।

रंगपुर नीलकामारी के सब डिविजनल मेजीस्ट्रेट विश्वेश्वर भट्टाचार्य ने रंगपुर में रहते हुए एक गान का संकलन किया जिसके संबंध में उन्होंने सन् 1908 में साहित्य-परिषद् की पत्रिका में बाड.ला भाषा में एक आलेख प्रकाशित कराया जिसको पढ़कर बंगभाषी विद्वानों की रुचि इस ओर और अधिक जागृत हुई। इन्होंने ही सन् 1910 में चार पृष्ठ का एक 'किंग गोपीचंद ऑफ रंगपुर' नामक लेख एशियाटिक सोसायटी की जर्नल में प्रकाशित कराया। इस प्रकार श्रीविश्वेश्वर भट्टाचार्य गोपीचन्द गान को प्रकाश में लाये।

3.(2) श्रीविश्वेश्वर भट्टाचार्य ने रंगपुर नीलकामारी में रहते हुए दो वृद्ध योगियों से सुनकर 'गोपीचंद-गान' का संग्रह किया। चूंकि इसके रचयिता के नाम का पता नहीं लगा व इसकी कोई हस्तलिखित पोथी भी नहीं मिली, अतः इसका नाम

'रंगपुर का गोपीचंद-गान' हो गया। जहां जार्ज ग्रियर्सन के पाठ में कुल 734 छंद हैं वहाँ इस गान में कुल 4600 छंद हैं।

पूरा गान कई शीर्षकों में बँटा हुआ है। यह विभाजन संभवतः सम्पादकों ने ही किया होगा। विभागों के नाम हैं- (1) जन्म (2) अभिशाप (3) वज्रतृष्णा (4) यमयुद्ध (5) गोपीचन्द (6) बुझान खण्ड-राज्य भोग (7) मातृ अपराध (8) धर्मोपदेश (9) जननी की परीक्षा (10) पंडित खण्ड अदुना-पदुना षड़यन्त्र (11) पंडितेर दण्ड (12) मुंडन खण्ड-नापित की दुर्बुद्धि (13) राजा का विचार (14) राजा का न्याय (15) संन्यास खंड-यात्रा का उद्योग (16) जननी द्वारा भिक्षा दान (17) पत्नी द्वारा भिक्षा दान (18) यात्रा पथ पर (19) अरण्य पथ (20) मरुपथ (21) कलिंग की हाट में (22) नटी का क्रीतदास (23) प्रलोभन (24) नटी की रूप-सज्जा (25) प्रतिहिंसा (26) पूर्व स्मृति (27) शेष दुःख (28) रक्त का लिखा (29) परित्राण का उपाय (30) प्रत्यावर्तन की राह पर (31) पुनर्मिलन (32) राजसुख।

उक्त 32 शीर्षक खण्डों में विभाजित हैं। पहला खंड 'जन्म खंड' है जिसमें 1 से लेकर 5 तक के शीर्षक हैं। इस खण्ड में कुल छंदों की संख्या 715 हैं।

दूसरा खंड 'बुझान-खण्ड' है जिसमें 6 से 9 तक शीर्षक हैं जिसमें कुल 1162 छंद हैं।

तीसरा खंड 'पंडित खंड' है जिसमें 10 वाँ व 11 वाँ शीर्षक सम्मिलित हैं जिनकी छंद संख्या 240 है।

चौथा 'मुण्डन खंड' है जिसमें 12 से 14 शीर्षक हैं। छंदों की संख्या 130 है।

पाँचवाँ 'संन्यास खण्ड' है जिसमें 15 वें से अंतिम 32 वें तक के शीर्षक शामिल हैं तथा जिसमें कुल छंद संख्या 2350 हैं।

पाठांतरों के छंद उक्त गणना में सम्मिलित नहीं है।

इस प्रकार इस लोकगाथा में कुल 4600 छंद हैं। संभवतः इसी करण इस बंग लोकगाथा को 'गोपीचंद-गान' की सर्वाधिक बड़ी वाचना माना व कहा है।

3.(3) दुर्लभ मल्लिक कृत 'गोपीचन्द्र की गीति' का प्रकाशन बाबू शिवचन्द्र शील ने चुँचुड़ा के किसी वैष्णव गायक से मिली पोथी के आधार पर कराया। वैष्णवों द्वारा गेय व योगियों द्वारा गेय गानों में तथ्यगत अंतर अधिक नहीं होंगे फिर भी कुछ-कुछ तो अंतर मिलते ही हैं अन्यथा रचनाकार का वैशिष्ट्य कैसे स्थिर होगा। इसकी भाषा भी नई बाङ्ला है किन्तु उपकरण प्रायः पुराने हैं।

हमें यह पोथी मिल नहीं सकी है। अतः हम इसके बारे में इससे अधिक कुछ नहीं लिख सकते।

3.(4) 'गोपीचन्द्रेर-पांचाली' भवानीदास कृत। इसकी लिखित हस्तप्रतियाँ 'गोपीचन्द्रेर-गान' के संपादकों को त्रिपुरा और चट्टग्राम से मिलीं। चट्टग्राम के मुंशी अब्दुल करीम, जो बाङ्.ला हस्तलेखों और पुराने साहित्य के धुरंधर विद्वान थे ने 4 हस्तलेखों के आधार पर इस ग्रंथ का पाठ स्थिर करके कोलकाता विश्वविद्यालय को प्रकाशनार्थ प्रदान किया। कोलकाता विश्वविद्यालय के प्रो. बसंतरंजन राय ने अपनी प्रतियों से इस संपादित पाठ को मिलाकर एक नया पाठ तैयार किया जो गोपीचंद-गान के दूसरे भाग में प्रकाशित हुआ है।

लय-तान के साथ जिस गान को गाया जाता है उसे बाङ्.ला में पांचाली कहते हैं। इसमें गीत, वाद्य, नृत्य, तुकबंदी व गाने की लड़ाई होने से भी इसे पांचाली कहते हैं। इस गान के प्रत्येक छन्द में पाँच पंक्तियाँ हैं। इस कारण भी यह पांचाली कहे जाने योग्य है।

इस गान को भी सम्पादकों ने कई शीर्षकों में विभाजित किया है। शीर्षक हैं- (1) मातृ उपदेश (2) राजा की विनय (3) बंधुओं की वेदना (4) प्रसाधन (5) मातृ-सन्निधान (6) गोरख की कहानी (7) बहुओं का षड़यंत्र (8) बधुओं की विनती (9) मयनामती की परीक्षा (10) महाज्ञान (11) संन्यास।

इस वाचना में छंदांक संख्या शीर्षकानुसार न

होकर सलंग है जो एक से प्रारंभ होकर 1560 पर अंत होती है।

3.(5) गोपीचन्द्रेर-संन्यास, सुकुरमामूद कृत। सुकुर मामूद (संभवतः शकूर मोहम्मद?) सिंदूर कुसुमी ग्राम के निवासी थे। यह रचना आज से संभवतः 300 वर्ष पुरानी रचना है। गोपीचन्द-गान के संपादकों में से एक प्रो. दीनेशचन्द्र सेन को इस गान की एक प्रकाशित पुस्तक मिली जिसके आधार पर गोपीचंद-गान के तीसरे भाग में इसका प्रकाशन हुआ है। इसमें शीर्षक हैं- (1) वंदना, छंद 1 से 70 तक (2) विवाह, छंद 71 से 310 तक (3) पितृशोक, छंद 311 से 380 तक (4) ज्ञान दान, छंद 381 से 525 तक (5) सिद्ध माहात्म्य, छंद 526 से 990 तक (6) जननी का उपदेश, छंद 111 से 1260 तक (7) ज्ञान-लाभ की कहानी, छंद 1267 से 1410 तक, (8) राजा की जिज्ञासा, छंद 1411 से 1520 तक (9) रानियों की वेदना, छंदांक 1650 तक (10) बारामासी, छंद 1651 से 1720 तक (11) राजा का संकल्प, छंद 1721 से 1965 तक (12) षड़यंत्र, छंद 1966 से 2120 तक (13) पदुना की वेदना, छंद 2121 से 2190 तक (14) संन्यास, छंद 2191 से 2540 तक (15) पतिता की प्रतिहिंसा, 2541 से 2720 तक (16) परित्राण, छंद 2721 से 2850 तक।

इस प्रकार इस लोक गाथा में 16 शीर्षक व कुल 2850 छंद हैं।

3.(6) ऊपर बाङ्ला भाषा की जिन लोकगाथाओं का परिचय जिस पुस्तक के आधार पर दिया गया है, उसका भी सामान्य परिचय यहाँ लिखना आवश्यक है।

जैसा पूर्व में लिखा गया है, 'गोपीचन्द-गान' के प्रकाशन का सिलसिला सन् 1878 से प्रारम्भ हुआ। इसके संकलन का काम संभवतः इससे भी 5-7 वर्ष पूर्व से हुआ होगा।

लोक-साहित्य, कला, संगीत आदि के संकलन,संरक्षण, लेखन, प्रकाशन की ओर रुचि विदेशियों ने जागृत की। हमारे यहाँ का आभिजात्य वर्ग संस्कृत साहित्य के प्रति अधिक आकर्षित था किन्तु समय रहते हमारे देशीय विद्वानों में जाग्रति आई और ये लोक-धरोहर काफी हद तक नष्ट होने से बच गई। फिर भी जितनी धरोहर बची, उसको कई गुनी संपदा नष्ट हो गई, नष्ट होने के कगार पर है।

देश आजाद होने के पूर्व न साधन थे, न सहायता मिलती थी, न सभा, सोसायटी, अकादमियाँ थीं, फिर भी रुचिशील अध्येताओं ने बहुमूल्य काम किये और काफी लोक संपदाओं को नष्ट होने से बचाया किन्तु अब 30-40 वर्षों से शोर-शराबा तो खूब है किंतु ठोस काम करने वालों में वैसा उत्साह व समर्पण नहीं है, जैसा होना चाहिए।

जैसा पूर्व में लिखा है रंगपुर नीलकामारी के सब डिविजनल मेजिस्ट्रेट विसेश्वर भट्टाचार्य ने वहाँ पदस्थापित रहते हुए गान का संकलन किया। जब संकलित हो गया तब उन्होंने गान में उल्लेखित व्यक्तियों (1) माणिकचन्द्र (2) गोपीचन्द्र (3) मयनामती (4) हरिश्चन्द्र (5) अदुना-पदुना (6) हीरा-नटी (7) रंगपुर (8) मयनामतीर कोट (9) फेरुता नगर (10) मेहेरकुल नगर (11) चंद्रकुल (12) भिन्न-भिन्न प्रदेशों में उपलब्ध गोपीचन्द लोगगाथा और उनमें उल्लेखित वंश-परंपरा, नाम, ठाम आदि की जानकारी (13) गोरखनाथ (14) हाड़ीपा (15) कानुफा (16) मत्स्येन्द्रनाथ आदि व्यक्तियों और स्थानों की खोज करना प्रारंभ किया और उक्त गान की भूमिका लिखने का मसौदा तैयार किया। इसी दरमियान इनको चटगाँव के मुंशी अब्दुल करीम से भवानीदास की लोकगाथा 'गोपीचन्द्रेर पांचाली' तथा सुकुर मामूद की लोकगाथा 'गोपीचन्द्रेर संन्यास' नामक पुस्तकें और मिल गई। इन पुस्तकों में गोपीचन्द्र की राजधानी मेहेरकुल नगर में लिखी है जो त्रिपुरा में हैं बताई गई है। वहाँ भी कई ऐसे स्थानीय साक्ष्य इनको मिले कि इन्होंने अपना पूर्व में मंतव्य बदल लिया। पहले ये लोग गोपीचन्द्र को रंगपुर का राजा मानते थे

किन्तु बाद में इनका मानना हो गया कि गोपीचन्द्र कोई छोटे मोटे राजा नहीं, बड़े राजा थे जिनके अधीन बंगाल का काफी बड़ा हिस्सा था।

श्रीविसेश्वर भट्टाचार्य महोदय ने अपनी सामग्री प्रो. दीनेशचन्द्र को दिखाई। उन्होंने कोलकाता विश्वविद्यालय के कुलपति सर आशुतोष से ग्रंथ प्रकाशन की अनुमति माँगी और अनुमति मिलने पर उक्त तीनों वाचनाएँ (1) रंगपुर का गान (2) गोपीचन्द्रेर-पांचाली (3) गोपीचन्द्रेर संन्यास प्रो. दीनेशचन्द्र सेन, विसेश्वर भट्टाचार्य, प्रो. बसंतरंजन राय और प्रो. आशुतोष भट्टाचार्य के संपादन में सन् 1924 में प्रकाशित हुई। हमारे पास इसका तीसरा संस्करण है जिसमें प्रो. आशुतोष भट्टाचार्य ने पृथक् से 1951 में स्वतंत्र भूमिका लिखी है। प्रो. आशुतोष भट्टाचार्य सन् 1983 तक जीवित थे, अतः मुझे लगता है सन् 1924 के प्रथम संस्करण में प्रो. आशुतोष भट्टाचार्य संपादक मंडल में नहीं रहे होंगे।

प्रो. दीनेशचन्द्र सेन ने अपने सन् 1924 की प्रस्तावना में प्रो. दीनेशचन्द्र सेन, विसेश्वर भट्टाचार्य व प्रो. बसंतरंजन राय की ही चर्चा की है। अतः प्रथम संस्करण के तीन ही सम्पादक रहे होंगे जिनके संपादन नें 1924 में 'गोपीचन्द्रेर-गान' का प्रकाशन हुआ। प्रो. सेन की 16 पृष्ठों की प्रस्तावना है। विसेश्वर भट्टाचार्य की भूमिका 60 पृष्ठों की है जबकि प्रो. आशुतोष भट्टाचार्य की पश्चातवर्ती भूमिका 47 पृष्ठों में विस्तीर्ण है।

4. पूर्ववर्ती पृष्ठों में हमने गोपीचन्द नामक लोक-गाथाओं की चर्चा विस्तार से की है। इन लोक-गाथाओं में, विशेषकर राजस्थानी गाथाओं में गोपीचन्द को उज्जैन के राजा भरथरी का भागिनेय (भानजा) बताया गया है। गोपीचन्द को महायोगी जालंधर नाथ का शिष्य बताया गया है जबकि भर्तृहरि को गोरखनाथजी का शिष्य वर्णित किया गया है। गोपीचंद की माता मयनामती को भी गोरखनाथ जी की ही शिष्या बताई गई है। गोपीचन्द-गान के कई प्रसंग महायोगी गोरखनाथजी के हस्तक्षेप से सफल होते हुए वर्णित हैं जिससे संज्ञान में आता है कि महायोगी गोरखनाथ जी एक ऐसे सिद्ध महायोगी हैं जिन्होंने गोपीचन्द व भरथरी दोनों को प्रभावित किया, योगमार्ग में आगे बढ़ाया। इन लोकगाथाओं के अनुसार अंत में गोपीचन्द व भरथरी दोनों एक साथ तपस्यारत होकर साथ-साथ रहते हैं और अमर होते हैं। वस्तुतः मयनामती अपने पुत्र गोपीचन्द को संन्यास लेने का परामर्श अमर होने के लिये ही देती है। योग साधना करके गोपीचन्द भी अमर होना चाहते हैं और गुरु जालंधरनाथ व महायोगी गोरखनाथ की कृपा से दोनों अमर होते भी हैं। 'भरथरी' नामक लोकगाथा, लोकगीत व 'वैराग्य' नामक ग्रंथों में मुख्यतः 'भरथरी' को वैराग्य किस घटना विशेष के कारण हुआ इसका वर्णन मिलता है गोपीचन्द नामक लोकगाथाओं में प्रसंगतः भरथरीनाथ व गोरखनाथ का उल्लेख है। अतः इस लोकगाथा को राजस्थान के गायक 'गोपीचन्द-भरथरी' के नाम से बोलते हैं। इसी कारण हमने बाङ्ला-लोकगाथा का अनुसरण न कर राजस्थानी लोक गाथाओं के अनुसार इन दोनों ही महायोगियों से सम्बद्ध यथाज्ञात, यथोपलब्ध लोकगाथाओं का संकलन किया है। नीचे हम महायोगी भर्तृहरिनाथ से संबद्ध लोक गाथाओं का बरिरंग परिचय प्रस्तुत कर रहे हैं।

4.(1) दादूजी महाराज की परंपरा में राघवदासजी ने वि.सं. 1717 में भक्तमाल की रचना की जिसमें भर्तृहरिनाथजी पर एक छप्पय छंद प्राप्त है। इसमें भरथरी को गोरखनाथ जी का शिष्य बताया गया है (छंद 316)।

4.(2) खेड़ापा, रामस्नेही- सम्प्रदाय के द्वितीयाचार्य श्रीदयालदास जी ने वि.सं. 1861 में भक्तमाल का निर्माण किया जिसमें 189 वें क्रमांक का छप्पय महायोगी भरथरी से संबंधित है। इसमें इनको उज्जैन का राजा बताया गया है।

4.(3) मित्रपुरा-तहसील बौंली जिला सवाईमाधोपुर राजस्थान के परम विद्वान न्यायाचार्य ब्रह्मलीन संत रामप्रसाद जी ने अपने शिष्य 'गोविन्दा' की छाप से 'भर्तृहरि-चरित्र' का निर्माण किया जिसका प्रकाशन रामनिवास धाम, शाहपुरा में निवास करने वाले संत गुरुमुखरामजी ने विक्रम संवत् 2056 में कराया। इसके कुल छंदों की संख्या 231 है।

इसका प्रारंभ निम्न गीतक छंद से होता है--

करूँ वंदन राम गुरु कूँ, चरम रज सिर पर धरूँ।
मैं हूँ अनुचर रावरौ प्रभु, सरण तुमरे अनुसरूँ।।
भूप भरथरि भये राजा, तास गुण वरणन करूँ।
आप किरपा सकल सुभ गुन, यथा बुद्धि मैं ऊचरूँ।।1।।

इस वाचना के अनुसार भरथरी उज्जैन के राजा के पुत्र थे इनकी माता का देहांत इनकी एक वर्ष की उम्र होने पर हो गया। इनकी तीन पत्नियाँ (1) पिंगला (2) श्यामदे व (3) चंपादे थीं। पिंगला के कहने पर भरथरी शिकारार्थ जंगल में गये जहाँ उन्होंने एक मृत हंस को देखा। उसकी पतिव्रता हंसनी ने चिता सजा कर हंस का अंतिम संस्कार किया और स्वंय भी उस चिता में होम हो गई। भरथरी ने सोचा कि पत्नी हो तो ऐसी ही पतिव्रता होनी चाहिए। महलों में आकर राजकुमार ने पिंगला से हंसनी के पतिव्रत की प्रशंसा की। रानी ने कहा, हंसनी उत्तम पतिव्रता नहीं, उत्तम तो पति का मरण सुनते ही प्राण त्याग देती है। भरथरी ने पिंगला की बात सुनकर कहा कुछ नहीं, किन्तु परीक्षा करने की मन में ठान ली।

पुनः शिकारार्थ गया। वहाँ बारह सौ मृगियों व एक काले मृग के झुंड को देखकर मृग मारने लगा किन्तु मृगियों ने न मारने का अनुरोध किया। इस पर भरथरी ने कहा, मैं इन्द्र का पौत्र, गंधर्वसेन का पुत्र, विक्रमाजीत का भाई, व मैणावती का भाई राजपुत्र हूँ। शिकार हाथ के नीचे आने पर राजपुत्र शिकार को छोड़ते नहीं। मैं भी छोड़ने वाला नहीं। शर चलाया और मृग मारा गया। मृगियों ने श्राप दिया कि तुम्हारी पत्नियाँ भी हमारी तरह ही तीन प्रहर के भीतर-भीतर विलाप करेंगी। तुम योग धारण कर लोगे। भरथरी ने अपना दुपट्टा मृग के रक्त से रंजित कर सैनिक के हाथ रानी पिंगला को भेजकर कहलवाया कि राजा भरथरी सिंह के द्वारा मारे गये।

इधर भरथरी को गोरखनाथ मिल गये। प्रणाम करने पर गोरखनाथ ने भरथरी को धिक्कारा कि तुमने निरपराध मृग को मारकर अनेक मृगियों को संतप्त किया है। भरथरी ने अनुनय-विनय की। आप चमत्कारी योगी हैं। अतः मृग को जिला क्यों नहीं देते! गोरखनाथ की विभूति ने मृग को जीवित कर दिया।

उधर सैनिक की सूचना पर पिंगला रानी ने दीवार से टक्कर खाकर इहलीला समाप्त कर ली। समाचार पहुँचाने वाले ने राजा को रानी के मरण के समाचार कहे। राजा विलाप करता महल में आया और अत्यधिक करुण क्रंदन करने लगा। मरने को तैयार होने लगा। इतने में ही गोरखनाथ आ गये।

भरथरी को शिक्षा देने को गोरखनाथ चौक में फिसल गये। उनकी चीपी फूट गई। फलतः चीपी, हाय चीपी कह-कहकर रोने लगे। राजा ने कहा, आप महान योगीराज हैं। मैं आपको सोने की रत्नजड़ित चीपी भेंट कर देता हूँ। क्यों आप मिट्टी की चीपी के लिये रोते हैं। गोरखनाथ ने कहा, ऐसी चीपी दूसरी हो ही नहीं सकती। इस कारण इसके वियोग में रो रहा हूँ। राजा ने कहा, आप मिट्टी की चीपी के लिये क्यों रो रहे हो। गोरखनाथ ने कहा, जैसे मेरी मिट्टी की चीपी नाशवान है, ऐसे ही पिंगला भी मिट्टी का पुद्गल मात्र थी। शोक त्यागकर योग साधना करो और अमर होने का यत्न करो।

फिर भी राजा ने विनय की कि एक बार पिंगला को जीवित कर दो। गोरखनाथ ने पिंगला को जीवित कर दी। पिंगला ने कहा-

कड़ी नजर राणी पिंगला, सुन राजा बेईमान।

फिर तू मूरख जीवतौ, दीखत आँख नजीक।।106।।

पशु अकल सम तू नहीं, पूरौ मूढ़ अजान।

मोहि सुनाई झूठी बातड़ी, मेरे प्रान मुसाय।।107।।

तो सम मूरख को नहीं, सुनि ए मूढ़ गँवार।

कौण पुरुष कुण इस्तरी, कौण सुतह परिवार।।108।।

झूठी जग की मोहनी, झूठौ सब संसार।

तू मूरख रोवै कहा, हम तुम संग न साथ।।109।।

यूँ कह राणी पिंगला, निकसे प्राण सताब।

राजा के नेतर खुल गये, उपज्यो ग्यान विचार।।110।।

पिंगला का द्वादशाह सम्पन्न कर राजा वैराग्य लेने को समुत्सुक हुआ किन्तु गोरख के समझाने पर पुनः राज-काज में संलग्न हो गया। इधर उज्जैन के एक ब्राह्मण को अमर फल मिला। ब्राह्मण ने राजा को दे दिया। राजा ने रानी श्यामदे को दे दिया। रानी ने नगर के कोतवाल को दे दिया जो उसका प्रेमी था। कोतवाल ने गणिका को दे दिया। वेश्या ने स्वयं के अधम जीवन को धिक्कारते हुए राजा को अमर करने के लिये फल लाकर राजा को दे दिया। राजा फल को देखकर विस्मित हुआ। रानी की तहकीकात की। रानी की झूठ व काम-वासना की प्रबलता को जानकर राजा को दृढ़ वैराग्य हो गया। गोरखनाथ की शरण में जाकर योगी बन गये। गुरु गोरखनाथ के आदेशानुसार राज महलों में भिक्षा मांगने आये। रानियों को माता का सम्बोधन दिया। भिक्षा देने बांदी आई किन्तु रानी से ही भिक्षा लेने का आग्रह जताने पर बांदी व भरथरी में तीखा संवाद हुआ। अंततः रानी श्यामदे भिक्षा देने आई किन्तु भरथरी ने कहा, मुझे रूखी-सूखी बासी रोटी चाहिए न कि राजसी भोजन। दोनों का बड़ा ही मनोहारी संवाद यहाँ पर है। अन्य रानियाँ भी आ गई, राजा को नाना प्रकार से लुभाने लगीं, किन्तु राजा अब विचलित होने वाला नहीं था। राजा बार-बार माता संबोधन सहित भिक्षा देने की प्रार्थना करता रहा जिससे कि उसका योग अमर हो जाए। अंततः रानी भिक्षा देने को राजी हो गई और कहने लगी, चीपी तो बड़ी लाते। राजा ने कहा, इसको तो पहले भर दो। चीपी भरी नहीं। अंततः पुनः रानी ने कहा, मुझे चेली बनाकर साथ रख लो किन्तु राजा ने कहा, मैंने तुमको माता कहा है, अब शिष्या मानना असंभव है। फिर महलों में ही धूणा लगाने की प्रार्थना की जिसको भी भरथरी ने अस्वीकार कर दिया। रचनाकार ने अंत इस प्रकार किया है---

या कह राजा भरथरी, आया पछै सताव।

रोय पड़ी सब राणियां, सारी करत विलाप।।225।।

राजा गए गोरखनाथ पै, हाजिर कीनी भीख।

देख र बोल्या गोरखनाथजी, सुनिये भरथर भूप।

कलि में अमर तुम हो गया, साँचा साध्या जोगा।।226।।

धन्य तुम्हरी मात कूँ, धनि है पिता तुम्हार।

धन्य राज तज्यो जानिये, लीनो ग्यान विचार।।227।।

ऐसे कह भोजन जीम करि, चले वनखंड मांहि।

विचर गये गोरखनाथजी।।228।।

दोहा -

कुँभ का मेला में मिले, भरथर गोपीचन्द।

दोनूं मामा भानजा, भज्यो सच्चिदानन्द।।229।।

अमर भया संसार में, जिन त्याग्यो सब राज।

विचरे देस विदेस में, अलख भज्यो तज साज।।230।।

ताके गुण संक्षेप सौं, कहे यथामति गाय।

गोविन्दा जो गावसी, जे नर हरि पद पाय।।231।।

4.(4) छतीसगढ़ी-भरथरी की वाचना : मध्यप्रदेश आदिवासी लोक-कला एवं बोली विकास अकादेमी के द्वारा सन् 1994 में डा. नन्द किशोर तिवारी द्वारा संकलित व हिन्दी में रूपान्तरित छतीसगढ़ी में गेय

भरथरी को प्रकाशित किया गया है। हिंदी रूपान्तरण पृष्ठ 94 से 164 तक प्रकाशित है।

इस गाथा के अनुसार भरथरी की माँ फुलवा के संतान नहीं थी। कोई योगी आया। उसने अमृत जल पीने को दिया जिससे भरथरी का जन्म हुआ। जन्मपत्री देखकर ब्राह्मण ने भरथरी की कुल 12 वर्ष की उम्र बताई। उम्र बढ़ने पर भरथरी जिद करके लिलिहंस घोड़े पर सवार होकर आखेट करने को वन में गया। काले हिरण को मारने को पीछे दौड़ता है। मृग कुलाचें मारता अपनी 126 हिरणियों के झुंड में पहुंचता है। हिरणियों के उनमें से किसी को मारने का निवेदन करने पर भरथरी कहता है, मैं क्षत्रिय हूँ, नारी, स्त्री जाति पर प्रहार नहीं करता; अतः मैं हिरण को ही मारूँगा। हिरण को मारकर महलों की ओर चला। रास्ते में गोरखनाथ मिले। गोरखनाथ ने कहा, तुम्हें हिरणियों का श्राप लगा है। तुम मेरे पैर मत छुवो। भरथरी ने पूछा, मेरी गति इस श्राप से कैसे होगी? तब गोरखनाथ ने कहा, योग का आश्रय लेने से, योगी बनने से। महल में माता फुलवा के पास जाकर भरथरी सारी बात कहता है। मृत मृग को गोरखनाजी की धूणी पर ले जाता है और उसको जीवित करने की प्रार्थना करता है। अनुनय-विनय सुनकर गोरखनाथ द्रवित हो उठते हैं। कहते हैं, मृग को तो जिला दूंगा किन्तु तुमको बारह वर्ष तक योग-साधना करनी होगी। इतना सुनते ही भरथरी, गोरखनाथ की धूणी में कूद कर जल मरता है। गोरखनाथ के लिए यह एक नया ही उपद्रव हो गया। गोरखनाथ ने योगबल से तत्काल भरथरी व मृत मृग को जीवित कर दिया।

गोरखनाथ ने कहा, मृग पूर्व जन्म का साधु व 126 मृगियाँ उसकी शिष्याएँ हैं। सिंघल द्वीप में इसने राज किया था। वही अब मृग बनकर आया है। प्रभावित होकर भरथरी भी योगी बनना चाहता है किंतु गोरख कच्ची उम्र का वास्ता देकर राज-पाट संभालने का आदेश देते हैं। भरथरी आकर माँ फुलवा को सारे समाचार कहता है।

बारह वर्ष की उम्र होने पर भरथरी का विवाह श्यामदेई से सम्पन्न हो जाता है। शयनकक्ष में जाने पर पलंग पर पैर रखते ही सोने का पलंग टूट जाता है। भरथरी कारण पूछता है किंतु श्यामदेई बताने में आनाकानी करती है। गंभीरतापूर्वक पूछने पर कहती है, इसका रहस्य बहिन रामदेई बता सकती है। रामदेई दिल्ली में विवाहित होकर रहती है और मानसिंह की रानी है। उसने एक पुत्र को जनम दिया है। पुत्रोत्सव में भरथरी भी जाता है, रहस्य पूछता है किंतु रामदेई रहस्य न बताकर मृत्यु का वरण करती है और अगले जन्म में रहस्य बताने का वादा करती है। रामदेई ने पहले तोते का, फिर कुतिया के पिल्ले के रूप में, फिर सुअर का बच्चा का, फिर कौए के बच्चे के रूप में, फिर गाय के बछड़े के रूप में, फिर बिल्ली के बच्चे के रूप में जन्म लिया। प्रत्येक जन्म में अगले जन्म में रहस्य बताने का वादा किया किन्तु बताया एक भी जन्म में नहीं। अंत में सातवाँ जन्म नरूलागढ़ के राजा की पत्नी के गर्भ से पुत्री के रूप में रूपदेई के रूप में जन्म लिया। यहां भरथरी ने आकर पूछा, तब कहा, मैं तब बताऊँगी जब विवाहित होकर ससुराल जाऊंगी। विवाह होने पर, पूछने पर रूपदेई मानसिंह को न बताने की शर्त पर बताती है, गौर से देखो, जिससे मेरा विवाह हुआ है, वह पूर्ववर्ती सातवें जन्म में मेरा कौन था। गौर से देखने पर ज्ञात हुआ कि पहले वह मेरा पुत्र था, अब पति बन रहा है। ऐसे ही श्यामदेई पूर्ववर्ती जन्म में आपकी माता थी, इस बार पत्नी बनी है। रूपदेई की बात सुनकर भरथरी को तत्काल तीव्र वैराग्य हो गया। माँ से आकर कहता है, अब मैं योगी बनूंगा। समझाने पर भी समझता नहीं। चलता-चलता छः महीने में गुरु गोरखनाथ की सेवा में गोरखपुर पहुंच गया। गोरखनाथ ने पुनः समझाया किंतु समझा नहीं। अंततः दीक्षा न मिलने पर धूणी में कूदकर जल मरा। गुरु गोरखनाथ ने पुनः अमृत छिड़ककर भरथरी को

जीवित कर दिया। तीव्र इच्छा का सम्मान कर गोरखनाथ ने दीक्षा प्रदान कर राजमहल से भिक्षा मांगकर लाने का उपदेश दिया।

उज्जैन पहुँचकर महलों से भिक्षा मांगने गया। सबसे पहले चंपा भिक्षा देने आई किंतु भरथरी ने भिक्षा नहीं ली। कहा, रानी ही मुझे पुत्र कहकर भिक्षा देगी, तब लूंगा। रानी भिक्षा नहीं देती। हारकर भरथरी वापिस आ जाता है। गुरु को सारी बात कहता है। गोरखनाथ कहते हैं, जब तक श्यामदेई पुत्र कहकर भिक्षा नहीं देगी, तब तक न तो तुम्हारा योग सफल होगा और न तुम्हें अमरत्व मिलेगा। इतना ही नहीं, तुम मेरे शिष्य भी नहीं बन सकोगे।

'सुनो गुरुदेव! क्षत्रिय-पुत्र मैं; दूंगा तज प्राण; दिया नहीं यदि शिष्यत्व आपने; कहता है भरथरी। कहते हैं गुरु गोरखनाथ; लो, दे रहा हूँ तुम्हें यह चिमटा; पीताम्बर गूदड़ी; और रत्नजड़ित यह टोपी; धारण कर इसे; माँग लाओ भिक्षा श्यामदेई से; और सुनो देगी वह भिक्षा जब; मानकर पुत्र तुम्हें, तभी दूंगा तुम्हें मैं दीक्षा।'

भरथरी ने पुनः उज्जैन जाकर भिक्षा माँगी किंतु श्यामदेई पुत्र कहकर भिक्षा देने को तैयार नहीं। श्यामदेई नाना प्रलोभन और उलाहने देती है किंतु भरथरी टस से मस नहीं होता। श्यामदेई ने 'गढनरोल' के 'नराकुल शहर' से भरथरी की बहिन मयनामती व भागिनेय गोपीचन्द को समझाने को बुला भेजा। दोनों ने खूब समझाया किंतु भरथरी ने संन्यास लेने की हठ से हटने को कड़ाई से मना कर दिया। अंततः मैनामती व गोपीचन्द के समझाने पर श्यामदेई ने पुत्र कहकर भिक्षा दी।

श्यामदेई भी लाव-लश्कर के साथ गोरखपुर पहुँच गई। भरथरी ने सैनिकादिक को गुरु सेवा में नियोजित कर दिया। धन-दौलत बाँट दी। हाथियों को जंगल में छोड़ दिया। दास-दासियों को दीक्षा देने की प्रार्थना करता है। गोरखनाथ ने भरथरी से बारह वर्ष तक भिक्षा मांगने को कहा।

श्यामदेई गोरखनाथ से भरथरी की शिकायत करती है। अंततः गोरखनाथ द्रवित हो गये। उन्होंने कहा,

'रहो तुम अपने पति के साथ
करो सेवा उसकी; दो सहयोग उसे
हो उसका संन्यास सफल;
कहते हैं समझाकर, गुरु गोरखनाथ।'

गुरु आदेश पालनार्थ भरथरी 'कामरूप कमच्छल' देस में भिक्षार्थ जाता है। रास्ते में एक योगिनी मिलती है। उससे भरथरी कामरूप की रानी नैना को कैसे जीत सकूंगा का उपाय पूछता है। योगिनी कहती है, उज्जैन के राजा भरथरी व रानी श्यामदेई का स्मरण कर लेना, तुम्हारा उद्देश्य पूरा होगा।

श्यामदेई का स्मरण करते ही रास्ते की नदी सूखकर रास्ता दे देती है। नागिन का मुँह बंद हो जाता है। रानी नैना के पास पहुँचे, नैना की अप्सराएँ राजा को मोहित करती हैं किन्तु राजा उनके मोह में फँसता नहीं। श्यामदेई का स्मरण करता है। श्यामदेई रूपदेई से कहती है, तुम्हारे जीजा संकट में हैं। उन्हें बचाना चाहिए। दोनों आकर नैना के सारे जादुओं को काट डालती हैं। अंततः नैना प्रसन्न होती है। भरथरी नमन करता है। नैना योग सफल होने का आशीष देती है।

भरथरी लौटकर गोरखपुर आता है किन्तु गुरु को बिल्ली रूप में पाता है। नैना ने गुरु गोरखनाथ को बिल्ला, शिष्य-शिष्याओं को भी बिल्ला-बिल्ली बना रखा है। भरथरी श्यामदेई का स्मरण करता है। श्यामदेई काले-पीले चावल छींटती है। गोरखनाथ गोरखनाथ बन जाते हैं। भरथरी को आदेश देते हैं, श्यामदेई को माता कहकर व पुत्र कहलवाकर भिक्षा लाओ। भरथरी उज्जैन जाता है। श्यामदेई ने मैनावती, गोपीचन्द, राजा त्रिलोचन्द, राजा मानसिंह को बुला रखा है। बाइस गढ़ों के राजाओं को बुला रखा है। भरथरी का भिक्षा पात्र न मैनावती, न गोपीचन्द की भिक्षा से भरता है किन्तु श्यामदेई की

भिक्षा से जो उसने 'पुत्र' कहकर दी से भर जाता है। साधना पूरी होने का आशीर्वाद देती है। भरथरी गुरु गोरखनाथ के पास आता है। गुरु अपनी गद्दी शिष्य भरथरी को देते हैं। भरथरी अमर हो जाते हैं।

4.(5) भरथरीनाथ पर 'हरिदास' नामक रचनाकार का एक ग्रंथ 'भरथरीनाथजी को संवाद' दादूपंथी हस्तलेखों में लिखा मिलता है। ये हस्तलेख प्रायः संवत् 1700 के पश्चात् के हैं। लगता है, यह रचना वि.सं. 1650 से 1700 के बीच की है।

प्रारम्भ निम्न प्रकार होता है--

प्रथम सीस हरि गुरु कौं नाऊँ। जिनकी किरपा बुधि सुधि पाऊँ।।

वरणुँ त्याग भरथरी केरा। जिहिं विधि कीया मोह निवेरा।।1।।

नगर उजीण कहीय अस्थानों। उपमा इंद्रपुरी सम जानों।।

राजा परजा अति सुख होई। बिन कलेस दुखी नहिं कोई।।2।।

गंध्रपसेन पिता को नाऊँ। जिनको पूत भरथरी गाऊँ।।3।।

राजपाट भोगे सबे, इच्छा रही न कोय।

'हरिदास' नर देह धरि, अमर भये कलि सोय।।4।।

संत हरिदास ने इस ग्रंथ को 579 दोहा-चौपाई में बनाया है। इसमें प्रायः उस घटना को विस्तार के साथ लिखा गया है जिसको संत रामप्रसादजी ने 'मृगया से उत्पन्न निर्वेद' के रूप में वर्णित किया है। इसमें अमर फाल संबंधी कथानक का कोई उल्लेख नहीं है। अमरफल वाला कथानक शतक त्रयकार भर्तृहरि का माना जाता है। संभवतः इसीलिए संत हरिदास ने अमरफल वाला प्रसंग आलोच्य गोरखनाथ-शिष्य भर्तृहरिनाथ से नहीं जोड़ा है। इस पर विशेष चर्चा आगामी पृष्ठों में करेंगे।

4.(6) गाबा को भरथरी : मुझको इसकी यह वाचना संत श्रीनानूरामजी 'रामस्नेही' के गुटके में मिली है।

यह गान 'राग अडाणा' में गेय है और इसमें कुल तीन पद हैं।

पहला पद भरथरी द्वारा योगी बनने का वर्णन करता है जिसमें सिंहासन पर बैठकर राज-काज करने, सुख-ऐश्वर्य आदि के वर्णन के साथ-साथ इनको छोड़कर योगी बनने का जिक्र है।

दूसरे पद में रानी, राजा के नाना भोग-विलासों, कौल-करारों, वैराग्य जन्य कष्टों, पीड़ाओं को बताती है और योग से विरत होने का परामर्श देती है, दृढ़ाग्रह करती है।

तीसरे पद में राजा, रानी को योग की महिमा, योग के लाभ बताकर योग-धारण करने के औचित्य को सिद्ध करता है।

4.(7) पुणे, महाराष्ट्र से प्रो. (डॉ.) आनन्द प्रकाश दीक्षितजी ने गोपीचन्द व भरथरी दोनों से सम्बद्ध पद पुणे विश्व विद्यालय में प्राप्त हस्तलेखों की छाया प्रति के रूप में मुझे उपलब्ध कराये हैं। ये पद मुझे मेरे संग्रह में प्राप्त महंत श्रीसेवारामदजी के गटके व संत श्रीमाधव दासजी के गुटकों में भी मिले हैं।

पहला पद 'साधसुखी हो राजा भरथरी, महा दुखी संसार'

दूसरा पद 'सुणि राजा राणी कहै, बेगा महल पधारो' कुल 20 कड़ियों का है जबकि श्रीनानूरामजी की पुस्तक में यह पद पूरी 50 कड़ियों का है। राणी व राजा का संवाद इस पद में हैं। पदांत में छाप 'कालू' नामक रचनाकार की यथारूप है।

तीसरा पद 'येकरसाँ फिर आवो हो राजा भरथरी, नाथ उजेणी देखि', राजा-रानी के संवादमय है। विषय वही है, जो नानूरामजी के पदों में हैं फिर भी शब्दावली भिन्न है।

4.(8) गोपीचन्द के संदर्भ में हमने संत माधवदासजी की वाचना का विवेचन किया है। उसी गुटके में हमें योगीराज भर्तृहरिनाथ से संबद्ध एक और पद मिला है, जो उक्त पदों से भिन्न है। यह

लावणी है और इसमें 7 चरण हैं। कुल 40 पंक्तियाँ, टेक को शामिल करते हुए हैं। इसका प्रारंभ 'चल सफल सफल कमाई, राज भरथरी केरी' से होता है और अंत 'उन किया पिंजरौ पकौ, काया कूँ हेरी' से होता है। इसका रचनाकार कोई प्रेमचन्द है।

"यो भरथरी राज को छंद, 'प्रेमचन्द' गावै।"

4.(9) बैंकटेश्वर प्रेस से खेमराज श्रीकृष्णदास द्वारा प्रकाशित 'भरथरी-चरित्र' किन्हीं काशीनाथजी की रचना है। मिलाने पर संज्ञान में आता है कि पं. श्रीरामप्राद जी रामस्नेही द्वारा निर्मित जिस भरथरी-चरित्र की चर्चा पूर्व में की गई है, वह इसी रचना का विस्तारित रूप है। इसमें हंसनी के पतिव्रत धर्म का उल्लेख नहीं है। साथ ही अमरफल की कथा इस वाचना में है। इतना ही नहीं, स्थान-स्थान पर पाठ में भी अंतर है और सामग्री बढ़ी हुई है। इस वचाना का प्रारंभ इस प्रकार होता है---

"इन्दर के नाती भये, पुत्र गंधर्वसेन।
भाई विक्रमाजीत के, मैनावंती भैन।।1।।"

अंतिम छंद है--

चुटिया काटि चेला किया, कान दीन्ही है फूक।
पीठि ठोकि दीन्हीं गोरखनाथजी, जोग अमर हो जाय।
कल (संसार) में अमर हो जाओ भरथरीजी।।"

छत्तीसगढ़ी वाचना में 126 मृगियों का पति था काला मृग जबकि इस वाचना में 70 मृगियों का पति है। संत रामप्रसादजी की वाचना व नृप भरथरी संवाद ग्रंथ में पिंगला रानी के मरने का प्रसंग है जबकि इस वाचना में पिंगला से 11 वर्ष की उम्र में विवाह होने का वर्णन तो है किन्तु आगे पिंगला का कहीं नाम तक नहीं। सर्वत्र रानी श्यामदे व बांदी चंपा का उल्लेख है। संवाद भी श्यामदे से ही हुआ है। भरथरी द्वारी 1600 रानियाँ त्यागने की बात भी इस वाचना में कही है जो अन्यत्र नहीं है। जब भरथरी योगी होने के निणर्य को नहीं बदलता तब श्यामदे चौसर खेलने का प्रस्ताव रखती है। शर्तें निश्चित होती हैं। रानी हारती है -

जो बाजी जीतौ तुम श्यामदे, दस दिन राखौ विलमाय।।
जो बाजी जीतैं भरथरी, तुम्हैं लगावै न साथ।।
पासा लिया राजा हाथ में, धरि भगवान का ध्यान।
याद किया गोरखनाथ को, राखौ भेष की लाज।।
पासा फेंका राजा भरथरी, परि गये सोलह और सात।
जीती बाजी राजा उठि चले, रानी उलटी खाई पछाड़।।

यह प्रसंग केवल इसी वाचना में मिलता है।

4.(10) 'भोजपुरी लोकगाथा' नामक पुस्तक डॉक्टर सत्यव्रत सिन्हा ने थीसिस के रूप में लिखी जिसको हिन्दुस्तानी एकेडेमी ने सन् 1957 में प्रकाशित किया। अब इसका सन् 2015 का दूसरा संस्करण प्राप्त है जिसमें 'गोपीचन्द' व 'भरथरी' दोनों लोक-गाथाओं के भोजपुरी रूप परिशिष्ट में प्रकाशित हैं। भरथरी का पाठ पृष्ठ 329 से 399 तक 11 पृष्ठों में है। इस वाचना के अनुसार श्यामदे,भरथरी की पत्नी है। पिंगला साली है जो दिल्ली में मानसिंह को विवाहित हुई है।

यह गाथा भरथरी द्वारा घर छोड़कर जाने को तैयार होने से प्रारंभ होती है। रानी श्यामदे व भरथरी का संवाद प्रारंभ हो जाता है। रानी पूछती है, योगी ही बनना था तो विवाह क्यों किया। राजा पूछता है-जब मैं गौना करके लाया, तब पहले दिन ही पलंग की पाटी क्यों टूट गई? रानी ने बताया कि इसका रहस्य उसकी बहिन बतायेगी। छत्तीसगढ़ी वाचना में भरथीरी स्वयं दिल्ली भेद जानने को जाता है किन्तु इस वाचना में पिंगला को अपने यहाँ बुलाता है। पिंगला से रहस्य पूछने पर भरथरी को उत्तर मिला कि पूर्वजन्म में श्यामदे तुम्हारी माता थी। निर्णय तुमको करना है कि माँ से भोग करना है या जोग करना है। यहाँ गाथा का एक खंड पूरा हो जाता है।

अगले खण्ड में मृगया करने जाने का वर्णन है।

राजा शिकारार्थ सिंहलद्वीप में जाता है। गाथा में मृगियों की संख्या 'सत्त सौ' लिखी है जिसको डॉ. सिन्हा ने 'सत्तर सौ' का वाचक माना है। (संभवतः पाठ 'सत्तर' रहा हो।) काला मृग बचने को आकाश में उड़ा किन्तु आश्रय नहीं मिला। नेपाल के राजा के पास गया किन्तु वहाँ भी बचाने का आश्वासन न मिला। अंततः भरथरी के समक्ष ही हाजिर हो गया। राजा ने शिकार किया। मृगियों ने श्राप दिया।

श्राप सुनकर राजा विचलित हुआ, मृग को जिलाने को उतारू हुआ। अतः मृत मृग को लकर गोरखनाथ के पास गये। गोरखनाथजी की कृपा से मृग जीवित हो गया। प्रभावित होकर भरथरी ने योग धारण करने की प्रबल अभिलाषा व्यक्त की। गोरखनाथ संन्यासमार्ग की कठिनताएँ बताते हैं किन्तु भरथरी सभी का संतोषजनक उत्तर देते हैं। अंततः गोरखनाथ भरथरी को वैराग्य प्रदान कर देते हैं। साथ में कहते हैं, योग तब ही सफल होगा जब रानी को माँ कहकर भिक्षा लाओगे। रानी पुत्र कहकर भिक्षा देगी। भिक्षार्थ जाने पर रानी नाना प्रकार से राजा को संन्यास धर्म से विचलित करने का प्रयत्न करती है, पुत्र प्राप्ति की कामना भी व्यक्त करती है, तब राजा का इस वाचना में नया उत्तर है, कहता है, भानजे गोपीचन्द को जरूरत होने पर बुला लेना।

'बेटा के ललसा रानियाँ तोहरे बाटे,
बाटे गोपीचन्द भयने लगे तोहार
जाने बेटा मोर, पाली पोसी तू करबू
गाढे दिनबा अइहैं तोहरे काम'

रानी अपनी बात कहती है, राजा टस से मस नहीं होता। अंत में चौसर के द्वारा निर्णय की बात स्थिर करके चौपड़ खेलते हैं। रानी हारती है। गोरख की कृपा से राजा जीतता है। भरथरी योगी बन जाता है।

राजा गए अपने गुरु के पास,
बाबा गोरखनाथ लिहले चेलवा बनाय,
हाय हो सकल राजा भरथरी।।

4.(11) डॉ. सिन्हा की उक्त पुस्तक में 'विधना क्या कर्तार' नामक भरथरी-चरित्र, जो दूधनाथ प्रेस, हवड़ा से प्रकाशित है का सार प्रस्तुत है। मुझे यह पुस्तक मिल नहीं सकी, अतः इसके बारे में यत्किञ्चित् इसी के आधार पर लिखा जा रहा है।

उज्जैन के राजा इन्द्रसेन व रूपदेई के पुत्र थे भरथरी। पंडितों ने भविष्य-वाणी की कि भरथरी 12 वर्ष घर में रहकर फिर योग धारण कर लेंगे। सिंहलद्वीप के राजा की पुत्री श्यामदेई से भरथरी का लग्न सुनिश्चित हुआ। श्यामदेई भरथरी को देखते ही पहचान गई कि यह तो पूर्वजन्म का मेरा पुत्र है। गौना होकर जब श्यामदेई उज्जैन आई और शयनागार में भरथरी गया तो बैठते ही पलंग टूट गया। श्यामदेई का सत बच गया। राजा ने कारण पूछा। श्यामदेई ने कहा, कारण उसकी बहिन पिंगला बतायेगी जो दिल्ली के मानसिंह की पत्नी है। आगे का कथानक छत्तीगढ़ी वाचना के अनुसार चलता है। पिंगला ने सातवें जन्म में रहस्य खोला। छः जन्म हुए, कोइरिन के घर जन्म, शूकरी, कूकरी, सर्पिणी, गाय का जन्म धारण कर अन्त में बोढनसिंह की पुत्री के रूप में गढ गोंदिया में जन्म लिया। यहाँ इसका नाम फुलवा पड़ा। इसका विवाह मानसिंह के पुत्र वंशीधर से सम्पन्न हुए। फुलवा ने भेद बताया "हे राजा! जिस प्रकार वंशीधर मेरे पूर्व जन्म का पुत्र है, उसी प्रकार तुम भी रानी श्यामदेई के पूर्व जन्म के पुत्र हो, इसी कारण पलंग की पाटी टूट गई।"

इसके पश्चात मृगया का प्रसंग है। इस वाचना में अंत में रानी श्यामदेई राजा भरथरी को स्तन का दूध पिलाकर पुत्र मानती है। गोपीचन्द व मयनामती भी इस वाचना में समझाने को आते हैं।

4.(12) डॉ. रामकुमार वर्मा ने 'हिन्दी-साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' के पृष्ठ 171 पर इस कथानक को लिखा है। यह कथानक संत रामप्रसादजी द्वारा प्रस्तुत रानी पिंगला और भरथरी से सम्बद्ध कथा से साम्य रखता है। केवल अंतर वहाँ है, जहाँ रामप्रसादजी हंसनी के पतिव्रत धर्म पालन

की प्रशंसा भरथरी से पिंगला के सामने करवाते हैं जबकि डॉ. वर्मा हंसनी के स्थान पर शिकारी की पत्नी के पतिव्रत धर्म पालन की प्रशंसा करवाते हैं। शेष कथानक समान है। इसमें अमरफल का प्रसंग नहीं है।

4.(13) साहित्य-अकादमी, नई दिल्ली ने 'राजस्थानी-लाकगाथाओं' (लेखक श्रीरामनिवास शर्मा) का प्रकाशन सन् 1992 में किया है जिसमें राजस्थान की कई लोकगाथाओं का सार टकसाली राजस्थानी-भाषा में प्रस्तुत किया गया है। राजस्थान में भरथरी-गाथा का मौखिक रूप में किस स्वरूप में प्रचलन है, इसका ज्ञान इस गद्य से होता है। भरथरी सम्बन्धी गाथा का सार इस प्रकार है।

उज्जैन का राजा गंधर्वसेन पुत्रहीन था। गोरखनाथ एक बार उज्जैन आये। राजा ने महलों में भोजनार्थ मय चौदह सौ चेलों को आमंत्रित किया। रानी ने भोजन परोसकर व खिलाकर योगियों को संतुष्ट किया। गोरखनाथ ने इन्द्रलोक जाकर देखा कि राजा के भाग्य में पुत्र है अथवा नहीं। पुत्र का लेख न मिलने पर गोरखनाथ लौट आये और भरतनाथ चेले को फूल लेने भेजा। भरतनाथ जब फूल तोड़ रहा था तब इन्द्रलोक की परी से उसकी आँखें चार हो गई और चार दिन तक उसके साथ भोग भोगता रहा।

गोरखनाथ को सब कुछ ज्ञात हो गया। उन्होंने भरतनाथ को परी के साथ भोग भोगने को कहा। उधर स्वर्ग में परी के पहुँचने पर इन्द्र ने परी से कहा, जाओ और नरक लोक में भोग भोगो।

गुरु गोरखनाथ के प्रताप से गंधर्वसेन को दो पुत्र प्राप्त हुए भरथरी व विक्रमादित्य। भरतनाथ ही भरथरी तथा पिंगला ही इन्द्रलोक की परी थी। समय पाकर गंधर्वसेन ने वानप्रस्थाश्रम का वरण कर पुत्र भर्तृहरि को राज दे दिया।

दक्षिण का एक अश्वपाल उज्जैन में आया। गोरखनाथ ने उसकी मति को भ्रमित करने के लिए उसको एक मंत्रकृत हार दिया। दासी के द्वारा अश्वपाल ने वह हार रानी तक पहुँचाया। रानी अश्वपाल में अनुरक्त हो गई। चोरी-चोरी अश्वपाल के साथ भोग भोगने लगी।

विक्रम को इसका पता लग गया। वह इस मामले को सुलझाता इसके पूर्व ही पिंगला ने भरथरी से कहकर विक्रम को मरवाने का हुक्म जारी किया। जल्लाद ने विक्रम को न मारकर जंगल में छोड़ दिया।

इसके पश्चात् अमरफल की कथा आती है जो संत रामप्रसादजी ने लिखी है व शतकत्रय रचयिता भर्तृहरि के संबंध में अति प्रसिद्ध है। पिंगला जो इन्द्रलोक की परी का मानुषी रूप थी। बेवफाई से भरतनाथ रूपी भरथरी को यथार्थ ज्ञान हो गया और वह गोरखनाथ का शिष्य हो गया। भरथरी ने अपनी पत्नी पिंगला से ही भिक्षा नहीं मांगी, सारे शहर से, मंत्रियों से भिक्षा मांगी। विक्रम को उज्जैन का राजा बनाकर योगसाधना कर अमर हो गये।

दूसरा कथानक मृग-मृगी से सम्बंधित है। इसमें भरथरी की दो पत्नियाँ हैं श्यामदेई व पिंगला। मृग को मार व जिलवाकर महलों की ओर जाते समय भरथरी किसी मुरदे के साथ उसकी पत्नी को सती होते देखता है। पिंगला से सतीत्व की महिमा कहता है। पिंगला कहती है, 'पति के मरने पर मुर्दे के साथ सती होना सच्चा पतिव्रत धर्म नहीं, पति की मौत सुनते ही पत्नी मर जाए, वह सच्चा पतिव्रत है।' राजा पुनः शिकार को गया। रक्त रंजित कपड़े भेजे। सुनते ही पिंगला मर गई । राजा का विलाप, गोरखनाथ का आगमन, खप्पर को गिराकर व तोड़कर भरथरी को सत्यासत्य का निर्णय कराना आदि वर्णित है। गोरखनाथ द्वारा 25 पिंगलाओं को जीवित करना व उनमें से एक के भी द्वारा भरथरी को पहचानने से इंकार करना भरथरी के वैराग्य का कारण बना और भरथरी योगी बनकर राजपाट छोड़कर गुरु गोरखनाथजी के पास चला गया।

4.(15) जायसी ने पद्मावत में भरथरी का उल्लेख चार बार किया है। इन उल्लेखों से कुछ सूत्र ऐसे

मिलते हैं जो पूर्ववर्ती लोकगाथाओं में भी मिलते हैं। इसका तात्पर्य है कि पूर्वोक्त लोकगाथाओं में उल्लिखित कुछ सूत्र कम से कम पाँच सौ वर्ष पुराने भारतीय विश्वासों के अनुसार तो हैं हीं। डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल के पद्मावत के संस्करणानुसार ऐसे छंदांक व अनुवाद हैं।

4.(15) 1. *राजा भरथरी मुनि रे अयानी। जेहि के घर सोरह सै रानी।।*

कुचन्ह लिहें तरवा सहराईं। भा जोगी कोइ साथ न लाईं।।132/4.5।।

'हे अबूझ ! सुन, राजा भर्तृहरि भी जिसके घर में सोलह सौ रानियाँ अपने कुचों से उसके तलवे सहलाती थीं, जोगी हो गया और उसने किसी को साथ न लिया।।'

4.(15) 2. *गोपिचंद तूँ जीता जोगाँ। उनै भरथरी न पूज बियोगाँ।।160/2।।*

'तुमने अपने योग से गोपीचंद को जीत लिया। भर्तृहरि भी तुम्हारे वैराग्य की बराबरी नहीं कर सकते।।'

4.(15) 3. *जानहुँ आहि गोपिचँद जोगी। कै सो भरथरि आहि वियोगी।।*

वै पिंगला गए कजरी आरन। यह सिंघल दहुँ सो केहि कारन।।

'जान पड़ता है, जैसे यह गोपीचंद है, या वियोगी भर्तृहरि है। वे राजा भर्तृहरि पिङ्गला रानी के कारण कजली वन में गए थे। जो सिंहल में आया है सो न जाने किसके कारण।'(183/6-7)।

4.(15) 4. *जस भर्तृहरि लागि पिंगला। मो कहँ पदुमावति सिंघला।।*

'जैसे भर्तृहरि के लिये पिंगला बिरह का कारण थी, वैसे ही मेरे लिए सिंहल की पद्मावती है।'(2083)।

4.(15) 5. *भरथ बिछोहा पिंगला, आहि करत जिय दीन्ह।*

हौं बिसारि जौं जियत हौं, यहै दोस बहु कीन्ह।।595/8-9।।

'भरथरी के वियोग में पिंगला रानी ने आह करते हुए प्राण त्याग दिया। मैं प्रियतम को भूली हुई जो अभी तक जीवित हूँ, यही मेरा भारी अपराध है।।'

284, सुलतान सदन, सैकेण्ड लेन नं. 3,
वेस्टएंड मार्ग, सैदुलाजब, मेहरोली
नई दिल्ली-110030
मो.-9351503555

(चिड़ावा-राजस्थान के प्रसिद्ध 'ख्याल' लोकनाट्यकार नानूरामजी राणा के उत्तराधिकारी दूलजी से 'गोपीचन्द की लावणी' सुनी थी- "यूँ राणी कहती नरेस नै किस कारण जोग लिया है।" इसमें स्थाई के बाद चलत, चौक, सोरठा आदि छंद हैं, आभोग में रचनाकार पीथाराम का नाम है। इसमें एक अलग प्रसंग है - जोग लेने के बाद गोपीचन्द बहन चन्द्रावली के नगर जाता है और उसके महल के आगे अलख जगाता है, भिक्षा देने चन्द्रावली बाहर आकर गोपीचन्द को देखते ही स्तब्ध हो जाती है और प्राण त्याग देती है। गोपीचन्द व्याकुल होकर गोरखनाथजी को पुकारता है। गोरखनाथजी ने आकर चन्द्रावली को जीवित किया। इस रचना में गोपीचन्द की रानी और बहन के मार्मिक संवाद हैं जो श्रोता को रुला देते हैं। सिंहलजी के लेख में गोपीचन्द-भरथरी गाथा की राजस्थान, बंगाल, बिहार, उ.प्र., छ.ग., म.प्र. में लोकप्रियता एवं 'पद्मावत' के आधार पर इसकी 500 वर्षीय प्राचीनता का पता चलता है, किन्तु इसे 11-12वीं शताब्दी माना जा सकता है जो कि गुरु गोरखनाथ और नाथ सम्प्रदाय के व्यापक प्रभाव का समय है। गोपीचन्द भरथरी-विक्रमादित्य का ऐतिहासिक पक्ष अंधकार में ही है। उज्जैन में भर्तृहरि की गुफा है जो निश्चित ही 12वीं शताब्दी की परमारकालीन है। - संपादक)

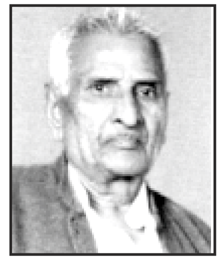

हरियाणवी लोक साहित्य और उसमें मीराबाई

रामशरण युयुत्सु

सरस्वती (घग्गर) और दृषद्वती (चिटांग) की नदियों की उपत्यका का प्रदेश हरियाणा संतों-भक्तों की साधना स्थली है। संत-साहित्य की दृष्टि से भी हरियाणा की धरती बड़ी ही उर्वरा और समृद्ध रही है। यहाँ की भाषा-बोली 'हरियाणवी' को अनेक नामों से अभिहित किया गया है, जिनमें बांगरू, खड़ी बोली, हरियाणवी, जाटू, कौरवी और दक्षिणी हिन्दी प्रमुख हैं। हरियाणवी की पाचन शक्ति भी प्रशंसनीय है। इसने संस्कृत, उर्दू, फारसी, पंजाबी, राजस्थानी, अंग्रेजी आदि अनेक भाषाओं के शब्दों को पचाकर अपनी काया को पुष्ट किया है।[1]

किसी भी प्रदेश के लोकनाट्य उसके तथा आसपास के क्षेत्रों की संस्कृति के मुँह बोलते चित्र कहे जा सकते हैं। इसमें उस भू-भाग के मौलिक आदर्श एवं जीवन मूल्यों को अभिनय द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। लोक-नाट्य लोकसाहित्य की एक सशक्त विधा है। 'सांग' हरियाणा की नाट्य-परम्परा का सिरमौर है, जिसे यहाँ का 'कौमी-ड्रामा' (सामाजिक नाटक) भी कहा जाता है। लोक साहित्य के सम्यक अध्ययन किये बिना हम किसी देश की सभ्यता एवं संस्कृति, धर्म व रीति, रिवाज, कला और साहित्य, सामाजिक अभ्युदय एवं आकांक्षाओं का सूक्ष्म अवलोकन नहीं कर सकते हैं। हरियाणा लोक साहित्य का अध्ययन एवं अवलोकन करते समय चाहे मैथिली लोक साहित्य जैसा मार्दव, भोजपुरी लोकसाहित्य जैसा गाम्भीर्य, अवधी लोकसाहित्य जैसा अर्थ-गौरव, ब्रजलोक साहित्य जैसी सरसता व अर्थ बहुलता, गुजराती लोकसाहित्य जैसी भव्यता और राजस्थानी लोकसाहित्य जैसा लोच नहीं मिले, परन्तु इन गुणों के आंशिक आकलन में उसे निराश होना नहीं पड़ेगा। हरियाणवी लोक साहित्य में वीर-प्रसवा-भूमि की शौर्यपूर्ण जनता की जो ओजस्विनी भावना के दर्शन होंगे, रुक्ष होते हुए भी रुचिकर एवं आकर्षक है।[2]

हरियाणा की जनरंजनकारी सांग विधा वस्तुतः गीत-संगीत एवं नृत्य की एक मनमोहक त्रिवेणी है। जिसमें सर्वाधिक मजेदार है-- इसके गीतों की गमक। गीत (रागनी) हरियाणवी सांगों के प्राण होते हैं, सांग में यह रागनी का जादू ही है, जो सिर बढ़कर बोलता है। सांगों में लोकप्रिय कथानकों के आधार पर गीतों के माध्यम से अभिनय द्वारा प्रस्तुति दी जाती है। हरियाणा की लोकगाथाओं की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि ये हमारे सामने जातीय संस्कृति का अनूठा एलबम खोलकर रख देती है। इनमें घटनाओं का सहज एवं गतिशील चित्रण होता

है। इसके साथ ही यथार्थ जीवन भी रूपायित हो उठता है, इतिहास सजीव हो उठता है। इस क्रममें 'सांग मीराबाई' उल्लेखनीय है।

हरियाणा के सूर्यकवि पण्डित लखमीचन्द की रचनाओं में 'सांग मीराबाई' एक बहुत ही उत्कृष्ट रचना है। वर्तमान सांग, भगत या नौटंकी का पूर्वरूप या पर्याय है। यह 'स्वांग' का तद्भव रूप है। स्वांग का अर्थ होता है भेष भरना, रूप भरना या नकल करना। हरियाणा प्रदेश में 'सांग भरना' एक लोकोक्ति भी प्रचलित है, जिसका अर्थ होता है रूप भरना या रूप बनाना। सांग का मुख्य तत्व है रागनी, संगीत और अभिनय। इससे आकृष्ट होकर लोग संगीत में रुचि लेते हैं। पं. लखमीचन्द द्वारा मीराबाई संगीत की रचना उनके दूसरे दौर में की गई प्रतीत होती है। पहले दौर में उनकी दस रचनाओं में मीराबाई की कहीं खोज खबर नहीं मिलती। उनके पहले दौर का संगीत शृंगारिक धारा से ज्यादा प्रभावित रहा है। दूसरे दौर के पं. लखमीचन्द भक्ति रस की रचनाओं में प्रवृत्त हैं। अतः इन्होंने मीराबाई को अपने संगीत का विषय बनाया, जिसमें शृंगार रस ने भी इस संगीत को प्रभावित किये रखा है। पं. लखमीचन्द कृष्ण उपासक रहे। इसीलिए उन्होंने मीरा पर एक पूरे सांग की रचना कर मंचित किया। वे भजन, रागनी, गीतों के माध्यम से ऐतिहासिक सांगों से चलकर मीरा की भक्ति रचनाओं तक पहुंच गये थे। इसी से प्रभावित होकर मीरा के पद अब सामान्य जन के हृदय में भजन, रागनी बनकर अंकुरित हो रहे हैं। अब मीरा की उपासना पद्धित के विभिन्न स्वरूप लोक मानस में समा गए हैं।

पं. लखमीचन्द द्वारा रचित सांग 'मीराबाई' में मां के परिहास स्वरूप कहने पर बालिका मीराबाई का भगवान कृष्ण की मूर्ति को ही अपना पति मानना, मीरा की भक्ति से प्रसन्न होकर भगवान कृष्ण द्वारा दूध का प्याला पीया जाना, विषैले सर्प का गलमाल बनकर झूलना, खूनी हाथी का मीरा को नमस्कार करके लौट जाना तथा हलाहल का अमृत बन जाना आदि कथानक रूढ़ियाँ लोक जीवन में भक्ति भाव को पुष्ट करने के लिए अचूक औषधि सिद्ध हुई है।[3]

भारतीय संस्कृति व समाज में भारतीय नारी पति का वरण केवल एक बार ही करती है। मीरा भी अपनी मां की प्रेरणा से कृष्ण का वरण पति के रूप में कर चुकी थी। परन्तु सामाजिक व्यवस्था प्रथा के अनुसार उसका विवाह चित्तौड़गढ़ के राणा सांगा के ज्येष्ठ पुत्र भोजराज के साथ करना निश्चित किया गया। सांसारिक आकर्षणों से विमुख मीरा जीवन की विघ्न-बाधाओं को ठनकती हुई, भक्ति के सरोवर में डुबकियाँ लगाती है। मीरा की मां उसके सामने विवाह का प्रस्ताव रखती है, तो मीरा शान्त भाव से किस प्रकार अस्वीकार करती हैः--

ब्याह शादी की नहीं जरूरत परम शान्ति मन मैं।
तेरी बेटी की ज्ञान-ध्यान से लौ लाग री हरिभजन मैं।।
कर्म किया हुआ इस दुनिया मैं हरगिज नही टलैगा।
पाप-पुण्य किया इस माणस का हरदम साथ चलेगा।।
बिना सत्संग उपदेश धर्म बिन गल मैं झाड़ घलैगा।
ज्ञान-रूप की अग्नि बिन नहीं कर्म का ढेर जलेगा।।
भजन करे तैं राम मिलैगा, घरां रहो चाहे बण मैं।।[4]

कृष्ण भक्ति में लीन मीरा अपनी साधना को उस शिखर पर ले जाती है, जहाँ बीर-मर्द (लड़की-लड़की) का अन्तर मिट जाता है। मिड़त भूप (मेड़ता नरेश) अपनी बेटी की सच्ची कृष्ण भक्ति देखकर कहने लगेः-

एक ठिकाणे मनचित्त करके बेटी का विश्वास देख्या
मंदिर में नहीं दीवा बाती ईश्वर का प्रकाश देख्या।
कित तै आया, कितै गया ना, इतना आनन्द कदे सहा ना।
बीर-मर्द में फर्क रहया ना, करकै खूब तलाश देखा।।[5]

सांग 'मीराबाई' में ब्राह्मण महाराणा को मीरा के विषय में बताता है, जिससे मीरा का परिचय स्वतः ही उजागर हो जाता हैः-

बीरां कैसा चाल चलण था, याहे बात खोटी देखी।
हाथ के म्हां माला, साधु बाणे के म्हां लोटी देखी।।
मुख म्हें रटन लगी हरि-हर की, जमीं पे कुशा जगह बिस्तर की

तोल म्हें कुल पन्दरा सेर की, दोनों आंख्यें मोटी देखी।
पिण्डी पै पड़ै थी झोल, सवा गज की चोटी देखी।।
गुण भगती की बात चल री थी, सब की आवाज मिल री देखी।
इकतारे म्हें घलरी थी जो हरे बांस की सोटी देखी।।
भूरे-भूरे हाथां की ऊँगली ढाई ईंच तैं छोटी देखी।।[6]

मीरा का बाप रतनसिंह एक छोटी सी जागीर का शासक था। चित्तौड़ का शासक (महाराणा) शक्तिशाली था; मीरा का विवाह करना पड़ा। परन्तु मीरा इस विवाह से खुश नहीं थी, उसने कभी भी इस विवाह को स्वीकृति नहीं दी। इस व्यवस्था को हरियाणा के एक लोकगीत में पीड़ा के रूप में यों दर्शाया गया हैः-

मात पिता नैं धरन डिगा दिया महाराणा तैं डर कै।
पति का परेम भुलावण लाग्य क्यों धिंणताणा कर कै।
अपनी मां संग थी मीरा पूजा बीच निगाह थी।
एक वर पूजण गया मंदिर में, बारात सजी संग थी।
मैं बोली कौण कित जा सै समझ लावण आली मां थी।
न्यूँ बोली बनड़ा बनड़ी ल्यावै जिस नैं पति की चाह थी।
मैं बोली मेरा पति कौण झट हाथ लगाया गिरधर कै।
नाम सुण जब गिरधर जी का आनन्द हो गई काया।
बीरबानी नै पति बिना आघी लागै ना धन माया।
उसका परेम ठीक होज्या सै जिसनै ज्यादा परेम बढ़ाया।
खुद माता कै कहणे सै मनैं गिरधर पति बणाया।
करूँ परीति सच्चे दिल तैं परेम बीच में भर कै।[7]

पं. लखमीचन्द के कथानक के अनुसार मीरा अपने पति भोजराज को भाई कहकर सम्बोधन करती है, क्योंकि वह अपना पति तो भगवान कृष्ण को ही मानती रही है। भोजराज डोला लेकर जब ससुराल मेड़ता से चल देता है, तो रास्ते में मीरा के रूप को देखने के लिए लालायित होकर डोली का पर्दा उठाकर मीरा को देखता है, तो मीरा उसे क्या कहती हैः-

म्हारे घर तैं ले आया मेरा लहणा भाई रे।
पर्दा ठा कै देखै के कुछ कहणा भाई रे।।
बैठी मैं ईश्वर के धन्धे में, दिल ना फंसै काम गन्दे में।
चिड़ीमार कै फन्दे में ना फहणा भाई रे।

मीरा राजसी सुख-सुविधा का परित्याग कर, साधु-संन्यासियों के साथ कृष्ण की भक्ति में तल्लीन हो गई। मीरा का तत्कालीन दमघोंटू परिस्थितियों का अदम्य साहस नारी चेतना को जागृत करने के प्रयासों का अपने में समाहित किये हुए है। मीरा सामंती युग की वैभव पालिता नारी थी। उस युग में नारी का स्वातंत्र्य बाधित था। पुरुष प्रधान समाज के लिए मीरा स्वयं एक प्रतिकार थी। समाज की कर्णधार मीरा ने ऐसा धार्मिक वातावरण तैयार किया, जिसने आगे चलकर बिखरे हिन्दू समाज को सामाजिक और सांस्कृतिक शक्ति प्राप्त हुई। जनपथ पर चल कर उसने जनतांत्रिक और लोक मानसिकता की नाड़ी को वर्षों पूर्व ही पहचान लिया था। पर्दाप्रथा जैसी कितनी ही कुरीतियों को तोड़ कर उसने सत्य संगति का मार्ग प्रशस्त किया था। मीरा जैसे आकाशदीपीय व्यक्तित्व से प्रेरणा लेने की आज जितनी आवश्यकता है, उतनी सम्भवतः पहले कभी नहीं रही।[9]

हरियाणा के लोकगीतों में मीरा का कृष्ण के प्रति दासीत्व भाव झलकता दिखाई देता है। वह कृष्ण को अपना प्रियतम और स्वयं को उनकी दासी (पत्नी) मानती है। हरियाणा के लोक मानस में मीरा रच-बस गई है। यहाँ की विवाहित स्त्रियाँ भी अपने आराध्य सांवलियाँ (कृष्ण) को पति के रूप में देखते हुए कहती है :-

सांवलिया मो पो रे रंगीली नथवारी।
अपने पति कूँ बाग लगाऊँ, बीच में छेंकूँ क्यारी।
आवेंगे नन्दुला के भैया टोरेंगे फूल हजारी।
अपने पति कूँ महल चिनायो सूरत निरत और झांकी।
अगल-बगल या के छज्जे छेंकूँ ऊपर प्रेम अटारी।[10]

जब भी मीरा की परीक्षा हुई उसने अपने श्याम को बाध्य किया कि उसकी भक्ति अपना रंग दिखाए। इस तथ्य का प्रतिपादन एक गीत की पंक्तियों में इस प्रकार हुआ हैः-

भगती मेरी रंग ला कै रहेगी।
स्याम तन्ने मुरली बजाणी पड़ैगी।।
रो-रो कै मीरा नैं तुमको पुकारया।
जहरों के प्याले, परभू अमरत बणाये।।
कह रहयी सै मीरा यो दावे तैं मोहन।
तनैं मेरी लाज बचाणी पड़ैगी।।[11]

इस गीत में 'मोहन की मुरली बजना' प्रभु-प्रसन्नता का प्रतीक है। मीरा का कथन है कि उसकी निष्काम भक्ति से प्रसन्न होकर प्रभु को चमत्कार तो दिखाना ही पड़ेगा, उसकी अडिग आस्था का प्रमाण है, जो यह सिद्ध करता है कि 'भगवान भक्त के वश में होते आए हैं।'

पशु-पक्षियों की रक्षा करना, संरक्षण देना, मीरा के स्वभाव-संस्कार में रचा-बसा था। मीरा मंदिर से बाहर निकलते ही देखती है कि तालाब के किनारे कुछ शिकारी पानी पीते हुए हिरनों को अपने बाणों का निशाना बनाने के लिए तैयार बैठे हैं। हिरणों की डार के बचाव के लिए मीरा शिकारियों को चेतावनी देते हुए कहती हैः-

कौण मिरग मारण नैं त्यार
आड़े हुकम नहीं सै तेरे बाप का।
तम चिल्लै पै तीर चढ़ाओ मत
इसी कड़वी नजर लखाओ मत।
सताओ मत जल पीवती रे डार
कौण दण्ड भरेगा इस पाप का।
या ईश्वर नै चीज रूखाली
बड़ी दया-दृष्टि करकै पाली।
जीव की रक्षा करो रे चित्त में धार
कष्ट मिटेगा तीनूं ताप का।[12]

मीरा को हम मध्य काल की सबसे क्रांतिकारी महिला की श्रेणी दे सकते हैं। उस युग में ऐसा कदम उठाना सामंतवादी परिप्रेक्ष्य में असम्भव जान पड़ता है, परन्तु मीरा ने असम्भव को सम्भव कर दिखाया है। इसीलिए वह आज भी हरियाणा के लोक साहित्य की आत्मा बन कर अमर हो गई है।

सन्दर्भ

1. रामशरण युयुत्सु, हरियाणवी भाषा में महाराणा प्रताप, इतिहास दिवाकर, ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान नेरी, हमीरपुर, अप्रैल 2010, पृष्ठ-18। **2.** डॉ. शंकर लाल यादव, हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, 2000, पृष्ठ-63। **3.** डॉ. पूर्णचन्द शर्मा, पं. लखमीचन्द ग्रन्थावली, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, 2006, पृष्ठ- 63-64। **4.** डॉ. पूर्णचन्द शर्मा, पं. लखमीचन्द ग्रन्थावली, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, 2006, पृष्ठ 26-27 तथा लक्ष्मीनारायण शर्मा 'वत्स', पं. लखमीचन्द सांगी का रत्नकोष, 2003, पृष्ठ-230 भजन-29। **5.** डॉ पूर्णचन्द शर्मा, पं. लखमीचन्द ग्रन्थावली, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, 2006, पृष्ठ 696, भजन-14, लक्ष्मी नारायण शर्मा 'वत्स', पं. लखमीचन्द सांगी का रत्नकोष, 2003, पृष्ठ-226, भजन-14। **6.** डॉ पूर्णचन्द शर्मा, पं. लखमीचन्द ग्रन्थावली, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, 2006, पृष्ठ-65 तथा लक्ष्मीनारायण शर्मा 'वत्स', पं. लखमीचन्द सांगी का रत्नकोष, 2003, पृष्ठ-229, भजन-25। **7.** हरियाणा के लोक गीत, सम्पादक डॉ. साधुराम शारदा, भाषा विभाग हरियाणा, चण्डीगढ़, 1970, प्रथम संस्करण। **8.** डॉ. पूर्णचन्द शर्मा, पं. लखमीचन्द ग्रन्थावली, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, 2006, पृष्ठ-107, रागनी 35 तथा लक्ष्मीनारायण शर्मा 'वत्स', पं. लखमीचन्द सांगी का रत्नकोष, 2003, पृष्ठ 232, रागनी-35। **9.** मीरा का व्यक्तित्व और कृतित्व, सम्पादक, स्वामी (डॉ.) ओम आनन्द सरस्वती, प्रो. सत्यनारायण समदानी, मीरा स्मृति संस्थान, चित्तौड़गढ़, 1998, भूमिका पृष्ठ-12। **10.** डॉ. (श्रीमती) सावित्री वशिष्ठ, ब्रज और हरियाणा का लोक साहित्य, हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्ड़ीगढ़, 1987, पृष्ठ-272। **11.** डॉ. रेखा शर्मा, हरियाणा के लोक गीतों में भक्ति भावना, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, 2005, पृष्ठ 217। **12.** डॉ. पूर्णचन्द शर्मा, पं लखमीचन्द ग्रन्थावली, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, 2006, पृष्ठ-57।

श्री अंगिरा शोध संस्थान
390/5, शान्ति नगर, पटियाला चौक
जीन्द (हरियाणा)-126102
मो.- 9416387432

रागों के नाम पर आबाद गाँव

जीन्द अंचल हरियाणा के मध्य में स्थित है। यह बांगर क्षेत्र का भू-भाग गिना जाता है। जीन्द जनपद की प्राचीनता के विषय में अनेक दन्तकथाएं प्रचलित हैं; जिनसे यह प्रतीत होता है कि यह भू-खण्ड महाभारत काल से पूर्व से ही अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा है। मनुष्य सृष्टि का आदि क्षेत्र जीन्द सांस्कृतिक व ऐतिहासिक महत्व के पुरातात्विक रूप से एक अद्वितीय स्थान है। वनज (वन्य) अवतार के रूप में भगवान ने वराह का अवतार लेकर पृथ्वी का उद्धार किया था। देवताओं और असुरों द्वारा समुद्र मंथन से प्राप्त अमृतघट का अमृत वितरण यहाँ के वराह वन (बड़ाबीड) के मध्य ब्रह्मोत्तर वेदी में आश्रय लेकर किया। परशुराम भगवान का कर्मस्थली रामहृद (गांव रामराय) में तथा भगवान श्रीकृष्ण की कर्मस्थली कुरुक्षेत्र की 48 कोस की परिधि वाली भूमि रही है। शृंगी ऋषि, कपिल मुनि, मुनि वशिष्ठ के साथ जुड़ा हुआ संबंध इस क्षेत्र से रहा है।[1] जीन्द जनपद का आर्य संस्कृति के विकास में भी महत्वपूर्ण स्थान रहा है। यहाँ ध्वस्त हो गए नगरों का विकास शीघ्र आरंभ हो गया। आर्यनगर शीघ्र स्थापित हो गए। जीन्द नगर के उत्तर में स्थित प्राचीन 'टीला' (दड़ा) में प्राचीन काल का अवशेष छिपा पड़ा है।

भौगोलिक दृष्टि से रियासत जीन्द पटियाला (पंजाब), जयपुर (राज.) तथा दिल्ली रियासतों से घिरा हुआ रहा है। ये पड़ोसी रियासतें पटियाला, जयपुर और दिल्ली संगीत के घराने रहे हैं। यहां से उठी संगीत लहरियां जीन्द रियासत को भी प्रभावित करती रही। इसी प्रभाव से रियासत जीन्द भी संगीत और गायन से अंकुरित और फिर भरपूर हो गया। वस्तुतः इसी प्रभाव व आधार पर जीन्द रियासत के क्षेत्र के (अंतर्गत आनेवाले) गाँवों का नामकरण रागों के नाम पर हुआ है। स्त्री-पुरुषों की मिलकर गाने की प्रथा यहाँ पूर्वकाल से चली आ रही है, जो आज भी प्रचलित है। इसीलिए दोनों वर्गों के लिए अलग-अलग गीत उपलब्ध हैं। इन गीतों में से कुछ शास्त्रीय हैं, जो बहुत प्राचीन होने पर भी बिल्कुल नवीन लगते हैं। उदाहरण के रूप में 'तीज' के गीत हरयाणवी लोकगीतों में आते हैं।

18वीं, 19वीं और 20वीं शताब्दी में जीन्द क्षेत्र में कला, संगीत और साहित्य को अच्छा प्रोत्साहन मिला। यहाँ पर संस्कृत, हिन्दी और गुरुमुखी के उच्च कोटि के विद्वान हुए।

उदाहरणार्थ पंडित विजय सिंह, भाई सन्तोख सिंह, भाई साहिब सिंह 'मृगेन्द्र', पिंगल राग नरेश, बिशन सिंह ज्ञानी आदि।[2] इन्होंने बहुत कुछ गाया और लिखा। दादरी मध्यकाल में मुस्लिम और हिन्दू विद्वानों का केन्द्र रही।[3] जो गायन व वादन दोनों ही तरह के संगीत में प्रवीण थी।

19वीं शताब्दी में कवि शम्भूदास एवं साहिब सिंह 'मृगेन्द्र' जैसे प्रतिभा संपन्न कवियों ने अपनी रचनाओं द्वारा हिन्दी साहित्य के भण्डार को समृद्ध किया। यहाँ अरबी, फारसी के भी कई विद्वान हुए हैं। इसके अतिरिक्त कवि मनमोहन हुए, जो मिस्र कुल के थे। वे वास्तव में सितार बजाने में प्रवीण थे। उनके पिता भी ब्रजभाषा के कवि थे। कवि मनमोहन राजा रणवीर सिंह को सितार सिखाया करते थे और स्वयं सितार के प्रति प्रतिष्ठा प्राप्त वाद्य-कलाकार थे।[4]

रियासत जीन्द के शासकों की साहित्य के साथ-साथ संगीत के प्रति भी उदारता रही है। पुराने रागों के नाम पर रियासत में कई गांव बसाए गए थे। जीन्द नरेश रणवीर सिंह साहित्य तथा कला प्रेमी थे। यही कारण है कि उनके समय में भिन्न-भिन्न कलाओं जैसे संगीतकला, नृत्यकला, चित्रकला, हस्तलिपि कला आदि का विकास हुआ। उस समय उच्च कोटि के संगीतकार विद्यमान थे जिन्हें राग-रागनियों का पूरा ज्ञान था। मम्मद जान तबला बजाने में भारत के चोटी के साजिन्दा (वाद्य कलाकार) थे। कवि शम्भूदास ने स्वयं अपनी कविताओं के लिए भिन्न-भिन्न राग-रागनियों का प्रयोग किया। वे उच्च कोटि के ख्याल बंधईया थे। इनके गीत निजाम हैदराबाद तक के दरबार में गूंजते थे।[5]

मेरा जन्म सर्पदमन (सफीदों) के निकटवर्ती गांव रोझला (रोजला) जिला जीन्द (हरियाणा) के ठेठ ग्रामीण अंचल में हुआ। मैंने एक हाथ को कान पर रखकर, दूसरे हाथ से चुटकियों की लय पर हाली-पालीयों (किसान-ग्वालों) को गाते हुए, खड़ताल (करताल) की खटखटाहट में पिताश्री धनराम कौण्डिन्यजी को आल्हा-वाचन (गायन) करते हुए तथा राग-रागनियों की तर्ज पर लोकल-ड्रामा (सांग) का मंचन करते हुए अपनी आयु की आरंभिक अवस्था में मैंने सुना-देखा है। उनकी स्वर लहरियाँ आज भी मेरे कानों तथा स्मृतियों में गूँजती रहती हैं। किसी न किसी अवस्था और स्थिति में इस क्षेत्र ने संगीत को अपने में संजोए रखा है।

हम इतिहास के पायदान पर भारतीय शास्त्रीय संगीत के रागों के दर्पण में झाँकें तो केवल एक सुखद अनुभूति होती है अपितु आश्चर्य भी होता है। जीन्द रियासत में अनेक गांव ऐसे हैं, जिनके नाम राग, लय-ताल और वाद्य यंत्रों पर आधारित हैं। जीन्द की सांस्कृतिक परंपराएं बहुत पुरानी हैं; परंतु इनका अभी तक क्रमवार अध्ययन नहीं हुआ है। प्रसन्नता है कि वर्तमान में इस ओर प्रयास जारी है। प्रसिद्ध भारतीय समाज-विज्ञानवेता श्री हुकम सिंह ने अथक खोज करके 'हरियाणा का लोक संगीत' में लिखा है कि प्राचीन महेन्द्रगढ़ जिला तथा उसके आसपास के क्षेत्रों के कई गांवों के नाम भारत के प्राचीन रागों के नाम पर हैं; जैसे असावरी, घनसरी, बिलावल, मल्कोश, भैरवी, कामोद, कल्याण, वृन्दव, सारंगपुर आदि।[6] ऐसा प्रतीत होता है कि रियासत जीन्द के कई गांवों के निवासी यहां के राजा-महाराजाओं के आमोद-प्रमोद, मनोरंजन हेतु इनके दरबार में रहे थे। रियासत के शासकों ने अपनी संगीत प्रियता के कारण ये गांव बसाए (आबाद किए)। यह भी संभावना है कि इन गांवों की भूमि संगीत प्रेमी राजाओं द्वारा अपने दरबारी संगीतज्ञों को उपहारस्वरूप दी गई हो और इस भूमि पर संगीतज्ञों ने अपने स्थायी आवास बना लिए? आगे चलकर इस भूमि ने एक गांव का रूप धारण कर लिया हो। इससे यह भी उजागर होता है कि जीन्द स्टेट के लोगों की संगीत में विशेष रुचि थी। इससे यहाँ शास्त्रीय संगीत की समृद्धि और उसकी उपलब्धि का परोक्ष में आभास होता है।

हिन्दी साहित्य के रीति युग और आधुनिक युग के संक्रमणकाल में रियासत जीन्द में साहित्य और संगीत ने नई करवट ली। उस समय का समाज शिक्षित, सभ्य तथा कला प्रेमी था। हिन्दुओं में संस्कृत व हिन्दी भाषा के कई विद्वान थे। ज्योतिष, आयुर्वेद और सनातन धर्म के प्रकाण्ड विद्वान तथा संगीतज्ञ यहाँ उस समय शोभामान रहे। पंडितों को घरों में संस्कृत और हिन्दी में धर्म, ज्योतिष, आयुर्वेद और संगीत संबंधित विषयों के हस्तलिखित पुस्तकों के संग्रहालय थे। संगीतज्ञों के घरों में वाद्य यंत्र रुचि अनुसार प्रचुर मात्रा में उपलब्ध रहते थे। मुस्लिम बस्ती व मोहल्ला में शाम को महफिलें सजती थीं। गाने-बजाने की स्वर लहरियां तथा नृत्य में घूंघरू बजते रहते थे। जीन्द शहर में बक्सी थानेदार के नौहरे (बैठक) की शाम की बैठक आकर्षक व प्रसिद्ध थी।

जीन्द स्टेट के महाराज रणवीर सिंह (1899-1948) के दरबारी कवि शम्भूदास ने सूर और तुलसी की भांति अपने काव्यात्मक गीतों में संगीत तत्व का समावेश किया। इससे महाराज रणवीर सिंह तो प्रभावित हुए ही साथ ही प्रजा में भी संगीत के प्रति रुचि में भी प्रोत्साहन हुआ। कवि शम्भूदास के समय में उन्नीसवीं शताब्दी में भी कई कृष्ण भक्त कवि व संगीतज्ञ हुए हैं। कवि शम्भूदास के भाई गणेशीलाल भी उच्च कोटि के 'ख्याल' कहने वालों में से एक थे जिनके विषय में हीरालाल ने अपने 'ख्याल' में कहा है-

हीरालाल आनन्दकन्द नित करे /गणेशीलाल के कथन।[7]

यह आश्चर्यपूर्ण सत्य है कि जिन गांवों के नाम रागों, लय-ताल, वाद्य यंत्रों पर आधारित हैं, वहां का पानी मीठा है और कृषि की अच्छी उपज होती है। पशु (गाय-भैंस) भी दूध खूब देते हैं। कृषि प्रधान प्रदेश में गांव का नाम सांस्कृतिक धरोहर पर होना आश्चर्यचकित है। इससे यह भी उजागर होता है कि रियासत जीन्द के लोगों की संगीत में विशेष रुचि थी। साहित्यकारों तथा शास्त्रीय गायन में रुचिवान लोगों के मतानुसार गांव रजानाकलां का नाम संस्कृत की रज धातु पर आधारित है जिसका अर्थ राग पर आधारित है। गांव मल्लार (मलार) बिलावल थाट (शैली) से उत्पन्न है। यह औडव जाति तथा वर्षाकाल का प्रियराग है। गांव पिल्लु खेड़ा राग का नाम पिल्लु काफी थाट से उत्पन्न है। गांव कलावती, कलावती राग कर्नाटक पद्धति से आया है, इसकी जाति शाढ़व है। गांव नन्दगढ़ कल्याणथाट से उत्पन्न नन्दराग है। यह शाढ़व संपूर्ण जाति का राग है। गांव मालसरी खेड़ो का नाम मालश्री राग कल्याण थाट के अंतर्गत आता है।

गांव देस खेड़ा खमाज थाट का देशराग है। गांव खेड़ा खेमावती खंनावती राग खमाज थाट से उत्पन्न है। गांव जै जैवंती खमाज थाट का राग है। गांव बैरों खेड़ा भैरव थाट का आश्रय राग है। गांव गुलकली गुणकली राग के थाट बिलावल पर आधारित है। गांव कमाचखेड़ा (खमाच खेड़ा) खमाच राग पर, गांव खटकड़ असावरी थाट से उत्पन्न खर राग पर, गांव जीतगढ़ मारवा थाट से उत्पन्न जैन राग पर, गांव आलन जोगी खेड़ा जोगिया रागभैरव थाट पर, गांव ललित खेड़ा राग ललित भारवा थाट, गांव मांडी खूर्द राग बिलावल थाट के वक्र सम्पूर्ण राग पर, गांव श्रीराग खेड़ा पूर्वी थाट पर, गांव मालवी मालकौस थाट के राग पर, गांव सिवाहा शिवमत भैरव राग पर, सर्राफबाद (सरफाबाद) परदा राग हजरत अमीर खुसरो के प्रिय राग पर, गांव हमीरगढ़ हमीद राग कल्याण थाट पर, गांव हंसडेहर राग हंस ध्वनी, कर्नाटक पद्धति पर गांव ढिगाणा लयताल को दुगनी करने की ताल के कर्म पर, गावं गतौली गतिगत लय ताल पर, गांव भूरायण (भूराण) भूरायण ताल के भागों पर आधारित, गांव सिंधवी खेड़ा सिंध्वी राग पर आधारित है।

रियासत जीन्द की निजामत, पूर्व में जिला

भिवानी के भू-भाग तथा वर्तमान में बना स्वतंत्र जिला दादरी (चरखी दादरी) अंचल के गांव मालकौस, जयश्री, भैरवी, हिन्डौल, बिलावल, धनासरी, टोडा (टोडी), मधमाध्वी, नन्दगांव, कमोद, बागेश्वरी (भागेसरी), सारंगसर, वृन्दावन, असावरी, मौलसरी, गोप कल्याण, घनासरी आदि गांवों का नामकरण रागों पर आधारित रहा है। कई गांवों का नामकरण कवि शम्भूदास की स्मृति में रखा गया है। यह क्षेत्र सदैव संगीत से सरोबार रहा है।

विदूषी डॉ. इन्द्रारानी राव सहित कई विद्वानों ने उद्घोषित किया है कि रियासत जीन्द में रागों के नाम पर गांव महाराज रणवीर सिंह ने आबाद किये थे। परंतु इस धारणा को बिना किसी संदेह संकोच के प्रतिष्ठित चिन्तक, शोधकर्त्ता विद्वान राजाराम शास्त्री ने सिरे से नकार दिया। उनका तर्क है कि ये गांव रणवीर सिंह के जन्म के बहुत पहले से बसे हुए थे। इन गांवों का पिछला इतिहास जानना अति आवश्यक है। महाराजा रणवीर सिंह इतने पुराने नहीं हैं जितना विद्वान लोग समझते हैं। महाराजा रणवीर सिंह बाल्यावस्था में ही जीन्द के राज्य सिंहासन पर आसीन कर दिये गये थे। महाराजा रणवीर सिंह का राज्य काल नवम्बर 1899 से 30 मार्च 1948 तक रहा। वास्तविकता यह है कि महाराजा रणवीर सिंह का आधा राज्यकाल तो युवा होने तथा राज्यकार्य समझने में व्यतीत हो गया; जबकि शेष आधा राज्यकाल प्रजामण्डल की गतिविधियों तथा स्वतंत्रता आंदोलन के संघर्षों से जुझने में लग गया।

ऐसा कहीं भी कोई भी प्रमाण नहीं मिलता कि महाराजा रणवीर सिंह ने किसी एक भी साहित्य व संगीत सभा का आयोजन किया/करवाया है? वास्तव में यह शोध का विषय है कि यह गांव कितने प्राचीन हैं तथा इन गांवों को किसने और कब आबाद किया था।

संदर्भ

1. रामशरण युयुत्सु, युग-युगीन जीन्द, श्री अंगिरा शोध संस्थान, जीन्द, पृ. 13, 59। **2.** वि. प्र. सिंह राव, दैनिक ट्रिब्यून, चण्डीगढ़ ए गोल्डन चेप्टर फ्रो सिरसा सतलुज हिस्ट्री। **3.** वि. प्र. सिंह राव, हरियाणा रिव्यू, मई 1978, टाउन्स ऑफ सिरसा सतलुज रिजन-दादरी। **4.** डॉ. इन्द्रारानी राव, राज्य कवि शम्भूदास एवं उनका काव्य, हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्डीगढ़, पृ.-9। **5.** उदयराज सिंह ठाकुर, रागों के नाम पर बसे हरियाणा के गांव, दैनिक ट्रिब्यून, चण्डीगढ़। **6.** उपरोक्त। **7.** हीरालाल के हस्तलिखित ख्याल से उद्धृत।

रामशरण युयुत्सु
श्री अंगिरा शोध संस्थान,
390/5, शान्तिनगर, पटियाला चौक
जीन्द-126109 (हरियाणा)
मो.-9416387432

प्रगतिशीलता के नाम पर भदेस

व्यक्ति की मृत्यु होती है व्यक्ति के विचारों की नहीं। संभवतः तभी सन् 2013 में प्रतिष्ठित साहित्यकार एवं "हंस" के संपादक राजेन्द्र यादव की मृत्यु के बाद लगभग 10 वर्ष की कालावधि व्यतीत हो जाने पर भी हंस में उनकी नीतियों, उनके विचारों को विश्लेषित करने वाले आलेख लगातार प्रकाशित हो रहे हैं, प्रकाशित अधिकांश आलेखों का तेवर उनकी महिमागान का ही है। ऐसी स्थिति में राजेन्द्र यादव का ही एक कथन याद आता है जो कि प्रेमचंद-भक्त पाठकों को इंगित कर कहा गया था कि "अब हमें प्रेमचंद के भूत से मुक्त होना होगा"। संभवतः उनके इस कथन का आशय यह था कि प्रेमचंद के प्रति अंधश्रद्धा से मुक्त होकर उनके विचारों के औचित्य अनौचित्य का तार्किक विश्लेषण किया जाना चाहिये। उनके उक्त कथन का अनुसरण करते हुये राजेन्द्र यादव की मृत्योपरांत उनके जीवनकाल पर "हंस" में समय समय में प्रकाशित हिन्दू धर्म, देवी देवताओं एवं वेद ग्रंथों के प्रति उनके एवं उनके सहयोगी रचनाकारों के विचारों उनकी मान्यताओं का

तार्किक विश्लेषण, उनके प्रति अंधश्रद्धा से पूर्णतः मुक्त होते हुये यह लेख प्रस्तुत है।

काफी अर्से से कुछ प्रगतिशील साहित्यकारों में हिन्दू धर्म, देवी-देवता एवं वेद ग्रंथों की मजाक उड़ाने की प्रवृत्ति दृष्टिगोचर हो रही हैं। विशेष तौर पर प्रतिष्ठित साहित्यकार एवं साहित्यिक पत्रिका हंस के संपादक राजेन्द्र यादव के संपादकीयों में तथा उनके जीवनकाल में हंस में प्रकाशित कई आलेखों में यह बात खुल कर प्रस्तुत होती थी। मजे की बात तो यह है कि वे भगवान, हिन्दू देवी-देवता आदि का मजाक उड़ाते हुये आस्तिक नजर आते थे क्योंकि वे भगवान तथा हिन्दू देवी-देवता आदि के अस्तित्व को स्वीकारते थे तभी तो उनसे सबंधित मिथकों-कथाओं का मजाक उड़ाते थे। वस्तुतः नास्तिकता बौद्धिकता की प्रथम सोपान होती है क्योंकि आस्तिक की श्रद्धा भक्ति में तर्क की गुंजाइश नहीं होती लेकिन नास्तिकता भगवान, देवी-देवता, धर्म आदि के स्थापित अस्तित्व एवं मान्यताओं को अपने तर्कों की कसौटी पर कस कर नकारती है। क्या राजेन्द्र यादव अपने संपादकीयों के कथनों में तथा हंस में प्रकाशित इस तरह के आलेखों के लेखक भगवान, देवी-देवता तथा हिन्दू धर्म का मजाक उड़ाते हुये उनके स्थापित अस्तित्व एवं मान्यताओं को तर्क की कसौटी पर कस कर खारिज करने का प्रयास करते थे? अगर वे वास्तव में नास्तिक होते तो सर्वप्रथम तो भगवान देवी-देवता आदि के अस्तित्व को ही नकारते उसके बाद फिर तार्किक रूप से विचार करते कि भगवान, देवी-देवता तथा धर्म आदि की अवधारण क्यों जन्मी तथा उनका क्या औचित्य या अनौचित्य है। लेकिन ये प्रतिष्ठित तथाकथित नास्तिक साहित्यकार भगवान, देवी-देवता, हिन्दू धर्म, धर्मकथाओं आदि का या तो मखौल उड़ाते हुये कथन करते थे या फिर धर्मग्रंथों का छिन्द्रान्वेषण कर अतार्किक रूप से उनका उदाहरण प्रस्तुत करते हुये अपने वक्तव्यों और आलेखों में फिकरेबाजी करते नजर आते थे।

यदि समय-समय पर "हंस" के संपादक राजेन्द्र यादव द्वारा अपने संपादकीयों में भगवान, देवी-देवता, हिन्दू धर्म आदि पर की गई टिप्पणियों पर एक नजर डालें तो संभवतः उपरोक्त कथन पाठकों को सही प्रतीत होंगे।

"भग" शब्द का शाब्दिक अर्थ योनि भी होता है अतः इस शब्द का सहारा लेकर राजेन्द्र यादव "हंस" के कई अंकों में "भगवान" एवं "भगवा" जैसे हिन्दू धर्म के शब्दों का मजाक उड़ाते हैं, तदहेतु वे 'भग' शब्द को पूरे शब्द से इनवरटेड कामा या डेश द्वारा अलग करते हुये प्रस्तुत करते हैं, बतौर उदाहरण प्रस्तुत है उनके कुछ संपादकीयों के ये अंश--- 'भग'वान की इतनी पूजा प्रतिष्ठा क्यों करते हैं? संस्कृत में प्रतिष्ठित महिलाओं को 'सु'भगे कहकर क्यों संबोधित किया जाता है? क्या इसके पीछे भी एकलिंग और महालिंगम जैसी अवधारणाओं की प्रतिपूर्ति है?" (हंस"अप्रैल 2012, पृष्ठ 3)। "जैसा कि हमारे यहाँ ऋषियों ने कहा है...... की टीप लगा कर संस्कृत श्लोकों की कवायद करने का 'भग'-वा सुख तो मिलेगा। ("हंस" जुलाई 2001 पृष्ठ 8)। "आखिर धर्म हमेशा अतीतवादी क्यों होता है? क्या ये 'भगवा अतीत को ही हमारा भविष्य बनाना चाहते हैं? ("हंस" अक्टूबर 2006 पृष्ठ 5)।

इतना ही नहीं बल्कि "हंस" के जून 2000 अंक में यादव जी ने अपनी एवं आबिद सुरती की देह सबंधों पर आधारित कहानियों "हासिल" एवं "कोरा कैनवस" की वकालत करते हुये धार्मिक कथाओं में पिता पुत्री के रूप में चित्रित ब्रह्मा एवं सरस्वती के अवैध संबंधों का उदाहरण प्रस्तुत किया तो "हंस" के अगस्त 2005 अंक में डॉ. तुलसी राम ने अपने आलेख "धर्म सम्मत यौन शोषण में नैतिकता" में वेद, धर्म ग्रंथों आदि का छिन्द्रान्वेषण कर उनमें चित्रित यौनसंबंधों की उपहासपूर्वक प्रस्तुति करते हुये यजुर्वेद के एक मंत्र का उल्लेख किया जिसमें "सरस्वती देवी, वैद्य अश्विनी कुमारों से अपनी योनि

के अंदर गर्भधारण करती है" (पृष्ठ 26)। बहन यमी अपने सगे भाई यम से देह संबंध बनाने हेतु याचना करती है (पृष्ठ 33) तथा यज्ञ के हवन कुण्ड को योनि तथा पुरुष लिंग को हवि (लकड़ी, घृत आदि) आदि के उदाहरण प्रस्तुत किये। जबकि "हंस" के अगस्त 2008 अंक के पृष्ठ 2 में राजेन्द्र यादव ने अपने संपादकीय में गणेश जी के बारे में अपमानजनक टिप्पणी करते हुये कहा--- "गणेश के बारे में बताया जाता है कि शुरू में वे निहायत उपद्रवी एवं उदंड देवता थे-लूटपाट उनकी सहज गतिविधि थी। जहां भी कोई पूजापाठ, हवन, यज्ञ होता वे अपने गणों को लेकर पहुंच जाते और सारे आयोजनों को तहस-नहस कर डालते।...... इस तरह कालान्तर में उपद्रव और अमंगल की साक्षात मूर्ति गणेश अपनी भयोत्पादकता के कारण प्रथम पूजे जाने लगे।" राजेन्द्र यादव भगवान के अवतारों एवं देवी देवताओं के हथियार धारण करने पर भी आपत्ति करते हैं, वे अपने संपादकीय में कहते हैं कि--- "राम का धनुष बाण, कृष्ण का सुदर्शन चक्र, शिव का त्रिशूल और दुर्गा का खांडा क्या शान्ति का संदेश देते हैं? क्यों चौबीसों घन्टे इन्हीं का कीर्तन हो रहा है? क्या महावीर और बुद्ध हमारे आज के देवता नहीं हो सकते? (हंस अक्टूबर 2006 पृष्ठ 5)

यादव जी हिन्दू एवं मुस्लिम दोनों ही धर्मों को कट्टर (उनकी कथित प्रगतिशीलता के खांचे बाहर) बतलाते हुये इसाई धर्म को मैच्यौर तथा हर वर्जनाओं पर खुल कर बहस करने वाला बताते हुये कहते हैं कि - क्रिश्चियेनिटी तलाक, कंडोम, समलैंगिक संबंधों और "कोई स्त्री पोप क्यों नहीं बन सकती है", "विची कोड", "पैशन ऑफ काइस्ट", "सिक्स वूड ऑफ क्राइस्ट", "पावर एण्ड ग्लोरी" या "नेम ऑफ द रोज" जैसी किताबें लिखी जा सकती है, फिल्म बन सकती है, सही है थोड़ा बहुत हो हल्ला होता है और फिर लोग भूल जाते हैं। इस लिहाजे से क्रिश्चियेनिटी ज्यादा वयस्क या मैच्यौर धर्म है। (हंस अक्टूबर 2006 पृष्ठ 5)।

प्रगतिशीलता संभवतः ऐसी विचारधारा है जिसका उद्देश्य मानव समाज को प्रगति की ओर अग्रसर करना है, तद्हेतु धर्माधंता, पाखंड, आडम्बर, कुरीतियों का तार्किक रूप से खंडन किया जाना, उनका विरोध किया जाना तो उचित माना जा सकता है लेकिन धर्म, अध्यात्म, देवी-देवता, भगवान, वेद ग्रंथों एवं धार्मिक मान्यताओं का अश्लील, भदेश मजाक उड़ाना तो किसी भी दृष्टिकोण से प्रगतिशीलता नहीं मानी जा सकती है। वस्तुतः मजाक उड़ाने की प्रवृत्ति दंभ से जन्मती है। वह दंभ धन का हो, शारीरिक बल का हो, या फिर अत्याधिक बौद्धिकता के एहसास का और ऐसी बौद्धिकता का एहसास जब किसी विचारधारा से पूरी तरह से ग्रसित हो जाता है तो उसके स्वयं के औचित्य अनौचित्य का विवेक समाप्त हो जाता है, वह सिर्फ उसी विचारधारा की मान्यताओं के अनुरूप सोचता है तथा उसी विचारधारा के पुरौधाओं के कथनों का अनुसरण करता है। वामपंथ के किसी प्रतिष्ठित विचारक ने "धर्म" को नकारते हुये उसकी तुलना अफीम से की है लिहाजा राजेन्द्र यादव तथा हंस के कुछ उनके दरबारी रचनाकार "धर्म" एवं धार्मिक मान्यताओं के खिलाफ लामबंद है। जबकि धर्म नहीं अपितु धर्माधंता की तुलना अफीम से की जानी चाहिये, जिसके नशे में व्यक्ति अपने सोचने समझने की शक्ति खो देता है। धर्म तो मानव समाज के कर्म की दिशा को निरूपित करता है। हिन्दू समाज के कर्म की दिशा को यदि ऋषि मुनियों द्वारा सृजित सनातन धर्म निरूपित करता है तो वामपंथियों के कर्म की दिशा को उनका वाम पंथ निरूपित करता है तो फिर वे धर्म का उपहास करने वाले वामपंथी भी तो धार्मिक ही तो हुये, हाँ यह जरूर है कि उनका धर्म वामपंथ है, साम्यवाद है।

एक बात और गौरतलब है कि वेद इत्यादि ग्रंथों का मूल्यांकन उस काल के मद्देनजर ही किया जाना चाहिये जिस काल में वे सृजित हुये थे ना कि वर्तमान

के सन्दर्भ में। प्रगतिशील एवं दलित साहित्यकारों द्वारा सबसे अधिक विरोध वर्णव्यवस्था को जन्मगत मानने का किया जाता है जबकि वर्णव्यवस्था जन्मगत न होकर कर्मगत थी, किन्हीं के अन्य वर्ण के कर्म की ओर प्रवृत्त होने पर उनका वर्ण विघटित होकर जिस वर्ण के कर्म को वे कर रहे हैं उसी वर्ण के वे हो जाते थे, इसका उल्लेख धर्मग्रंथों में मिलता है। महाभारत में भृगु ने भारद्वाज को वर्णों की उत्पत्ति समझाते हुये कहा था पहले वर्णों में कोई मतभेद न था। ब्रह्मा से सभी मनुष्य उत्पन्न हुये थे अतः वे ब्राह्मण थे। बाद में अपने कर्मों के अनुसार उनका वर्ण भेद हुआ। (शान्तिपर्व 188. 3.10)"। ब्रह्मा से उत्पन्न सभी मनुष्य गौर वर्णी होने की वजह से ब्राह्मण थे बाद में कर्मानुसार उनके शरीर का वर्ण (रंग) परिवर्तित होने लगा। शौर्य वीरता के कर्म की वजह से जिन मनुष्यों के शरीर का वर्ण रक्ताभ लाल पड़ गया वे क्षत्री, व्यवसाय कर्म में रत मनुष्यों के शरीर का रंग पीला पड़ने से वे वैश्य, तथा साफ सफाई, पशु चर्म एवं पशु-पक्षी आखेट व विक्रय, लौह एवं अन्य धातुओं, लकड़ी आदि के शिल्प कार्य में रत रहने वाले मनुष्यों के शरीर का रंग काला पड़ गया और वे शूद्र संबोधित किये जाने लगे जबकि जो मनुष्य विद्याध्ययन, अध्यापन, ज्ञानार्जन के कर्म में ही रत रहे वे गौरवर्णी होने की वजह से ब्राह्मण ही संबोधित किये गये। लेकिन अपने वर्ण के अनुरूप कर्म न कर अन्य वर्ण के कर्म करने पर उनके वर्ण परिवर्तित हो जाते थे। इस सन्दर्भ में बहेलिया वाल्मीकि के ऋषि बाल्मीक बन जाने की घटना सर्वविदित है। वर्णसंकरता एवं वर्ण विघटन मनु स्मृति के समय में ही होने लगा था जिसका कि उल्लेख मनुस्मृति में भी मिलता है इसके पीछे जीवन निर्वाह का मुद्दा प्रमुख था। मनुस्मृति में कहा गया है कि "यदि क्षत्रिय का क्षत्रिय कर्म से निवाह नहीं होता तो उसे वैश्य का कर्म करना चाहिये (18.81.82)। लेकिन वह शास्त्र द्वारा निधारित कर्म ही करे यदि वह दूध बेचेगा तो तीन दिन में शूद्र हो जायेगा, अन्य शास्त्रवर्जित पदार्थ बेचेगा तो सात दिन में वैश्य हो जायेगा।

दरअसल हर युग की सामाजिक व्यवस्था उस युग की जरूरत के अनुरूप होती है मनु की वर्णव्यवस्था भी उस युग की जरूरत थी, वर्तमान में तो मानवीय वर्ण ही असंतुलित हो गया है तो फिर वर्णव्यवस्था का उपयोग ही कहाँ रह गया? हमारे क्षेत्र में इस वर्ण असंतुलन पर कटाक्ष करते हुये लोक जगत में कहा जाता है कि "काला बाह्मन, गोर चमार। मंजा ठाकुर महागंवार।।" फिर भी आप यदि अतीतजीवी बन कर मनुस्मृति की पुस्तक की होली जलाते हैं तो यह आपकी मतिमंदता का ही परिचायक है। वर्णव्यवस्था के बाद ही संभवतः कर्मगत एवं जन्मगत जातिव्यवस्था जन्मी तथा उनकी विकृतियों के खिलाफ भी आवाज उठ रही है। उनमें भी सुधार हो रहा है। संभवतः सनातन धर्म को आडम्बरों से मुक्त करने के उद्देश्य से ही उसमें तार्किक तथा पूर्णतः धार्मिक दृष्टिकोण से सुधार करते हुये "आर्यसमाज" एवं "गायत्री परिवार" का जन्म हुआ जिन्होंने सनातन धर्म एवं धर्मग्रंथों का मजाक नहीं उड़ाया बल्कि अपनी बातें पूरी धार्मिक आस्था के साथ तार्किक रूप से कही, फलस्वरूप उनके आज देश में लाखों अनुयायी हैं। क्या इसे हिन्दू धर्म की प्रगतिशीलता के रूप में नहीं स्वीकारा जायेगा?

कर्मगत जातिव्यवस्था जिसका कि सबसे अधिक विरोध दलित एवं प्रगतिशील साहित्यकार करते हैं, यदि यह व्यवस्था प्रगतिशील रूप से विकसित होती तो संभवतः आज साहित्य सृजन के कर्म में रत हर बुद्धिजीवी मनुष्यों की जाति "साहित्यकार" एवं "लेखक" की होती। इसी भांति "कलाकार" "चित्रकार" "संपादक" " पत्रकार" जातियाँ भी अस्तित्व में आ जाती और यदि दलित वर्ग अपनी कर्मगत जाति के जातिगत संबोधन को स्वयं अपमानजनक मानकर न नकारता बल्कि पूरे गौरव

के साथ उसे स्वीकारते हुये उस कर्म को सिर्फ अपनी जाति के लिये ही आरक्षित कराता तो संभवतः वह वर्ग टाटा एवं बाटा की तरह उद्योगपति होता, आर्थिक रूप से समृद्ध होता। कर्मगत जाति के मद्देनजर यदि देखा जाये तो वर्तमान में तो सबसे बड़ा चमार "बाटा शू कम्पनी" एवं सबसे बड़ा लोहार "टाटा स्टील कम्पनी" है। अपने कर्मगत जातिगत संबोधनो को अपमानजनक मानकर अपने आप को दमित, दबा कुचला हुआ बतलाने वाले "दलित" संबोधन को अपने आप के लिये सम्मानजनक मान कर स्वीकारने वाले वर्ग, इन बड़े समृद्धशाली, उद्योगपति बड़े चमारों एवं लोहारों को देख कर क्या यह नहीं महसूस करते कि उन्होंने अपनी कर्मगत जातिगत संबोधनों को नकार कर ना सिर्फ उस कर्म का तिरस्कार किया है बल्कि अपनी समृद्धि के द्वार को भी बन्द कर दिया।

राजेन्द्र यादव "हंस" अक्टूबर 2006 अंक के अपने संपादकीय में क्रिश्चियन धर्म को ज्यादा वयस्क एवं मैच्योर बताते हैं क्योंकि उस धर्म में तलाक, कंडोम, समलैंगिक संबंधों और कोई स्त्री क्यों पोप नहीं बनती पर खुल कर चर्चा होती है, किताबें लिखी जाती हैं, फिल्में बनती हैं आदि-आदि ऐसा कहते हुये हिन्दू धर्म को कमतर आंकते हुये यादव जी भूल जाते हैं कि इस सन्दर्भ में हिन्दू धर्म सर्वाधिक वयस्क है जहाँ सिर्फ खुल कर चर्चायें ही नहीं होती बल्कि महिलाओं के स्वातंत्र्य के संबंध में क्रियान्वन भी होता है। महिलाओं को "स्वयंवर" के माध्यम से अपने वर के स्वयं वरण की ही सुविधा प्राप्त नहीं थी बल्कि अपने पति को त्यागने का अधिकार भी प्राप्त था तभी तो उर्वशी एवं गंगा अपने पतियों को त्याग कर चली गई थी। जनसंख्या नियंत्रण हेतु कंडोम जैसे कृत्रिम साधन की अपेक्षा स्वनियंत्रण अधिक प्रभावी एवं मानव स्वास्थ के दृष्टिकोण से उपयोगी है अतः मानवीय यौन संबंधों को नियंत्रित करने के उद्देश्य ही ऋषि मुनियों ने मानव जीवन को चार आश्रमों- ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, सन्यास तथा वानप्रस्थ में बांट रखा था। इन आश्रमों के माध्यम से मानव जीवन का मात्र एक चौथाई भाग (युवावस्था में विवाहोपरांत गृहस्थ आश्रम) ही यौन संबंधों हेतु निर्धारित किया गया था जिससे कि सिर्फ जनसंख्या प्रसार ही संतुलित ढंग से नहीं होता था बल्कि व्यक्ति भी स्वस्थ एवं दीर्घायु होते थे। समलैगिंकता जैसे अप्राकृतिक यौन सबंधों को स्वीकारना वयस्कता या मैच्योरटी नहीं है बल्कि इन्हें नकारना इन पर प्रतिबंध लगाना वयस्कता है, हिन्दू धर्म ग्रंथों में ही नहीं बल्कि मुस्लिम एवं इसाई धर्म में भी इस विकृति को नकारा गया है तथा इन विकृतियों हेतु दण्ड का प्रावधान किया गया है जबकि हिन्दू धर्म में कई विदूषी महिलाओं का जिक्र है जिनसे शास्त्रार्थ कर शंकराचार्य भी पराजित हो गये थे, जिनके नाम से गणित के शास्त्र हैं। गौरतलब है कि हिन्दू धर्म में सिर्फ देवता ही नहीं देवियां भी पूजी जाती हैं।

हिन्दू धर्म सिर्फ वयस्क, मैच्यौर ही नहीं है बल्कि अत्यन्त उदार भी है तभी तो राजेन्द्र यादव जैसे अपने आप को नास्तिक घोषित करने वाले व्यक्तियों द्वारा हिन्दू धर्म का अश्लील, फूहड़ मजाक उड़ाया जाता है फिर भी उनके खिलाफ कोई आन्दोलन नहीं होता। हिन्दू धर्म, देवी-देवताओं का मजाक उड़ाते हुये न जाने कितनी फिल्में, टी. वी. सीरियल लगातार लम्बे समय से बन रहे हैं, कितनी ही पुस्तकें हिन्दू धर्म एवं देवी-देवताओं के खिलाफ लिखी जा रही हैं लेकिन हिन्दू धर्मावलंबी उन्हें सहज रूप से लेते हुये कुछ बेतुके लोगों का प्रलाप मान कर नकार देते हैं। जिस मनुस्मृति की पुस्तकों को कुछ विमर्शवादी जला रहे हैं उसी मनुस्मृति में "नियोगप्रथा" का उल्लेख है जिसमें पुरुष के लम्बे समय तक युद्ध में रत रहने या प्रवास पर लम्बे समय तक बाहर रहने पर उसकी स्त्री को अन्य पुरुष से शास्त्र के नियमों के अनुसार यौन सबंध स्थापित करने की सहमति का प्रावधान है। यह प्रावधान तो संभवतः यादव जी की "स्त्री यौन

स्वातंत्र्य" की विचारधारा से कहीं अधिक तार्किक एवं प्रगतिशील विचारधारा है।

जबकि क्रिश्चियन धर्म में पाखण्ड प्रारम्भ से ही बहुतायत से है। इसके धर्मगुरु पोप द्वारा स्वर्ग की टिकट बेची जाती थी तो धर्मान्तरण हेतु हर तरह के हथकंडे अपनाये जाते थे और लगातार अपनाये जा रहे हैं। 1769 और 1770 ईस्वी में बंगाल में हुये भीषण अकाल में हुई भयंकर जनहानि के पीछे प्रमुख कारण अंग्रेजी राज्य का इसाई धर्म का प्रसार एवं हिन्दुओं को धर्मान्तरित किये जाने का षडयंत्र था। इस सबंध में डॉ. रामविलास शर्मा ने अपनी पुस्तक "भारतीय साहित्य की भूमिका" के "राजा राममोहन राय और बंगाल का नवजागरण" खण्ड में पृष्ठ 302 एवं 303 में कहा कि-- "1769 और 1770 में बंगाल के अंदर भीषण अकाल पड़ा था और उसमें भयंकर जनहानि हुई थी। इस अकाल के लिये अंग्रेज जिम्मेदार थे। मार्क्स ने "पूंजी" के प्रथम खण्ड में इसका जिक्र किया था। 1769 और 1770 के बीच अंग्रेजों ने सारा चावल खरीद लिया और बहुत ऊंचे दाम लिये बिना बेचने से इंकार कर दिया। इस तरह उन्होंने भुखमरी पैदा की (Manufacture of famine - पूंजी खण्ड 2 पृष्ठ 753)। पहले जनता के संसाधनों को लूटना, उन्हें अपने कब्जे में करना, फिर उसकी भुखमरी से फायदा उठा कर धर्म परिवर्तन के लिये उसे प्रेरित करना और इस तरह ज्ञान का प्रसार करना यह अंग्रेजी राज्य का वास्तविक रूप था ।"

"हंस"अगस्त 2003 अंक में जोसेफ गाथिया अपने आलेख "इसाई नैतिकता और आधुनिकता" में पृष्ठ 43 में बतलाते हैं कि-- "होमोसेक्सुअल पादरी के विशप बनने पर बड़ा हो हल्ला मचा था।.......अमेरिका में गे एवं लेस्बियन चर्च में अपने अधिकारों की व्याख्या पर जोर दे रहे हैं।....... पिछले दो दशक में इसाई नैतिकता मलबे के ढेर में बदल गई है और संगठित चर्च तो बस अब इस घूरे में कब्जा लेने का आनन्द ले रहे हैं।"

दरअसल किसी भी धर्म की तुलना अन्य धर्म से करते हुये उसे श्रेष्ठ, मैच्यौर, वयस्क बतलाने की कवायद करने का कोई औचित्य नहीं है। हर धर्म अतीत के गर्भ से, उस युग की सामाजिक स्थितियों के अनुरूप मानव समाज को बेहतर बनाने हेतु, मानवीय कर्मों की दिशा निरूपित करने के उद्देश्य से जन्मा था। लेकिन वह अतीतवादी नहीं है और ना ही अतीत को वर्तमान मानव समाज का भविष्य बनाने हेतु ही अमादा है (जैसा कि राजेन्द्र यादव "हंस अक्टूबर 2006" के पृष्ठ 5 पर कहते हैं) बल्कि वह अतीत में जन्मे अपने स्वरूप को वर्तमान के अनुरूप तार्किक रूप से परिवर्तित करने, प्रासंगिक बनाने हेतु सदैव तत्पर है। इसी उद्देश्य से विद्वत जन पूरी गंभीरता के साथ हिन्दूधर्म एवं धर्मग्रंथों की बराबर मीमांश कर रहे हैं, उसकी वर्तमान में सार्थकता को विश्लेषित कर रहे हैं। इस दिशा में विद्वान धर्मिक संत महात्मा ही नहीं अपितु प्रतिष्ठित साहित्यकार भी लगातार प्रयत्नशील हैं जिनमें से राहुल सांकृत्यायन की पुस्तक "वोल्गा से गंगा तक", डॉ. रामविलास शर्मा की पुस्तक "भारतीय साहित्य की भूमिका" एवं इस सन्दर्भ की अन्य पुस्तकें, जयशंकर प्रसाद का महाकाव्य "कामायनी", मैथिलीशरण गुप्त की "पंचवटी" आदि सैकड़ों पुस्तकों का नाम लिया जा सकता है जिन्हें पढ़ कर इन साहित्यकारों के प्रति मन में श्रद्धा के भाव जन्मते हैं जबकि हंस के संपादक राजेन्द्र यादव द्वारा हिन्दू धर्म का उपहास करने वाली बेतुकी टिप्पणियों को पढ़ कर उनकी कथित प्रगतिशीलता भर्त्सना योग्य है।

इसके पूर्व की राजेन्द्र यादव एवं डॉ. तुलसी राम द्वारा भगवान, देवी-देवताओं एवं हिन्दू धर्मग्रंथों के सन्दर्भ में "हंस" में की गई अन्य टिप्पणियों को विश्लेषित किया जाये इस बात पर गौर करना जरूरी है कि ईश्वर, भगवान, देवी-देवताओं को ना ही नास्तिकों ने देखा है और ना ही आस्तिकों ने, लिहाजा स्वाभाविक है कि इन सब की ऋषि, मुनियों मसीह-

पैगम्बरों ने परिकल्पना ही की होगी। प्रश्न यह खड़ा होता है कि आखिर इस सब की परिकल्पना का औचित्य क्या था? इस प्रश्न का उत्तर ढूंढने के लिये मानव सभ्यता के प्रारम्भिक विकास के युग में जाना होगा। उस युग मे जब मानव समाज के प्रतिनिधि बुद्धिजीवियों (ऋषि मुनियों) ने प्राकृतिक घटनाओं के घटने, प्राणियों के जन्म एवं मृत्यु आदि के रहस्य को भेदने का प्रयास किया तो उन्हें प्रतीत हुआ कि इन सबके पीछे कोई अलौकिक सत्ता है जो कि ब्रह्माण्ड में स्थित है अतः उस अलौकिक सत्ता का नाम "ब्रह्म" दिया। वह अलौकिक सत्ता निराकार है, जो ना जन्मती है और ना ही मरती है। वह पूरी सृष्टि की सरंचना करती है उसका पालन करती है तथा उसका संहार भी करती है।

सिर्फ हिन्दू धर्म ही नहीं अपितु अन्य धर्मों ने भी इस मान्यता को स्वीकारा। मुस्लिम धर्म के पवित्र ग्रंथ "कुरान" के प्रारम्भ में ही कहा गया है कि सब प्रशंसा (हम्द-गुणगान) अल्लाह के लिये हैं जो सारे संसार का रब (पालनकर्ता) है। -- सूरः अल फतिहा (मक्का में उतरी आयत 7)। "अल्लाह" शब्द को अल इलाह (पूज्य) दो शब्दों में विच्छेदित कर उसे विशिष्ट रूप से पूज्य बताया गया जो कि ना ही कभी जन्मता है और ना ही मरता है तथा वह पूरे जगत का पालन करता है। इसाई धर्म की पवित्र पुस्तक "बाइबिल" में सृष्टि के निंमाणकर्ता तथा पालनकर्ता यहोवा परमेश्वर को बतलाया गया।

निराकार ब्रह्म के गूढार्थ को ऋषि, मुनि, साधु, संत तो समझ सकते थे तथा उस आलौकिक सत्ता की महत्ता को स्वीकार कर उसकी उपासना कर सकते थे लेकिन जन सामान्य के सामने जब तक ईश्वर का कोई आकार ना हो तथा उसके आलौकिक कृत्यों की गाथायें ना हो (भले ही काल्पनिक) तो वह उनकी महत्ता को कैसे स्वीकारता? कैसे उनकी उपासना करता? अतः ऋषि मुनियों ने जन सामान्य हेतु उस आलौकिक सत्ता को तीन साकार रूपों में विभाजित किया सृष्टि का सृजन करने वाला "ब्रह्म", सृष्टि का पालन करने वाला "विष्णु", तथा सृष्टि का संहार करने वाला "शिव" और इनके आलौकिक कृत्यों की गाथायें पुराणों में लिख डाली। इन त्रिदेवों की परिकल्पना के बाद फिर बहुत सारे देवी देवताओं की अवधारणायें हिन्दू धर्म में जन्मी। ऐसी अवधारणायें सिर्फ हिन्दू धर्म में ही नहीं जन्मी बल्कि ग्रीक यूनान में भी जन्मी वहाँ भी हिन्दू धर्म के देवी देवताओं से मिलते जुलते देवी देवताओं की अवधारणायें हैं बस उनके नाम वहाँ पर अलग हैं मसलन शौर्य के देवता "हरक्युलिस", सुन्दरता की देवी "वीनस" आदि । "शक्ति" शब्द स्त्री लिंग है अतः हर तरह की शक्तियों की अधिष्ठात्री देवी के रूप की परिकल्पना जन्मी तथा उस शक्ति की आराध्य देवी के रूप में उनकी आराधना पूजा की जाने लगी मसलन शौर्य वीरता की शक्ति के रूप में दुर्गा, काली (या देवी सर्वभूतेषु शक्ति रूपेण संस्थिता), धन की शक्ति के रूप में लक्ष्मी, विद्या तथा बुद्धि, विवेक की शक्ति के रूप में सरस्वती (सरस्वती विश्वाः धियः वि राजति) जो सब प्रकार की बुद्धियों को प्रकाशित करती है-- उप.1.3.12), इन शक्तियों के अनुरूप ही उनका आकार उनके वाहन एवं उनके आयुधों की परिकल्पना की गई। देवी दुर्गा का वाहन हिंसक सिंह है उनके आयुध त्रिशूल एवं खांडा हैं तो विद्या की देवी सरस्वती का वाहन धवल हंस है उनके हाथों में वीणा (संगीत), पोथी (विद्या) तथा तुलसी की माला (अध्यात्म) है तथा उनका एक हाथ वरद हस्त के रूप में अपने आराधकों को इन शक्तियों का वरदान देता हुआ अंकित है जबकि लक्ष्मी का वाहन उल्लू तथा कमलासन में बैठ कर धनवर्षा करते हुये उन्हें चित्रित किया गया है। इस भांति प्राचीन काल में ऋषि मुनियों ने अत्यन्त तर्कसंगत रूप में विभिन्न शक्तियों के आकार की परिकल्पना की इसी भांति अवतारों के भी आकार एवं अस्त्र-शस्त्र की परिकल्पना की गई जिसकी हर बुद्धिजीवी को तारीफ करना चाहिये

लेकिन प्रतिष्ठित साहित्यकार राजेन्द्र यादव इन सबका मजाक उड़ाते हैं।

उनके पूर्वोक्त कथन के जबाब में तो यही कहा जा सकता है कि श्रीमान आपसे किसने कह दिया कि महावीर और बुद्ध आज के हमारे देवता नहीं हैं, वे भी हमारे देवता हैं और राम, कृष्ण, शिव और दुर्गा भी हमारे देवी-देवता हैं इतना ही नहीं हर सम्प्रदाय के देवी-देवता, पीर औलिया हिन्दुओं की श्रद्धा के पात्र हैं। भारत का यही साम्प्रदायिक सद्‌भाव का स्वरूप उन्हें परस्पर मिलजुल कर प्रेम से रहने के लिये प्रेरित करता है जबकि किसी सम्प्रदाय की अन्य सम्प्रदाय से तुलना कर किसी को भी कमतर आंकना या तुलना करते हुये उनकी आस्थाओं का मजाक उड़ाना, अपमानित करना साम्प्रदायिकता है। जहाँ तक देवी देवताओ के अस्त्र-शस्त्र धारण करने का प्रश्न है तो देवी-देवताओं का अस्त्र-शस्त्र धारण, मानवता के शत्रुओं से मानवता के रक्षार्थ है। मानवता की सुरक्षा हेतु अस्त्र-शस्त्र धारण कर जब पूरे मानव समाज को सुरक्षित अमन चैन का जीवन उपलब्ध कराया जायेगा तभी शान्ति का संदेश सही मायने में दिया जा सकता है। इतिहास गवाह है कि अहिंसा की दुहाई देकर सैनिकों को लकड़ी की तलवार धारण करने पर मजबूर करने वाले बौद्ध धर्म के संघों की बदौलत देश को यवनों की गुलामी झेलनी पड़ी थी। आज हर देश अपनी सुरक्षा हेतु अपनी सेनाओं को आधुनिक अस्त्र-शस्त्रों से लैस करता है क्या इसे हिंसा मानी जायेगी तथा अहिंसा के संदेश देते हुये क्या उन्हें अस्त्र-शस्त्र रहित कर देना चाहिये?

देवी-देवताओं की अवधारणा के साथ ही बहुत सारे मिथक (धर्म कथायें) भी गढ़े गये और इन सब अवधारणाओं, मिथकों को रचने वाले ऋषि-मुनि सिर्फ इनके रचयिता ही नहीं अपितु उस युग के समाजशास्त्री भी थे। वे धर्म, धार्मिक कथाओं तथा स्वर्ग नरक आदि की परिकल्पनाओं, पाप पुण्य की अवधारणाओं के माध्यम से मानव को एक अनुशासित सामाजिक प्राणी बनाने के लिये प्रयत्नशील थे। धर्म की सामाजिक नियंत्रण में महत्वपूर्ण भूमिका है इस तथ्य को प्रतिष्ठित समाजशास्त्रियों ने भी स्वीकारा है। यदि भगवान, देवी देवता, धर्म आदि की अवधारणा से व्यक्ति के कर्म संतुलित होते हैं, वह धर्म के सामाजिक नियंत्रण से नियंत्रित होकर सामाजिक प्राणी बनता है तथा यदि उसे अपने हर कर्म की तरफ प्रवृत्त होने हेतु एक मानसिक सम्बल के रूप में देवी-देवताओं के पूजन से मनोवैज्ञानिक आधार पर प्रेरणा मिलती है तो इसमें किसी को ऐतराज क्यों होना चाहिये? जबकि पाखण्ड, आडम्बर, धार्मिक शोषण आदि धर्म के व्यवसायीकरण के फलस्वरूप जन्म हैं इनका निस्सन्देह विरोध किया जाना चाहिये। दरअसल व्यवसायीकरण किसी भी क्षेत्र में हो उसके तहत अपने व्यवसाय की अभिवृद्धि हेतु हर तरह के हथकण्डे अपनाये जाते हैं। साहित्य के क्षेत्र में भी व्यवसायीकरण के तहत ही तो ग्राहकों की संख्या बढ़ाने के लिये "चटपटा साहित्य" के व्यंजन परोसने का काम राजेन्द्र यादव अपनी पत्रिका "हंस" के माध्यम से कर रहे हैं। इस सबंध में वे "हंस" जुलाई 2001 के पृष्ठ 8 के संपादकीय में हंस की ग्राहक मिसेज आचार्य से अपने वार्तालाप का जिक्र करते हैं जिसमें यादव जी द्वारा हंस को परम्परावादी सोच की शालीन पत्रिका बनाने की बात कहने पर मिसेस आचार्य "वेजीटेवल हंस" को अपने घर भेजने से मना करती है। फलस्वरूप "नानवेज हंस" को प्रकाशित करने की अपनी विवशता का जिक्र करते हुये राजेन्द्र यादव कहते हैं-- "इसी आशय के सैकड़ों पत्र एवं प्रतिक्रियायें मेरी मुक्ति में बाधक है।" क्या यह साहित्य का व्यवसायीकरण नहीं है कि चूंकी "शालीन हंस" की जगह "चटपटा हंस" को पढ़ने में हंस के पाठकों की अधिक रुचि है इसलिये यादव जी हंस में "चटपटा साहित्य" परोस रहे हैं जो कि देहवादी, धर्मविद्रोही एवं स्त्री यौन स्वातंत्र्य समर्थक है तथा

शायद वे हंस को चटपटा बनाने के प्रयास में ही स्त्री यौन स्वातंत्र्य का समर्थन करते हुवे स्त्री यौनांगों के अश्लील नामों को भी अपने संपादकीय एवं हंस में प्रकाशित रचनाओं में यथावत लिखने में परहेज नहीं करते हैं।

बड़ी विचित्र बात है कि साहित्य में उपमाओं, अलंकारों, अतिसयोक्ति के प्रयोगों तथा फैन्टेसी में व्यक्ति के कीड़ा बन जाने (काफ्का "कायान्तरण") की तारीफ करते न अघाते प्रगतिशील साहित्यकार जब धार्मिक कथाओं मिथकों का छिद्रान्वेषण करते हैं तो वे कट्टर पुरातनपंथी यथार्थवादी बन जाते हैं। प्रकृति तथा धन, बल, विद्या बुद्धि जैसी शक्तियों के मानवीकरण करने की उपमाओं से अलंकृत की गई धर्म कथाओं में वे इन सबको वास्तव में नर नारी मान कर बेतुकी हास्यास्पद मात्र उपहास करने के उद्देश्य से टिप्पणियाँ करने लगते हैं। "हंस" के जून 2000 अंक में राजेन्द्र यादव ने धार्मिक कथाओं में पिता-पुत्री के रूप में चित्रित ब्रह्मा एवं सरस्वती के अवैध संबंधों का उदाहरण प्रस्तुत किया तो "हंस" के अगस्त 2005 अंक में डॉ. तुलसी राम ने अपने आलेख "धर्म सम्मत यौन शोषण में नैतिकता" में वेद, धर्म ग्रंथ आदि का छिद्रान्वेषण कर उनमें चित्रित यौनसंबंधों की उपहास पूर्वक प्रस्तुती करते हुये यजुर्वेद के एक मंत्र का उल्लेख किया जिसमें "सरस्वती देवी, वैद्य अश्विनी कुमारों से अपनी योनि के अंदर गर्भधारण करती है" (पृष्ठ 26) जबकि वस्तुतः ब्रह्मा ने पूरी सृष्टि की संरचना की इसलिये वे जगतपिता कहे जाते हैं लेकिन वे जगत के जैविक पिता तो नहीं कहे जा सकते तथा पूरी सृष्टि की संरचना के बाद उन्होंने विद्या, बुद्धि, विवेक जैसी शक्ति की संरचना की जिसे "सरस्वती" के नाम से संबोधित किया गया (ये भी ब्रह्मा की जैविक पुत्री ना थी बल्कि शक्ति थी तथा पूरे जगत के स्रष्टा ब्रह्मा भी तो एक अलौकिक सत्ता ही थे जिसे कि ऋषि मुनियों ने एक काल्पनिक मानवी आकार दे दिया था)। ब्रह्मा, विद्या-बुद्धि-विवेक की शक्ति "सरस्वती" की संरचना के बाद अपनी उस संरचना के प्रति मोहित हो उठे थे ठीक उसी भांति जिस भांति की एक रचनाकार अपनी सबसे विशिष्ट प्रभावाली रचना के सृजन के बाद उसके प्रति मोहित हो उठता है। यह रचनाकार भी तो अपनी उस रचना का स्रष्टा होता है तो क्या उसका अपनी रचना के प्रति इस मुग्धता को अवैध संबंध कहा जायेगा।

उपनिषद में सरस्वती को सब तरह की बुद्धियों को प्रकाशित करने वाला बताया गया है-- "सरस्वती (विश्वाः धियः वि राजति) सब प्रकार की बुद्धियों को प्रकाशित करती है (उप. 1-3-12)। अतः सरस्वती वैद्य अश्विनी कुमारों के वैद्यक (चिकित्सा, आयुर्वेद आदि) विद्या को भी प्रकाशित करती है। डॉ. तुलसी राम उपहास पूर्वक यजुर्वेद के जिस मंत्र का उल्लेख करते है उसका भावार्थ यही है कि सरस्वती अश्विनी कुमारों की वैद्यक विद्या को अपने अंदर समाहित कर उसका प्रकाशन करती है। दरअसल वेद ग्रंथों के रचयिता ऋषि-मुनियों ने जितना सम्मान "योनि" को उस युग में दिया उतना अन्य किसी युग में नहीं दिया गया। उन्होंने योनि को सिर्फ स्त्री का यौनांग नहीं माना बल्कि पूरी सृष्टि के जन्म का आधार माना (मानव योनि, पशु योनि आदि) जहाँ भी कोई चीज सृजित होने की बात की तो उसका आधार, उसके सृजन के द्वार के रूप में उन्होंने "योनि" की परिकल्पना की, यही कारण है कि जब यज्ञ के माध्यम से उन्होंने प्रकृति का दोहन करना चाहा तो उस यज्ञ कुण्ड में योनि का आकार निर्मित किया जिसमें यज्ञकर्ता हवि अर्पित करता है तथा फलस्वरूप उसका वांछित सृजित होता है, दरअसल उस युग में कुछ भी अश्लील ना था, ना स्त्री पुरुष जननांग और ना ही उनके मध्य स्थापित यौन सबंध। उस युग मे यौनसंबंध गोपनीय या गुप्त ज्ञान ना था बल्कि उन पर खुल कर चर्चा की जाती थी विचार विमर्श होता था तथा धर्मग्रंथों में भी उनके बाबद मान्यताओं को प्रस्तुत किया जाता था (जिसके कि बहुत सारे

उदाहरण डॉ. तुलसी राम ने अपने आलेख में विद्रूपता से प्रस्तुत किये हैं)। उस युग में ही वात्स्यायन ने यौनसंबंधों को विस्तृत रूप से विश्लेषित करते हुये "कामसूत्र" लिखा था जबकि इस सबंध में तो वर्तमान युग संकीर्ण मानसिकता एवं छिछले विचारों वाला हो गया है जिसके उदाहरण के बतौर राजेन्द्र यादव एवं डॉ. तुलसी राम की हंस में प्रस्तुत की गई टिप्पणियों का उल्लेख किया जा सकता है।

डॉ. तुलसी राम ने अपने आलेख "धर्म सम्मत यौन शोषण में नैतिकता" में ऋग्वेद में यमी द्वारा अपने सगे भाई यम से संभोग याचना के संवादों को "बहन भाई की सैक्सवार्ता" का नाम देकर उपहास करते हुये प्रस्तुत किया है लेकिन ऐसा करते हुये वे भूल जाते हैं कि आदिम युग में जब रिश्ते जन्मे ना थे तब मानव में देहसंबंधों पशुओं के यौन संबंधों की तरह निर्बाध थे लेकिन जैसे जैसे मानव समाज सभ्य होता गया देह संबंधों में वर्जनायें भी जन्मी, रिश्ते जन्मे और देहसंबंधों की वर्जनाओं को स्थापित करने हेतु धर्मग्रंथों में तदहेतु कथाओं, वार्ताओं के माध्यम से उन वर्जनाओं के औचित्य को प्रस्तुत किया गया। सगे भाई बहन के बीच देह संबंधों को वर्जित करने हेतु ही ऋग्वेद में सगे भाई बहन के रूप में चित्रित यम यमी के मध्य उस वार्ता को प्रस्तुत किया गया है। उस प्रसंग के बाद ही भाई बहन के बीच स्थापित पवित्र सबंधों की घटना की स्मृति में दीपावली के बाद यमद्वितिया में भाई दूज का त्यौहार मनाया जाता है।

दरअसल किसी भी धर्म के सबंध में कोई भी टिप्पणी करने के पहले टिप्पणीकर्ता को पूर्वाग्रह से मुक्त होकर उस धर्म के उद्‌भव के समय की परिस्थितियों को जीना जरूरी है, जिससे कि वह उस युग में उस धर्म के उद्‌भव की आवश्यकता एवं उपयोगिता पर विचार कर सके। कोई भी धर्म अतीतजीवी नहीं होता (जैसा कि राजेन्द्र यादव कहते हैं) बल्कि वह मानव समाज के अतीत के इतिहास की दार्शनिक व्याख्या प्रस्तुत करता है। उसके धर्मग्रंथ बतलाते हैं कि अतीत में किस भांति धर्म ने मानव को एक "सामाजिक प्राणी" बनाया। मानव के समाजीकरण करने में धर्म ने जो नीतियाँ बनाई उनका लेखा-जोखा वेदों में है तो उन नीतियों को क्रियान्वित करने में उस धर्म के प्रवर्तक ऋषि, मुनियों, पैगम्बरों ने जो व्याख्या प्रस्तुत की तथा उन्हें रोचक ढंग से आम व्यक्ति तक सम्प्रेषित करने हेतु कथाओं का सहारा लिया उन्हीं को तो पुराणों धर्मकथाओं में कहा है। प्रगतिशील साहित्यकार यदि पाश्चात्य साहित्य की महिमा मुग्धता की निद्रा से जग कर खुली आँखों से निहारें तो उन्हें पता चलेगा कि कथाकहानी सर्वप्रथम धर्मकथाओं के रूप में ही जन्मी थी चाहे वे श्रीमदभागवद् तथा सत्यनारायण की कथा हो या फिर पंचतंत्र, अथवा दशकुमारचरित, बौद्ध जातक कथा या जैन धर्म की सरितसागर जैसी नीति की कथायें हों।

"हंस" अप्रैल 2012, पृष्ठ 3, जुलाई 2001 पृष्ठ 8 एवं अक्टूबर 2006 पृष्ठ 5 में राजेन्द्र यादव ने अपने संपादकीय में "भग (योनि)" शब्द का सहारा लेकर 'भग'वान, 'भग-वा' तथा सु'भगे' शब्दों का मजाक उड़ाया है। यद्यिप यह सच है कि "भग" शब्द का अर्थ योनि होता है लेकिन यह भी सच है कि "भग" शब्द का अर्थ सिर्फ योनि नहीं होता है बल्कि ऐश्वर्य आदि छः प्रकार की विभूतियां, एक आदित्य, इक्षा, यत्न, चन्द्रमा, कान्ति तथा मोक्ष भी होता है जबकि "सुभग" शब्द का अर्थ सुन्दर, भाग्यशाली, सुखद तथा आनन्ददायक होता है। राजेन्द्र यादव योनि के अर्थ वाले "भग" शब्द की अपनी भगमुग्धता की आत्मरति से यदि मुक्त होकर शब्दकोष पलट कर भग के इन विभिन्न अर्थों का अवलोकन करते तो उन्हें आसानी से "भगवान" (ऐश्वर्यवान या मोक्षदायक), "भगवा" (ऐश्वर्य या मोक्ष वाला) एवं "सुभगे" (सुन्दर या भाग्यशाली) का अर्थ स्पष्ट हो जाता। लेकिन चलिये "भगवान" शब्द में प्रयुक्त "भग" शब्द को यादव जी की मान्यता के अनुसार योनि ही मान

लेते हैं तो योनि सिर्फ संभोग के आनन्द का माध्यम मात्र ही नहीं है बल्कि उससे प्रजनन होता है सृष्टि संरचित होती है। अतः जो शक्ति उस योनि के माध्यम से सृष्टि को संरचित करती है तथा तदहेतु उसे संचालित करती है वह शक्ति "भगवान" है अगर यह अर्थ भगवान शब्द से लगाया जाये तो इस अर्थ में भी तो भगवान शब्द का अर्थ महिमावान ही है तथा वह पूज्य है। जबकि "हंस" के अगस्त 2008 अंक के पृष्ठ 2 में राजेन्द्र यादव ने अपने संपादकीय में गणेश जी के बारे में अपमानजनक टिप्पणी करते हुये गणेश जी को न जाने किस धर्मग्रंथ के अध्ययन के आधार पर उपद्रवी होने के कारण प्रथम पूजा देने का अधिकारी बतलाया है। गणेश जी के प्रथम पूजन किये जाने के पीछे तो एक धार्मिक कथा है कि कार्तिकेय एवं गणेश के मध्य प्रथम पूजन के अधिकार को लेकर विवाद हुआ तो यह निश्चित किया गया कि जो तीनों लोकों की परिक्रमा लगा कर सबसे पहले वापस लौट कर आयेगा वह प्रथम पूजन पाने का अधिकारी होगा। कार्तिकेय अपने वाहन मयूर से तीनों लोकों की परिक्रमा लगाने निकल पड़े जबकि गणेश जी अपने माता-पिता (पार्वती शिव) को ही तीन लोक मान कर उनकी परिक्रमा कर प्रथम पूजन पाने के अधिकारी बने। माता-पिता को तीनों लोकों से श्रेष्ठ बतलाने वाली यह धर्मकथा क्या हर युग के मानव समाज हेतु प्रासंगिक नीतिकथा नहीं है? जबकि गणेश जी को ज्ञान के अधिपति देव, मंगलकारक, विघ्नविनाशक देव के रूप में पूजा जाता है ना कि उपद्रवी, अमंगल की साक्षात मूर्ति देव के रूप में। डॉ. तुलसी राम जे. एन. यू. में प्राध्यापक हैं तथा राजेन्द्र यादव प्रतिष्ठित साहित्यकार अतः उनके आलेखों में प्रस्तुत उनके कथन गंभीर विश्लेषण के बाद प्रस्तुत होने चाहिये ना कि सतही तौर पर सिर्फ उपहास करने के उद्देश्य से की गई फिकरेबाजी।

जरूरत है कि बुद्धिजीवी हर धर्म का अधिक से अधिक तार्किक विश्लेषण प्रस्तुत करें ना कि अतीत के गर्भ से जन्मे धर्म को वर्तमान के दर्पण में प्रतिबिंबित कर उसका मखौल उड़ायें। बल्कि होना तो यह चाहिये कि हर धर्म को वर्तमान के सन्दर्भ में प्रासंगिक बनाने हेतु उसके स्वरूप में तर्कसम्मत परिवर्तन किये जाये। ऐसा करने हेतु धर्म के नाम पर पाखण्ड, आडम्बर रचने वाले हर धर्म के दुकानदारों की दुकानें बन्द कर बुद्धिजीवियों को धर्म को समाजोपयोगी बनाने हेतु कृतसंकल्पित होना होगा। लेकिन इसके लिये सर्वप्रथम उन्हें हर धर्म, उसकी मान्यताओं, उसके धर्मग्रंथों, उसकी धर्म कथाओं आदि का गंभीरता से अध्ययन करना होगा उसके बाद तार्किक रूप से अपनी बात इस ढंग से कहनी होगी कि उस धर्म के धार्मिक आस्थावान जन की आस्था को किसी भी तरह से ठेस ना लगने पाये।

राजेन्द्र सिंह गहलोत
सिंह प्रिंटिग प्रेस, बुढार-484110
जिलाः शहडोल (म.प्र.)
मो. : 09303635502/09329562110

वज्र पुरुष बाल गंगाधर तिलक का गायकवाड वाड़ा

बाल गंगाधर तिलकजी के सशक्त समृद्ध भारत के स्वप्न को साकार करते हमारे प्रधान मंत्री नरेन्द्र मोदीजी को आजादी के 75 वर्ष पूर्ण होते हीरक महोत्सवी वर्ष में अगस्त 2023 तिलकजी की 103 वीं पुण्यतिथि का स्मरण करते लोकमान्य तिलक स्मारक ट्रस्ट एवं तिलक स्वराज्य संघ समिति द्वारा लोकमान्य तिलक पुरस्कार प्रदान किया गया।

इस आयोजन में ट्रस्ट के अध्यक्ष दीपक तिलक प्रपौत्र बाल गंगाधर तिलक ने यह पुरस्कार प्रदान किया। स्मृतिचिन्ह, सम्मान पत्र, केसरी का प्रथम अंक, लोकमान्य तिलकजी उत्तरीय को धारण करते थे उसकी प्रतिकृति और लाल रंग की पुणेरी पगड़ी और एक लाख रुपये की राशि नरेन्द्र मोदीजी को

ससम्मान प्रदान की गई। पुरस्कार राशि मोदीजी ने नमामि गंगे प्रकल्प को अर्पित की। उन्होंने अपने भाषण में कहा कि आज जो मुझे सम्मान और राशि प्रदान की गई है वह एक महान राष्ट्रभक्त राष्ट्रप्रेमी राष्ट्रनिर्माण हेतु स्वतंत्रता के यज्ञ कुंड में होम करती आहुति के धूम्र वलय को वंदन करते एक सौ चालीस कोटि भारतीय जनता के चरणों में अर्पित करता हूं।

मोदीजी ने अपने भाषण में कहा कि तिलकजी का बलिदान शब्दों में आंकना संभव नहीं। क्रान्तिकारकों ने उनका स्थान बेजोड़ है। उन्होंने स्वतंत्रता संग्राम की दिशा बदली भारतीय जनता ने मनसा वाचा कर्मणा उन्हें अपना नेता स्वीकारा। लोकमान्य का खिताब दिया। एक अगुआ नेता कैसा होना चाहिए एक मूर्तिमन्त आदर्श बाल गंगाधर तिलक थे। सामान्य से सामान्य को एकत्र ला आजादी पाने के लिए तिलकजी ने गणेशोत्सव एवं छत्रपति शिवाजी महाराज की जयन्ती उत्सव मना कर अमीर, गरीब, छोटा-बड़ा, राज, रंक, ऊंच-निम्न, सजातीय, विजातिय जाति की चौखट को तोड़ कर एक छत्र के तले इकट्ठा किया। आधुनिक भारत के वे निर्माता थे। व्यापक चिंतन दूरदर्शी नेतृत्व ध्येय प्राप्ति हेतु समर्पण इन विशेषताओं के साथ अनेक संस्थाओं लोक समाज कल्याण करती संस्थायें उन्होंने खड़ी की। इस प्रकार की संस्थायें पूरे हिन्दुस्तान में खड़ी करने के लिए वे प्रेरक बने। उनका त्याग बलिदान सहयोग सहभाग आज की युवा पीढ़ी के लिए आदर्श है। भावी पीढ़ी के कंधे पर इस दायित्व की धुरा उनके कंधे पर दी। और शिक्षित सक्षम कर्तृत्व बोध रहते युवा पीढ़ी तैयार की। तिलकजी ने जनता में आत्मविश्वास का निर्माण किया। भारतीय संस्कृति इतिहास और सामर्थ्य पर उनका विश्वास था। विश्वास के बिना विकास तो होता ही नहीं। विद्वत्ता मनुष्य को चिरंजीव अमरत्व प्रदान करता है। पुणे पुण्य नगरी की इस महान विभूति पुण्यात्मा को मैं शत शत कोटि वंदन करता हूँ।

तिलकजी ने अपने जीवन का अधिक काल खंड पुणे में व्यतीत किया। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम आंदोलन की जहां शुरूआत हुई उस पवित्र पुण्यनगरी पुणे के बुधवार पेठ में यह गायकवाड बाड़ा भवन आज भी खड़ा है। जहां तिलकजी की पांचवी पीढ़ी रह रही है। इसे तिलक बाड़ा केसरी वाडा तिलक मंदिर नाम में भी जाना जाता है। वाडा मराठी शब्द का अर्थ है रहने का स्थान निवास। इस गायकवाड बाड़ा का अपना इतिहास है। तिलकजी ने अंतिम श्वास लिया था मुंबई के सरदार गृह में। अंतिम संस्कार मुंबई में ही किया गया और अस्थि कलश पुणे वासियों के दर्शनार्थ इसी गायकवाड बाड़ा में रखा गया था। पुणे की दस लाख जनता अपने आराध्य के रक्षाकला के दर्शनार्थ इकठ्ठा हुई थी। रास्ते पर इतनी भीड़ कि चिंटी जाने के लिए भी जगह नहीं थी। केसरी और मराठा अखबार इसी भवन में प्रकाशित होते थे। आज 123 वें वर्ष में भी यह अखबार निकल रहा है। एक प्रतिष्ठित देशव्यापी ही नहीं तो विश्व के इतिहास में अपना नाम स्वर्णाक्षरों में अंकित करते असंतोष के जनक बाल गंगाधर तिलक द्वारा स्थापित केसरी और मराठा का कार्यालय आज भी इसी गायकवाड वाड़ा में हैं। 27 जनवरी सन् 1905 में तिलकजी ने यह वाड़ा निवास स्थान खरीदा था। प्रत्यक्ष खरीदी के कागजी लिखापढ़ी तो उस दिन हुई पर रंग रंगोटी और मरम्मत का काम कई महीनों तक चलता रहा। बड़ौदा संस्थान की चिमणाबाई गायकवाड के पुणे में रहने के लिए यह वास्तु वही की गई थी। विशाल भवन, बहुत बड़ा बाग बगीचा, घने पेड़, आम, अमरूद, चिकू, सीताफल, रामफल, जामुन, ईमली, बेर, बबूल, ऊबर, बेला, चमेली, जुही, हरसिंगार अनेक फूलों, लता वल्लरियों, घनी झाडियों से भरा पूरे देढ एकड़ में फैला। ओंकारेश्वर श्मशान भूमि कुछ ही फर्लांग पर प्रेत यात्रा इसी पथ से जाती। सालों तक यह निर्मनुष्य ही रहा। लोग इसे भूतबंगला कहते थे। कुछ समाज कंटकों ने तो बाहरी दीवार पर लिख रखा था यहाँ भूतों

का डेरा है। इसमें कोई प्रवेश न करे पर तिलकजी का तो इस पर कोई विश्वास ही नहीं था। फल ज्योतिष का तो वे मानते ही नहीं थे । अतः अपने केसरी और मराठा के लिए उन्होंने इस भुतहे बंगले को खरीदने का मानस बना लिया। बड़ौदा दरबार के साथ बातचीत की गई सौदा पक्का हो गया और यह खरीद लिया गया। 23 अक्टूबर सन् 1905 को पुणे म्युनसिपल्टी ने इस भवन की मरम्मत और रहने लायक कुछ कमरे बनाने की लिखित मंजूरी दे दी। रहने लायक कमरे बनाने के लिए आठ हजार और केसरी मराठा छापाखाने के लिए सात हजार कुल पन्द्रह हजार खर्चा बैठा था। गायकवाड वाड़ा खरीदने को रजिष्ट्री खर्चा पन्द्रह हजार चार सौ रुपये दिये गये थे।

गायकवाड वाड़ा भवन में नीचले तल्ले पर हॉलनुमा कमरा उससे सट कर जच्चा बच्चा कमरा उसके बगल में कोठी भंडार घर बीच में पूजाघर उठने बैठने की जगह पिछवाड़े की ओर रसोई घर बीच में थोड़ी खाली जगह उसके बाद स्नान घर इस प्रकार की रचना थी। उसी के ऊपर दूसरे तल्ले पर दिवानखाना उसी में पार्टिशन कर मिलने जुलने आने वालों के लिए बैठने की व्यवस्था थी। रसोई घर में ऊपर जाने के लिए एक गोलाकार सीढ़ी रास्ता बनाया गया था। चावल की माड़ सरम गोंद और गुड की लापसी घोल कर बनाया गया हरा रंग और गुलाबी रंग दीवारों पर पुता था। तिलकजी को ये दोनो रंग बहुत पसन्द थे। मकान की मरम्मत का काम देखने के लिए तिलक जी प्रतिदिन दोपहर में बिंचूरकर बाड़ा से जाया करते थे। यह विंचूरकर बाड़ा भवन सदाशिव पेठ में था। इस मकान में तिलकजी पूरे तेरह साल किरायदार थे। उसके पहले देक्कन रोड तांबे वाड़ा शनिवार पेठ मांडेवाडा नारायण पेठ जठार बाड़ा में भी थोडे थोड़े समय तक किरायदार रहे थे। इसी विचूरकर वाडा में तिलकजी ने केसरी और मराठा छापा था। 1897 में केसरी और मराठा का कार्यालय यहीं था। तिलकजी के भांजे यहां की सारी व्यवस्था देखते थे गणेशोत्सव की शुरूआत भी यहीं हुई थी। तिलकजी ने अपनी बड़ी बेटी कृष्णा की शादी भी बड़े धूमधाम से इसी मकान में की थी। इसी भवन में स्वामी विवेकानंदजी पधारे थे। सत्यभामाबाई ने इसी भवन में पटरे पर बैठा कर उन्हें सुस्वादु भोजन कराया था। इसी विंचूरकर बाड़ा में तिलकजी लॉ के क्लासेंस लिया करते थे। तिलकजी विधिवेत्ता थे। उनके क्लास ने पूना के बाहर से दूर दूर से लॉ के क्लासेस के लिए लोग आया करते थे। इतनी उनके क्लास की लोकप्रियता थी। पूना में प्लेग की महामारी का प्रकोप हुआ उस समय तिलकजी ने क्लासेस लेना बन्द कर दिया। कारण यह संसर्गजन्य रोग था। उसके बाद फिर कभी उन्होंने क्लास नहीं लिये। सरदार विंचूरकरजी के निधनोपरान्त उनकी पत्नी ताई साहब ने जायजाद का बँटवारा कर दिया बाड़ा भी बिक गया।

गायकवाड बाड़ा जब रहने लायक बन गया तब तिलकजी ने अपने परिवार के साथ गृह प्रवेश किया। एक पालखी में पति पत्नी, तीन बेटे, दो बेटियां, उनके दो भांजे धोंडोपन्त और गिरधर पंत। तिलकजी का अस्थि कलश यहीं रखा गया था। आज इस भवन को तिलक मंदिर के नाम से लोग जानते हैं। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम को मूर्त रूप प्रदान करता तिलक स्मारक मंदिर में तिलकजी के कपड़े धोती कुर्ता, बंडी, उत्तरीय, उनकी पगड़ी, छड़ी, पादत्राण, स्याही की दवात, कलम, उनका सुपारी काटने का सरीता, जिस रेशमी वस्त्र का परिधन कर वह भोजन करते थे वह वस्त्र, जिस पटरे पर बैठ कर वे भोजन करते थे वह पटरा, लोटा, पानी पीने का फुलपात्र, थाली, कटोरी वे जिन वस्तुओं को व्यवहार में लाते थे सभी संरक्षित है। यह स्मारक भारतीय जनता का श्रद्धा स्थान है। आज भी सदाशिव पेठ रास्ते से चलते लोग डॉक्टर, वकील, इंजिनियर, व्यापारी इस मंदिर को नत मस्तक हो प्रणाम किये बिना आगे नहीं बढ़ते हैं। पुणे के कुछ लोगों का तो नित्य का यह नियम है वे प्रातःकाल इस मन्दिर की धूल अपने मस्तक पर लगा

लेने के बाद ही अपनी दिनचर्या शुरू करते है। अव्यक्त श्रद्धा भाव।

यह गायकवाड वाड़ा तिलक मंदिर भारत के अनेक महापुरुषों के भाग्योदय का केन्द्र रहा है। हजारों नाम है। पर कुछ के नाम यहां बताने का लोभ संवरण न कर पाने के कारण दे रही हूं। सेनापति बापट, गंगाधर राव देशपांडे, शिवराम परांजपे, नेताजी सुभाष चन्द्र बोस, मोहनदास करमचन्द गांधी, गोपाल कृष्ण गोखले, ज्ञानकोशकार केतक, नाटककार कृष्णाजी प्रभाकर खाडिलकर, गुरूदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर, एम एन राय, चक्रवर्ती राजगोपालाचारी, सरहद गांधी, डॉ. राधाकृष्णन, गोविन्द वल्लभ पन्त, सरदार वल्लभ भाई पटेल, मार्गारेट थैचर, बिल गेटस, अटल बिहारी बाजपेयी जैसे मान्यवरों ने इस ज्ञानमंदिर की धूलि अपने मस्तक पर लगाई है। कायदे आजम जिन्ना ने तो तिलक का वकीलपत्र ही लिया था। इसी भूमि में 17 दिसम्बर सन् 1914 को गोपाल कृष्ण गोखले ने तिलकजी को कांग्रेस प्रवेश न करने के लिए कहा था तब तिलकजी ने बड़े आत्मविश्वासपूर्वक उत्तर दिया था कि कांग्रेस सबकी है। किसी एक की मक्तेदारी नहीं है। मैं कांग्रेस में आऊंगा और कांग्रेस को काबिज करूगा। इस तिलक स्मारक मंदिर में मदाम कामा द्वारा फहराया गया तिरंगा ध्वज भी है। अपने जिरह का भापण जो विश्व के इतिहास में एकमेवा सिद्ध हुवा। उसे भी दीवार पर उकेरा गया है। तिलकी जी के निधनोपरान्त तिलक महाराट्र विद्यापीठ राष्ट्रीय शिक्षण का आद्य विद्यापीठ की स्थापना की गई। निमित्त हुवा वसई में महाराष्ट्र प्रान्ति का अधिवेशन 6 मई को हुआ जिसने प्रस्ताव पारित किया किया गया कि तिलकजी ज्ञानयोगी थे। ज्ञानकेन्द्र स्थापित किया जाय। दिसम्बर 1920 में तिलक विद्यापीठ की स्थापना की गई। सन् 1924 में पदवी दान समारोह में मुख्य अतिथि थे महात्मा गांधीजी। 9 सितम्बर सन् 1924 के केसरी में उनका भाषण छपा था।

स्वराज्य स्वदेशी बहिष्कार और राष्ट्रीय शिक्षण ये चार आयुध थे। स्वदेशी में स्वदेशी वस्तु का विकास और उसका विकास और विस्तार व्यवहार उपयोग। स्व का राज्य होगा तभी स्वराज्य में देश की निर्मिति होगी। बहिष्कार किसलिए। तो बहिष्कार के बिना अपने देश में किये गये उत्पादन को उठाव नहीं मिलेगा। राष्ट्रीय शिक्षण इसलिए कि हमारे लोग अपने पैरों पर खड़े हो सके। मांडाने जेल में कार्तिक शुद्ध प्रतिपदा 2 नवम्बर 1910 को उन्होंने गीता रहस्य लिखने की शुरूआत की और साढ़े तीन महीने में संपूर्ण गीता रहस्य के पन्द्रह अध्याय पेन्सिल से लिखे। उन्होंने कहा था कि मैंने जिस शती में जन्म लिया है उस शती के लिए भूषण ऐसे ग्रन्थ की मैं रचना करूंगा। प्रखर बुद्धिमत्ता और आत्मविश्वास। तिलकजी की रिहाई हुयी पर ब्रिटिश सरकार ने उनका लिखा साहित्य जब्त कर लिया था। तिलकजी को मुम्बई से पुणे पुलिस की बन्द गाड़ी में लाया गया। पुलिस की गाड़ी गायकवाड वाड़ा के सामने आकर खड़ी हुई। तब भोर के चार बजे थे। रखवाल दार ने पुलिस की गाड़ी देख दरवाजा नही खोला तब तिलकजी गाड़ी से उतरे। फाटक खोला। सामने तिलकजी को देखा उसे तो अपनी आंखों पर विश्वास ही नहीं हो रहा था। तिलकजी ने उसके कन्धे पर हाथ रखा। कदम आगे रखा ही था कि पग ठिठक गए। उस गायकवाड वाड़ा में आज उनकी जीवनसंगिनी नहीं थी। बाड़ा भकास लगा। भारी दुख को दबाये उन्होंने घर में प्रवेश किया और झूले पर आकर बैठ गए। आंधी की तरह खबर फैल गई पूरे पूने शहर में। तिलकजी जेल से छूट कर आ गये हैं। जत्थे के जत्थे ऐसी भीड़ ऐसी भीड़ कि पुलिस से भी रोका नहीं गया। पुणेवासी अपने सर्वस्व प्रिय नेता के दर्शन करने के लिए गायकावाड बाड़ा की ओर दौड़ रहे थे। तिलकजी मौन झूले पर बैठे थे तभी धोंडोपन्त उनके एक साथी चित्रकार ने सत्यभामाबाई का चित्र बनाया था, उस चित्र को उनके सामने करते हुए धोंडोपन्त बोले हैं न एकदम मामी। तिलकजी ने उस पर एक

नजर डाली और बोले इसमें कुछ कमी रह गई है। धोंडोपन्त बोले पर मामी तो ऐसी ही थी । मन्द मुस्काते बोले तुम मुझसे ज्यादा जानते हो। कितनी सूक्ष्म दृष्टि।

गीता रहस्य छपी चित्रशाला प्रेस पुणे में। पुस्तक का मूल्य रखा गया तीन रुपये। उनके एक मित्र ने आग्रह किया कि ग्रन्थ की किमत पांच रुपये रखी जाय। तब तिलकजी गरज पड़े बोले मुझे नफा नहीं कमाना है। गीता भगवन्त का आख्यान है। सर्व सामान्य आदमी खरीद सके यह मैं चाहता हूं। बायबल तो आठ आने में बिकती है। मित्र की बोलती बन्द। सन् 1915 के जून महीने में गीता रहस्य गायकवाड बाड़ा के चबूतरे पर बिक्री के लिए रखी गई। एक व्यक्ति एक प्रति छह हजार प्रतिया छह हजार लोगों के पास पहुंचने के बाद पुनर्मुद्रण किया गया। उदात्त विचारों के धनी तिलकजी ने कहा मुझे युवाओं को कर्मयोग सिखलाना है। युरोपियनों को नहीं। हमारे लोग कर्म भूल गये हैं। आज जो हमारी दुर्दशा हुई है उसका मुख्य कारण है कर्मयोग भूलना। गीता में निरूपित जीवन मार्ग प्रत्येक युवक आचरण करें समृद्ध जीवन यापन करे इसके लिए जागरूक रहें। गीता में बताये गये मार्ग पर चले इसलिए मैंने गीता रहस्य का लेखन मराठी में किया है। भगवद गीता में पुरूषोत्तम वत लोकमान्य तिलकजी हैं राष्ट्र पुरूषोत्तम। इस नर केसरी ने स्वराज्य संपूर्ण स्वराज्य परिपूर्ण स्वराज्य के परम पवित्र तत्व के लिए याने मनुष्य के जन्मसिद्ध अधिकार के लिए भारतवर्षीय कर्मयोग शास्त्र का अपूर्व दान और वह भी गीतारहस्य के माध्यम से विश्व को प्रदान किया। उनकी देन अमूल्य है। ऐतिहासिक है। परिणामों का विचार करें तो कालातीत सामर्थ्य की यह संजीवनी बूटी है। गायकवाड बाड़ा की एक-एक ईंट और बहती हवा का एक एक झोका कह रहा है बाल ! तुम कहीं नहीं गए हो। यहीं इस माटी में हिन्दुस्तान के कण कण में समाये हुवे हो।

हम भारतवासी आपको शत सहस्त्र कोटि नमन करते हैं।

डॉ. विद्या केशव चिटको
सेवानिवृत्त निदेशक, पुणे विद्यापीठ
मो. 952731387

●

उजली वाणी

ईसा अपने शिष्यों के साथ जा रहे थे। रास्ते में एक आदमी मिला। वह ईसा को जी-भर गालियाँ देने लगा।

ईसा सुनते रहे, उसके चुप होने पर उन्होंने कहा–'मित्र! तुम्हारा भला हो। तुम्हारा कल्याण हो।'

एक शिष्य कहने लगा– 'आप इसको क्यों आशीषें दे रहे हैं, यह तो अधम आपको बिना वजह गालियाँ सुना रहा है।'

ईसा– 'मैं क्या करूँ, मेरी जेब में जो सिक्के होंगे, वे ही तो मैं दूँगा।'

जिनके हृदय में शुभ विचारों के सोने के सिक्के होंगे, वे ही मुँह से शब्द बन झरेंगे।

वाणी ही पहचानिए, चोर साधु की घाट।
जो करणी अंदर बसै, निकले मुख की बाट।।

शब्द एक सिक्का है। शब्द एक ज्योति है। शब्दों में चेतना का स्पर्श हो तो वाणी उजली बनती है।

दिन दिन वाणी उजली, चढ़े सवाया रंग।

प्रतिस्वर

अंक 6/2023 के लेख 'भौतिकी और प्रारब्ध' के संबंध में

महत्वपूर्ण बिन्दुओं पर जानकारी दी जा रही है। विद्वान बंधुओं से निवेदन है कि भाषा की त्रुटि को न देखकर जिज्ञासु की भाँति विषय-वस्तु का अवलोकन करें। सूक्ष्म आध्यात्मिक अनुभव को समझना तभी संभव है, जब व्यक्ति योग साधनारत हो।

1 पृ 15 'प्रारब्ध क्या है'......: पिछले जन्मों (एवं वर्तमान) के कार्य से प्रारब्ध का सृजन होता है। पूर्वकृत कर्म के परिणाम का अनुबंध ही इस शरीर की उत्पत्ति का कारण है। (यो. ब्री श्यामाचरण लाहिड़ी)। प्रारब्ध अकाटय है, इसे भौतिकी अथवा ज्योतिष उपायों से नष्ट नहीं किया जा सकता है। अच्छे एवं बुरे कर्मफल का लेखा-जोखा पृथक-पृथक रहता है। अच्छे फल से बूरे का निस्तार नहीं होता है। हमारे कर्मफल का भण्डार सूक्ष्म शरीर में होता है, यह शरीर के दाहकर्म के उपरान्त भी नष्ट नहीं होता है, अगले जन्म में इसके अनुरूप शरीर मिलता है, एवं यह संलग्न हो जाता है।

(क) श्री गुरू ग्रन्थ साहिब में तीसरे सिख गुरू की वाणी/बानी के अनुसार '**माथे जो धुरि लिखिया, मेट न साके कोई**' जो लिखा जा चुका है वह ही घटित होता है, उसे कोई बदल नहीं सकता। (ख) एक समय योगिराज श्री श्यामाचरण लाहिड़ी (वाराणसी, 1828-98) एक शिष्य के साथ सड़क पर चले जा रहे थे, अकसमात एक पत्थर कहीं से आकर उनके पैर की अंगुली में लगा, रूधिर बहने लगा। शिष्य ने उनसे पूछा, आप तो जानते थे कि पत्थर आनेवाला है, फिर आपने बचने का प्रयत्न क्यों नहीं किया। उन्होंने उत्तर दिया- यदि स्वयं को इस भोग से बचाता, तब भविष्य में इसे ब्याज सहित भोगना होता। भौतिकी उपायों से प्रारब्ध नष्ट करना संभव नहीं है।

(ग) श्री गुरू गीता (स्कन्द पुराण) के अनुसार-- आत्म ज्ञान के प्रभाव द्वारा संचित कर्म भस्म हो जाते हैं।

गीता श्लोक 8/10,12,13 में वर्णित है यौगिक युक्ति जिसे योगी को प्रयाणकाल में करना चाहिए, जिससे परम गति प्राप्त होती है।

(घ) मृत्यु के समय यदि व्यक्ति प्रभु के अतिरिक्त अन्य विषय की चिन्ता करता है, तब निम्न योनि प्राप्त होती है। चौरासी लाख योनियां हैं।

2 पृ. 19 'ईश्वर (ब्रह्म)/ देवताओं, अन्य लोक का अस्तित्व'......:

(क) 17वीं सदी के संत तुकाराम को सात दिन की गहन तपस्या के उपरान्त सुनाई पड़ा-- मैं

तुम्हारे समक्ष सर्प रूप में खड़ा हूँ, आँखे खोलो। तुकाराम संतुष्ट नहीं थे, उन्होंने आँखें नहीं खोली। कुछ दिन और तपस्या के उपरान्त उन्हें चतुर्भुज विष्णु के दर्शन हुए थे। उन्होंने अपने अभंग में लिखा-- मैंने चमकीले नीले प्रकाश को देख लिया है, तप से मैंने विट्ठल (कृष्ण) के निराकार रूप का दर्शन पा लिया है।

(ख) नामदेव को बाल्यकाल में ही विट्ठल/पांडुरंग (कृष्ण) ने दर्शन दिये थे। वयस्क नामदेव एक बार दर्शन हेतु पंडहरपुर (महा.) पहुँचे। पुजारियों ने उन्हें गर्भगृह जाने से रोका और उन्हें मंदिर के पिछवाड़े जाने का निर्देश दिया, क्योंकि वह छीपा (छोटी जाति) के थे। उन्होंने पिछवाड़े जाकर इष्ट से अपनी व्यथा कहीं। तब चमत्कार हुआ मंदिर घूम गया एवं इष्ट उनके सामने थे (पुजारी अब पिछवाड़े थे)। यह घटना गुरू ग्रन्थ साहिब में उनकी वाणी में दर्ज है।

एक सिख गुरू ने भी उपरोक्त घटना का उल्लेख अपनी वाणी में किया था।

3 पृ. 18 'त्रुटिपूर्ण भाष्य व्याख्या, हनुमान इत्यादि': गीता के प्रायः 450 भाष्य हैं, इतने इसलिये हुए क्योंकि इनके लेखक को गीता का मर्म ज्ञात नहीं था। गीता श्लोक 9/2: यह आत्मविद्या अत्यन्त गुह्यतम है एवं अन्य सभी विद्याओं की अपेक्षा श्रेष्ठ है। यह विज्ञान गुह्य से भी गुह्यतम एवं पवित्र से भी पवित्रतम है। इससे पवित्र और कुछ नहीं। यह आत्मविद्या/विज्ञान प्रत्यक्ष, स्पष्ट, बोधगम्य तथा धर्मसम्मत है। गीता के प्रत्येक अध्याय के अन्त में 'ब्रह्म विद्या-योग शास्त्र' का उल्लेख भी देखा जा सकता है। आत्मज्ञान युक्त योगी/संत ही इसे भली भाँति उजागर कर सकता है, फिर भी यह सामान्य व्यक्ति की समझ के परे ही रहेगा।

चेतना के अधिक विकास के उदाहरण अनेक पशुओं में देखने को मिल जाते हैं।

(1) रामलला मूर्ति के निर्माण के समय एक बन्दर संध्या चार बजे के आस-पास पहुँच कर मूर्ति को निहारता था। (2) गुजरात के एक मंदिर में आरती के समय नियमित रूप से एक घोड़ा अकेला ही पहुँच जाता है। (3) एक संत के चरण छूने एक गाय प्रातः नियमित रूप से पहुँच जाती है। (4) म.प्र. के एक वनक्षेत्र में स्थित देवी मंदिर में भालू नियमित रूप से पहुँचते हैं, भक्तों को किसी प्रकार की हानि नहीं करते हैं। (5) सर्प पूजा के समय शिवलिंग से लिपट जाता था।

हनुमान आठ चिरंजीवियों में एक हैं।

पृ. 19 अन्य लोक, देवता इत्यादि : (ग) श्रीरंगम (कर्ना.) के संत रामानुजाचार्य को प्रभु के वरदान अन्तर्गत, वैकुण्ठ लोक के दर्शन प्राप्त हुए थे। उन्होंने अपनी रचना वैकुण्ठ गद्यम में पृथ्वी से वैकुण्ठ लोक की दूरी, वहाँ की भव्यता, शेषनाग, विष्णु, महालक्ष्मी इत्यादि का विस्तृत वर्णन किया था। (घ) क्रिया योगी (Sri M), बंगलौर ने अपनी पुस्तक 'Apprenticed to a Himalyan Master' एवं 'The Journey Continues' में लिखा था-- दो अवसर पर अंतरिक्ष यान से पहुँचे नागलोक के नंबर-2 कर्ता-धर्ता को देखा था, दूसरी बार वे मनुष्य रूप में थे, नीलवर्ण एवं नग्न, वे रूप बदलने में सक्षम थे। (च) 1879 ई. के ब्रिटिश राज में लैफ्टिनैन्ट कर्नल मार्टिन मालवा जिला (म.प्र.) के अगर क्षेत्र में कार्यरत थे। उन्हें अफगानिस्तान के विरूद्ध युद्ध लड़ने जाना पड़ा था। वह अपनी कुशल-क्षेम की सूचना नियमित रूप से लेड़ी मार्टिन को भेजते रहते थे। किन्तु एक समय, अनेक दिनों तक लेडी मार्टिन को उनका कोई समाचार प्राप्त नहीं हुआ, वह चिन्तित हो गई। एक दिन वह अपने घोड़े पर बैठकर जा रही थी, मार्ग में उन्हें जीर्ण बैजनाथ मंदिर से शंखध्वनि एवं सुगंध पहुँची। वह मंदिर के अंदर गई और पुजारी से अपनी व्यथा साझा की। पुजारी ने सुझाव दिया कि वे 11 दिन तक 'ऊँ नमः शिवाय' का जप करें। लेडी मार्टिन ने मन्नत मानी, यदि मार्टिन सकुशल लौट आये, तब वह मंदिर के जीर्णोद्धार करने में सहयोग करेंगी। 11 वे दिन उन्हें मार्टिन से समाचार मिला लिखा था-- युद्ध बहुत भयानक हो गया था और पठान सैनिकों ने उन्हें घेर लिया था, तभी एक भारतीय साधु प्रकट हुआ, उसके हाथ में त्रिशुल था। उनकी कृपा से बुरा समय विजय में बदल गया। साधु (शिव) ने कहा कि वह लेड़ी मार्टिन की भक्ति से अत्यन्त प्रसन्न हुए एवं उन्हें संकट से बचाया। मार्टिन के लौटने पर दोनों मंदिर पहुँचे। 1883 ई. में उन्होंने मंदिर के जीर्णोद्धार हेतु 15000 रु. दिये, यह एक शिलालेख में अंकित है। इससे सिद्ध हुआ कि ईश्वरीय सत्ता सभी स्थानों पर विद्यमान है।

(झ) भद्राचलम (वेलंगाना) में रामदास हैदराबाद नवाब के कर संग्रह अधिकारी थे। एक समय वहाँ की पहाड़ी पर एक भील महिला को राम, लक्ष्मण, सीता की एक प्रस्तर मूर्ति मिली, वह उसे नीचे ले आई। गाँव निवासियों ने इसे एक झोपड़ी में रख दिया। रामदास को मंदिर बनाने का भाव उदित हुआ, उन्होंने संग्रहित कर राशि का उपयोग निर्माण कार्य में लगा दिया। नवाब को इसकी सूचना पहुँचने पर, रामदास को गोलकुन्डा किले के भूमिगत कारागार में कैद कर दिया। कुछ दिनों के उपरान्त एक रात्रि दो तेजोमय पुरुष नवाब के कक्ष में प्रकट हुए और उन्होंने नवाब को एक थैला देते हुए कहा कि इसमें मुहर (स्वर्ण) है जिन्हें रामदास की ओर से दिया जा रहा है। जाँच लें। नवाब ने उन राम मुहर को गिन कर संतोष प्रकट किया। अगले दिन नवाब ने घटना के सम्बंध में अपने शीर्ष अधिकारियों को बताया, तब उसे पता चला दोनों पुरुष राम एवं लक्ष्मण थे। रामदास को कारागार से मुक्त कर दिया गया। रामदास से किसी ने प्रश्न किया कि राम के अनन्य भक्त होने पर आपको कारागार में क्यों रहना पड़ा। उन्होंने बताया कि एक जन्म में उन्होंने एक तोते को पिजड़े में बंद कर रखा था, यह उसी कर्म का फल था। नवाब को भद्राचलम राम मंदिर के हेतु आदर जागा, वह वर्ष में एक बार भेंट भेजने लगा, उसके वंशज अभी भी उस परम्परा का पालन करते हैं।

4.पृ.19 एवं 20ः सृष्टि के मूल कण, वृहद जगत को चैतन्यता, ब्रह्म इत्यादिः

(क) श्री गुरु गीता (स्कन्द पुराण) के अनुसार-- वह तत्व (गुरुअथता ब्रह्म) गतिशील है, अचल है, वह दूर है, वह समीप है। वह तत्व सबके (समग्र विश्व के) भीतर है, तथा वह सबके बाहर भी है।

अंह शब्द से वर्णित वह तत्व अज, अजर, अनादि और मृत्यु रहित है। निर्विकार, चिरानन्द स्वरूप, अणु से सूक्ष्म और महत से महान है।

वह तत्व अपूर्व (यानि जिससे पूर्व कुछ नहीं था उस) से भी परे हैं, वह नित्य, स्वंयप्रकाश, निरामय, मलरहित, परमाकाशस्वरूप, अविचल, आनन्दस्वरूप, क्षयरहित है।

(ख) योगिराज श्री श्यामाचरण लाहिड़ी-- यह विश्व मन की कल्पना मात्र है। जब क्रिया योग की परावस्था में रहते हो, तब स्वयंबोध स्वरूप तुम ही हो। इच्छा ही संसार है, जब इच्छा नहीं, तब संसार भी नहीं, वही मोक्ष है। जो इच्छारहित है, उनके निकट सभी कुछ ब्रह्ममय हो जाता हैं, फिर द्वैत की स्थिति नहीं होती। श्वास को पीकर (केवल कुम्भक अवस्था) स्वयं को खोजो, उस स्थिर अवस्था की प्राप्ति से ही जन्म-मृत्यु प्रवाह भी समाप्त हो जायेगा।

(ग) स्वामी विवेकानन्द 'This Universe has not been created by any casmic God, nor it is the work of any outside Genious. It is self creating, self dissalving, self manifesting. One Infinite Existence, the Brahman.'

(च) संत शिवा लिंगप्पा (1867-1930) ने अपना अनुभव इस प्रकार व्यक्त किया था-- 'गुरू ने आँख के भीतर एक अन्य आँख दिखा दी। दैवी स्वरूप सूक्ष्म था, जिसे ज्ञान चक्षु से देखा जा सकता है।'

(छ) योगिराज श्री श्यामा चरण लाहिणी-- योगीगण ओंकार क्रिया के माध्यम से दूरस्थ (गीता--12/3, 4 एवं 14/3,4) में एक त्रिकोण का दर्शन करते हैं।

योग की भाषा में वह त्रिकोण ही ब्रह्मयोनि है, वहीं से सब कुछ उत्पन्न होता है। उसके भीतर मन का प्रवेश करना है। लिंग रूप मन के प्रविष्ट होने पर एक बिन्दु अर्थात ब्रह्माण का दर्शन होता है, वही बीज स्वरूप विश्व-ब्रह्माण्ड का उत्पत्ति स्थान है।(गीता 14/3,4)। श्री गुरु गीता में भी त्रिकोण का लेख है। (ज) योगियों के लिये एक ही समय में कई स्थानों में दिखना सम्भव है। जब वह सर्वज्ञय हो जाते हैं (मम आत्म सर्व भूताव्या), तब वह किसी व्यकि का वर्तमान, भूत एवं भविष्य जान सकते हैं। प्रत्येक प्रश्न का उत्तर उन्हें त्वरित एवं स्वाभाविक रूप से प्राप्त हो जाता है।

5. शाश्वत सत्यः (क) काम्बलाख्य उपनिषद, उत्तरवल्ली-- अंगुष्ठ मात्र पुरुष मध्य आत्मनि तिष्ठतीः अर्थात कूटस्थ के भीतर अंगुष्ठ प्रमाण पुरुष आत्मा का निवास है।

(ख) कठोपनिषद (नचिकेता-- यमरान संवाद) श्लोक 4/12- अंगुष्ठ मात्र पुरुष के मध्य आत्मा स्थित है। उसे भूत एवं भविष्य का स्वामी जानकर, व्यक्ति दुख नहीं करता। यही वह है।

श्लोक 4/13- अंगुष्ठ माप वाला पुरुष (अंगुष्ठ मात्र)

ऐसी ज्योति है, जिसमें धुआँ नहीं होता। वह भूत एवं भविष्य का स्वामी है। वह आज एवं आने वाले कल में एक जैसा/समान रहता है (अपरिवर्तनशील)। यही वह है।

(ग) 'अंगुष्ठ प्रमाण पुरुष' एक आध्यात्मिक अनुभव है। श्री गुरू गीता में इसका उल्लेख इस प्रकार है-- चिन्मय हृदय में अंगुष्ठ-प्रमाण (नाप) पुरुष का ध्यान करने से जो भाव स्फुरित होता है, वह मैं (शिव) तुम्हें (पार्वती) बताता हूँ:- हे पार्वती ! ब्रह्म का निज स्वरूप अगोचर, अगम्य, नाम-रूप रहित, निशब्द (शब्द रहित) है, उसे जानना चाहिए।

(घ) गोता श्लोक 12/3 में कूटस्थ शब्द देखा जा सकता है (शाब्दिका अर्थ- अपरिवर्तशील, लोहार की 'नाल' जैसा, जिस पर वह अनेक प्रकार की वस्तुएं गढ़ता है) श्रीमद्भागवत में एकादश स्कन्ध, तीसरे अध्याय में शब्द 'कूटस्थ आत्मा' देख जा सकता है। 11 वां अध्याय- जो पुरुष वेदों का तो पारगामी विद्वान हो, परन्तु ब्रह्म के ज्ञान से शून्य हो, उसके परिश्रम को कोई फल नहीं है।

(च) आदिशंकराचार्य द्वारा रचित 'शिवानन्द लहरी' में- जहाँ भी दृष्टि डालते हैं ब्रह्म से भिन्न कुछ भी नहीं है। 'We are that self that permeates all existence, and part of Divinity that indavelss all creation.'

रामानुजाचार्य (117-1137)-- Every particle of Atom of Prakariti contains 'Jiva' (Divine lif) and is the shavira/body of the supreme. Sprit, as ParBrahaman pervades every particle of Matter. Swami Ramtirtha (earlier a Prof.) - 'He saw his own self beaming in the shole of universe.

6. पृ. 24 एवं 22: 'इसे प्रभावित करने वाला... (क) जब कुछ घटित होना होता है तब प्रकृति इस प्रकार के कारण स्थिति उत्पन्न करती है, कि जो घटने वाला है, वह अवश्य घटित होता है।

(घ) 'ईश्वर के स्वरूप'.... इस से सम्बंधित जानकारी ऊपर दी गई है।

(ग) 'इस कण की गति इतनी तीव्र है'.....।

(क)-4 पर बिन्दु/परमाणु के संबध में लिखा गया है इसकी गति तीव्र होती है।

(ख) श्री गुरू गीता में भी दो स्थान पर बिन्दु का उल्लेख है।

(ग) कूटस्थ का मध्य बिन्दु का माप-- 1/4000 केशाग्र (केश का सिरा)।

सूक्ष्म होने के कारण वहाँ मन की भी गति नहीं। एक मात्र सर्वगामी आत्म का ही वहाँ प्रवेश है। मन अणु परिमाण है, जिसका माप-- 1/84 केराग्र।

7. पृ. 24 (क) अनेक लोक....: इस विषय में ऊपर लिखा जा चुका है।

(ख) मंत्रों का प्राचीन विज्ञान....: मंत्रों से अग्नि प्रज्जवलित की जा सकती है, वर्षा भी सम्भव है। गायन विद्वान तानसेन दीपक एवं वर्षा राग के ज्ञानी थे। वृन्दावन के हरि भक्त हरिदास (तानसेन के गुरु) ने अपनी भक्ति एवं संकल्प से कृष्ण मूर्ति प्राप्त की थी। यह मूर्ति कुछ समय निधिवत में थी, इसके उपरान्त इसे मंदिर में स्थापित किया गया, जिसे बांके-बिहारी मंदिर से जाना जाता है। गायत्री मंत्र के सूर्य से आत्म सूर्य का आशय था।

(ग) प्रारब्ध नियंत्रण.....: इसे सदकर्म एवं साधना द्वारा कुछ मात्रा/सीमा में नियंत्रित करना संभव है।

(घ) ज्ञान से चेतना विस्तार.....: यह उत्कृष्ठ साधना से ही संभव है, जब अन्तदृष्टि से वास्तिवक ज्ञान की प्राप्ति होती है, जिसके हेतु समर्थ आध्यात्मिक गुरू की अत्यन्त आवश्यक होती है।

8 पृ. 25 (क) जीवन से परे....: तिब्बती लेखक ही लोबसांग रम्पा के अनुसार-- मृत्यु के कुछ समय उपरान्त मृतक को अपनी जीवन लीला एक चलचित्र की तरह दृष्टिगोचर होती है, जिसका वह विश्लेषण करता है, एवं निर्णय लेता है कि अगले जन्म में सुधार हेतु वह क्या करेगा।

संत तुकाराम ने लिखा था कि, जीवन काल में अमर्यादित कर्म करने के कारण नरक में किस प्रकार की यातनायें दी जाती है।

(ख) चैतन्यता को योग/साधना से समझा जा सकता है।

(ग) ब्रह्माण्ड में...., इसी प्रकार प्राणविक स्तर भी....: ज्ञान संकलिनी तंत्र 8......

सारी विद्यायें, समस्त देवता और सारे तीर्थ इस देह में

वर्त्तमान है, जिसे गुरु की शिक्षा द्वारा (षट्चक्रों के माध्यम से) जानना पड़ता है।

ज्ञानसंकलिनी क्षेत्र 29-30: विश्व ब्रह्माण्ड में जो कुछ भी है, सब मानव देह के भीतर है। साकार वस्तु नाशवान है, किन्तु निराकार का विनाश नहीं होता। निराकार मन में शुद्ध ज्ञान की प्राप्ति होती है, इसलिये साकार को आस्थायी जानकर, हर प्रकार में से उसका परित्याग करना चाहिये। महात्मओं ने भी व्यक्त किया-- 'जो ब्रह्माण्डे, सो पिण्डे (शरीर में)'।

योगी को आत्मज्ञान प्राप्त होने पर यह अनुभव हो जाता है कि--- जगत/ ब्रह्माण्ड में उसी का विस्तार है। उसमें एवं ब्रह्म में भेद न होने के कारण वह सर्वशक्तिमान है, जो वह कहे- वह वेद है। योगिराज श्री श्यामाचरण लाहिड़ी को ऐसा अनुभव हुआ था कि-- उनके दो अन्य अदृण्य बाहें निकल आई थीं (चतुर्भुज अवस्था)।

संदर्भ : 'पुराण पुरुष योगिराज श्री श्यामाचरण लाहिड़ी'

जितेन्द्र नाथ जौहरी
ई-234, सेक्टर 14; हिरण मगरी, उदयपुर
मो: 8003188087

महाराणा प्रताप की 483वीं जयन्ती पर प्रकाशित संग्रहणीय अंक के सम्पादकीय में प्रताप के बारे दी गई कुछ जानकारियों में संशोधन हैं। भारमल की बेटी का दिया सही नाम हीराकँवर/ हरखूबाई बहुत कम लोगों को ज्ञात होगा। वरना तो मुगले आजम फिल्म के कारण उसका नाम जोधाबाई ही प्रसिद्ध हैं। लेकिन राजा भारमल के पुत्र का नाम भगवानदास नहीं भगन्तदास था। यही आम्बेर का राजा बना था। भगवानदास उसका छोटा भाई था।

महाराणा उदयसिंह द्वारा छोटे बेटे प्रताप को उत्तराधकारी बनाने से जगमाल और शिक्तसिंह का चित्तौड़ से चला जाना सही नहीं है। वस्तुतः राणां उदयसिंह अपनी छोटी रानी धीरकँवर के प्रति अधिक आसक्ति के कारण यह उसके पुत्र जगमाल को अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहता था। इस कारण कुम्भलगढ़ से शिक्षा पूरी कर चित्तौड़ आने पर प्रताप को वहाँ रहने भी नहीं दिया था। अपने दस साथियों के साथ उसे किले की तलहटी में निवास करने का आदेश प्रताप का गढ़ से निष्कासन जैसा ही था। शिक्तसिंह प्रताप का सगा छोटा भाई था, जिसे उदयसिंह द्वारा एक छोटी सी बात पर नाराज होकर मेवाड़ से निकाल देने पर अकबर से उसे सम्मान अपने पास रखा था। किन्तु उसके चित्तौड़ पर हमले का इरादा जान कर महाराणा को सतर्क करने वह चित्तौड़ आ गया था। लेकिन उसे अविश्वसनीय मान कर गढ़ में प्रवेश न करने देने पर वह डूंगरपुर चला गया था। चित्तौड़ और हल्दीघाटी युद्धों के समय वह वहीं था। किसी भी युद्ध में किसी भी ओर से भाग नहीं लिया था। बाद में प्रताप ने उसे भैंसरोड़गढ़ की जागीर देकर मेवाड़ के सोलह प्रमुख सामन्तों में सम्मिलित किया था। उसके वंशज शक्तावत भी चूण्डावतों के समान हो प्रतिष्ठा प्राप्त करते रहे थे।

धीरकँवर के बारबार उकसाने के बावजूद उदयसिंह प्रताप को लोकप्रियता और सामरिक सफलताओं के कारण जगमाल को अपना पाटवी राजकुमार घोषित करने का साहस नहीं कर पा रहा था। अपने आसपास रहने वाले कुछ जागीरदारों से उड़ती सी चर्चा के रूप में करने से अधिक कुछ करने का साहस उसमें नहीं था। लेकिन जगमाल तो स्वयं को अगला महाराणा मान कर उसी के अनुरूप आचरण करने लगा था। उदयसिंह के दाहसंस्कार के समय साथ श्मशान जाने की जगह वह सिंहासन पर बैठ गया। जिसे श्मशान से लौटे कृष्णदास चूँड़ावत आदि सरदारों ने उसे हाथ पकड़ कर उठा कर प्रताप को गद्दी पर बैठाया था।

इसी प्रकार अकबर ने प्रताप के साथ समझौता करने के लिए तीन नहीं, चार बार प्रतिनिधि मण्डल भेजे थे। सर्वप्रथम **जलाल खां** कोर्ची आया था। इसके बाद **कुँवर मानसिंह, राजा भगवन्तदास और राजा टोडरमल** को भेजा था। वार्ताओं में मिली असफलता के बाद ही हल्दीघाटी युद्ध हुआ था।

अजीत बच्छावत के हल्दीघाटी युद्ध लेख के बारे में तो क्या कहूँ। उनकी हर बात मान लेने पर भी शिक्तसिंह का क्या करें? वह तो हल्दीघाटी युद्ध में किसी भी रूप में नहीं था। मुगल सरदारों द्वारा पीछा करना और शिक्तसिंह द्वारा उन्हें मार कर प्रताप की रक्षा करने की बात भी पूरी तरह गलत है। लेखक की कलम का एक और करिश्मा।

उन्होंने तो आठ वर्ष बाद हुए हल्दीघाटी जैसे ही महत्वपूर्ण **दिवेर युद्ध** में प्रताप के हाथों मारे गये **बहलोल खां** को हल्दीघाटी में ही मरवा दिया। दिवेर युद्ध में कुँवर अमरसिंह का भाला दिवेर थाने के थानेदार और अकबर के चाचा **सुलतान खां** को घोड़े सहित चीर गया था। याने अमरसिंह भी अपने पिता कम बलवान नहीं था।

हल्दीघाटी के अति महत्वपूर्ण प्रसंगों के बारे में भी लेखक ने कुछ नहीं लिखा। युद्ध के एक दिन पूर्व तीन सौ सैनिकों के साथ शिकार खेलने गये मानसिंह को जंगलों में ही घेर कर मार डालने के विचार को महाराणा द्वारा अस्वीकार कर देने से ही मानसिंह की प्राणरक्षा हो सकी थी। यह बात वह अगले दिन युद्ध छिड़ते ही मानसिंह समझ गया था। उसने भी चेतक सहित बुरी तरह घायल प्रताप को मारने के लिए आगे बढ़ते अपने महाबलवान छोटे भाई विजयसिंह को रोकते हुए कहा कि प्रताप हिन्दुआणा सूरज है। इसे किसी भी स्थिति में मारना नहीं है।

युद्ध समाप्ति के बाद भागती मेवाड़ी सेना का पीछा न करने और मेवाड़ी इलाके लूटने से रोक देना तो अकबर को भारी नाराजगी का कारण बन गया था। अकबर की मद्य गोष्ठियों सम्मिलित होने का सम्मान प्राप्त करने वाले मानसिंह को छह माह तक **ड्योढो बन्द** की सजा दी थी।

ग्वालियर के अपदस्थ राजा का नाम **रामशाह** था, **राजाराम** नहीं। ग्वालियर छिन जाने के बाद उसने मेवाड़ में शरण लेती थी। युद्ध में वह अपने तीनों पुत्रों के साथ मारा गया था। पौत्र गम्भीर रूप से घायल हो जाने के बाद भी बच गया था। उस युद्ध में ब्राह्मणों और चारणों ने भी भाग लिया था। लेकिन उनका भी कहीं उल्लेख नहीं है। मैंने उपन्यास **महाराणा प्रताप** ने इन समस्त बातों की पूरी जानकारी दी है।

डॉ. आनन्द शर्मा
645 किशोर कुंज, 645 किशनपोल बाजार
जयपुर- 302001
मो.- 9462312222

उत्तर की तलाश

आओ, हम इन प्रश्नों के उत्तरों की तलाश करें। अपने को परखें– अपनी सही जानकारी लें।

‘क्या तुम ऐसे राजनीतिज्ञ हो जो स्वतः कहता है– ‘मैं अपने फायदे के लिए अपने देश का इस्तेमाल करूँगा।’ यदि ऐसा है तो तुम कुछ नहीं हो, मांस पर टूट पड़ने वाले गिद्ध हो।

अथवा तुम ऐसे देशभक्त हो जो अपने अन्तःकरण के कान में चुपके से कहता है–‘मैं विश्वासी सेवक हूँ– अपने देश का’ अगर ऐसा हो तो तुम राही की प्यास बुझाने के लिए रेगिस्तान में नखलिस्तान (ओएसिस) हो।

‘क्या तुम ऐसे पति हो, जो अपनी गलतियों को वैध (सही) मानता है, परंतु अपनी स्त्री की गलतियों को अवैध। अगर यह है तो तुम मृतप्राय हो, जर्जर व्यक्ति हो।

‘क्या तुम ऐसे लेखक हो जो जन समूह में अपना मस्तक उठाए है, पर उसका मस्तिष्क चिथड़ों तथा व्यर्थ की चीजों से भरा है तुम सड़े जल वाले निष्प्रवाह गड्ढे हो। ’

‘क्या तुम ऐसे पत्रकार हो, जो बाजार में अपने सिद्धान्तों को बेचता है और जो प्रलाप, दुर्भाग्य व अपराध को निर्मित करता है। ऐसा है तो दुम दुर्गंधयुक्त लाशभक्षी हो।’

‘क्या तुम इतिहास के रंचमंग पर खड़े ऐसे शिक्षक हो जो अतीत के गौरव से प्रभावित होकर मानव जाति को नया संदेश देता है, तदनुकूल कार्य करता है तो तुम अस्वस्थ मानवता के लिए पौष्टिक औषध हो और भग्नहृदय के लिए मरहम हो।’

‘क्या तुम ऐसे विचारक हो जो जीर्ण-शीर्ण व गर्हित को छोड़कर उपयोगी व शुभ सुरक्षा करते हुए अपने हृदय की रक्षा करता है तो तुम प्यासे के लिये शीतल व स्वच्छ जल के समान हो।’ -खलील जिब्रान

स्वत्वाधिकारी भारतीय विद्या मन्दिर, कोलकाता के लिए सचिव शंकरलाल सोमानी द्वारा कल्याणी प्रिंटर्स, अलखसागर रोड, बीकानेर के लिए कंप्यूटर-एन-मीडिया, 25ए, सी.आर. एवेन्यू, कोलकाता-72 में मुद्रित एवं भारतीय विद्या मंदिर से प्रकाशित। संपादक-डॉ. बाबूलाल शर्मा।

भारतीय विद्या मंदिर द्वारा प्रकाशित ग्रंथ

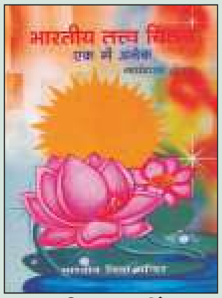

भारतीय तत्त्व चिंतन
माधोदास मूंधड़ा
मूल्य 150/- पृ.सं. 190

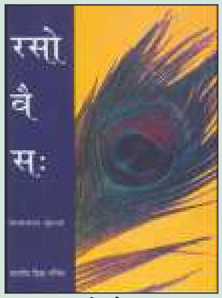

रसो वै सः
माधोदास मूंधड़ा
मूल्य 150/- पृ.सं. 165

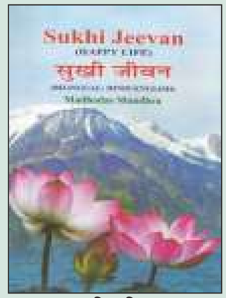

सुखी जीवन
माधोदास मूंधड़ा
मूल्य 275/- पृ. सं. 216

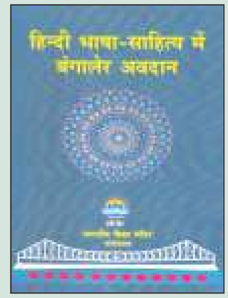

हिन्दी भाषा-साहित्य में बंगालेर अवदान
डॉ. बाबूलाल शर्मा
मूल्य 800/- पृ. सं. 352

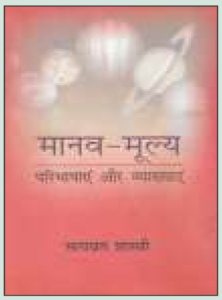

मानव मूल्य परिभाषाएं और व्याख्याएं
सत्यव्रत शास्त्री
मूल्य 550/- पृ. सं. 304

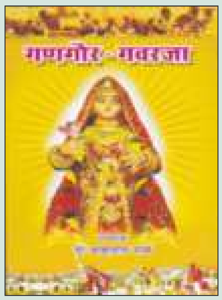

गणगौर-गवरजा
डॉ. बाबूलाल शर्मा
मूल्य 400/- पृ. सं. 264

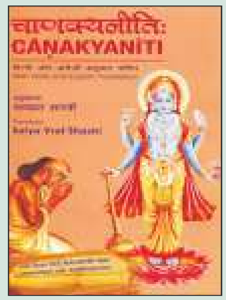

चाणक्यनीतिः
सत्यव्रत शास्त्री
मूल्य 295/- पृ.सं. 194

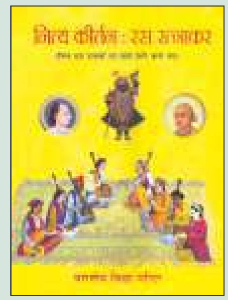

नित्य कीर्तन : रस रत्नाकर
मूल्य 900/-

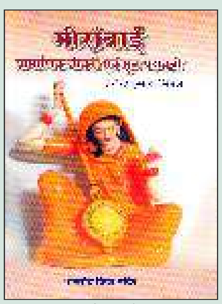

मीरांबाई
प्रामाणिक जीवनी एवं मूल पदावली
संपा. ब्रजेन्द्र कुमार सिंहल
मूल्य 900/- पृ.सं. 584

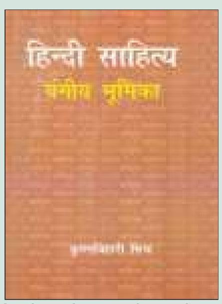

हिन्दी साहित्य बंगीय भूमिका
कृष्णबिहारी मिश्र
मूल्य 750/- पृ.सं. 551

श्रीरामकथा की कथा (प्रथम खण्ड)
आचार्य सोहनलाल रामरंग
मूल्य 600/- पृ. सं. 379

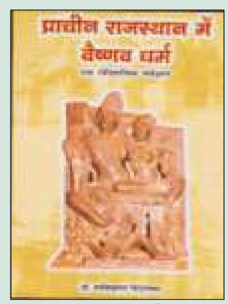

प्राचीन राजस्थान में वैष्णव धर्म
डॉ. सतीश कुमार त्रिगुणायत
मूल्य 550/- पृ. सं. 287

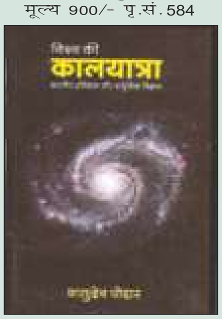

विश्व की कालयात्रा
डॉ. वासुदेव पोद्दार
मूल्य 700/- पृ. सं. 409

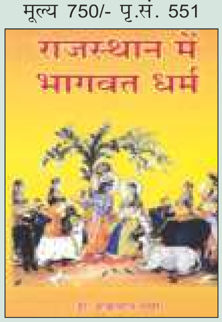

राजस्थान में भागवत धर्म
डॉ. बाबूलाल शर्मा
मूल्य 900/- पृ. सं. 468

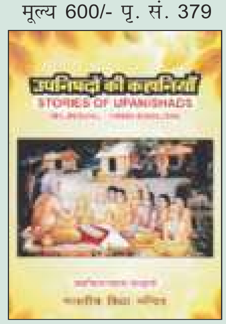

उपनिषदों की कहानियाँ
जयकिशन दास सदानी
मूल्य 400/- पृ. सं. 208

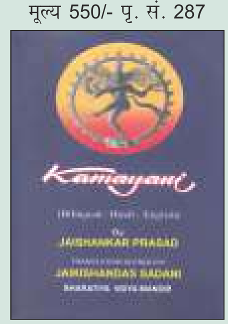

Kamayani
Tr. Jaikishandas Sadani
Price : Rs. 900/- Pages : 477

पुस्तकादेश हेतु संपर्क करें

शंकरलाल सोमानी, सिम्पलेक्स हाउस, 27, शेक्सपीयर सरणी, कोलकाता-700 017 मोबाइल : 09830559364 ई-मेल : shankar.somani@simplexinfra.com

VAICHARIKI Bi-Monthly • ₹50/- May-June 2024 R.N.I. No. 22298/71

From
BHARATIYA VIDYA MANDIR
12/1, Nellie Sengupta Sarani
Kolkata - 700087 *(W.B.)*

TO

G.D.M. Public School Mob. 7977715540
Pugal Road, DIET. Office, Bikaner
(Rajsthan) Pin - 334004
E-mail : gdmpublicschool1342@gmail.com

सेठ गिरधरदास मूंधड़ा इंगलिस मीडियम स्कूल का विशाल भवन।

कर्नल सक्सेना जी को संस्थान द्वारा प्रकाशित 'मानव मूल्य' ग्रंथ भेंट करते हुए अध्यक्ष डॉ. बी.डी. मूंधड़ा।

डॉ. बी.डी. मूंधड़ा द्वारा अभियंताओं और श्रमिकों को कौशल विकास प्रशिक्षण की शिक्षा एवं पुस्तक भेंट करते हुए।

वैदिक विज्ञान केंद्र बीएचयु में त्रि-दिवसीय अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठी का उद्घाटन करते हुए डॉ. बी.डी. मूंधड़ा और साथ में परिलक्षित हैं प्रो. उपेंद्र कुमार त्रिपाठी अध्यक्ष (वै.वि.कें), डॉ. अरुण कुमार सिंह, कुलपति बीएचयु।

इंडियन आर्मी के कर्नल सिंह को भारतीय विद्या मंदिर द्वारा प्रकाशित श्री हनुमान चालिसा (रंगीन चित्र सहित) भेंट करते हुए संस्थान के सचिव शंकरलाल सोमानी।